दलित-ए

के

महाना

एन.पी. कन









सुरुचिपूर्ण, उत्तम एव संग्रहणीय पुस्तको के प्र

दलित-संघर्ष के महानायक

एम. पी. कमल

स्नेह साहित्य सदन
3072/9, प्रताप स्ट्रीट, गोला मार्किट,
दरिया गंज, नई दिल्ली-110002

ISBN : 81-88382-16-7

प्रथम संस्करण : 2003

मूल्य : 195.00 (एक सौ पिचयानवे रुपये)

आवरण सज्जा : विजय ग्राफिक्स

प्रकाशक

स्नेह साहित्य सदन

3072/9 प्रताप स्ट्रीट, गोला मार्किट,

दरिया गंज, नई दिल्ली-110002

शब्द संयोजन

मानस टाइपसैटर, नयी दिल्ली-110002

मुद्रक

एच एस. ऑफसेट प्रेस, नई दिल्ली-2

DALIT SANGHARSH KE MAHANAYAK 20

by M P KAMAL Rs 19

लेखकीय

हम भारतीयों की यह कमजोरी है कि हम आदर्शों के बिना नही जी पाते। आदर्श मिल जाएँ तो हम हिमालय की ऊंचाइयाँ लाघ जाते है और न मिले तो पतन के गहरे गर्त मे जा गिरते हैं। शायद इसीलिए भारत की जमीन पर आदर्शों की सबसे अधिक उत्पत्ति हुई है। इतिहास पर नजर डालें तो बहुत कम दौर ऐसे मिलेगे जब हमारे पास अनुकरणीय आदर्शों का अभाव रहा। यह दौर हमारे सामाजिक पतन के लिए जिम्मेदार रहे है।

ऐसा ही एक दौर उपनिषद्काल के बाद भारत मे आया। कर्म-आधारित सामाजिक सरचना को जन्म आधारित सरचना मे बदल डाला। कुछ लोगो ने अपने निहित स्वार्थो की पीढ़ी-दर-पीढ़ी पूर्ति के लिए समाज के साथ ऐसा घिनौना षड्यन्त्र रचा कि कुछ जातियाँ शेष जातियों की गुलाम बनकर रह गई। शिक्षा और संसाधनहीन ये जातियाँ दरिद्रता और जडता का पर्याय बन गई।

इनकी इस दशा के लिए कौन जिम्मेदार है ? किसने इनके साथ यह घिनौना खेल खेला है ? यह बात सोचना तो दूर, शेष समाज इन्हे अछूत और दलित कहकर इनसे घृणा करने लगा, इनका अपमान करने लगा। श्रेष्ठतम मानवीय संस्कृति को धारण करने वाले साधन-संपन्न समाज का विवेक न मालूम कहाँ खो गया ? उसने एक बार भी रुक कर यह नही सोचा कि ये दीन-हीन लोग घृणा के पात्र नहीं हो सकते, इन्हे तो करुणा और सहानुभूति के पात्र होना चाहिए।

शोषित और शोषक जब एक ही समाज में एक साथ मौजूद हो और शोषित को दलित, अछूत और नीच समझा जाए, उसका उपहास उड़ाया जाए, अपमान किया जाए और गलत कामो के लिए जिम्मेदार ठहराकर उसे ताडना दी जाए तो मानवता रोती है। जिस समाज में यह सब होता है, वह स्वस्थ समाज नही कहा जा सकता। वह एक बीमार समाज है। ऐसा बीमार समाज कमजोर और जर्जर होने लगता है और यदि उसे औषधि आदि देकर संभालने वाला न मिले तो एक दिन

उसकी मौत हो जाती है।

सौभाग्य से भारतीय समाज को देर से ही सही, पर औषधि देने वाले मिल गए। बीमार समाज के रोग को इन मानवीय चेतना सम्पन्न महामानवों ने जान लिया और उसके अनुरूप निदान के उपाय तलाशने लगे। इन महामानवों के हृदय शोषितों, दलितो और अछूतों के प्रति सहानुभूति से भर गए। यह भी समझ आ गया कि देश और समाज के पतन, आर्थिक विपन्नता और लम्बी राजनीतिक पराधीनता के पीछे यह मानवीय और सामाजिक अन्याय ही है।

अन्याय के विरुद्ध आवाजें उठी। समाज मे इन आवाजों को दबाने के प्रयास भी तेज हुए। सघर्ष छिड गया। समाज में आत्म-मथन और उथल-पुथल का दोर शुरू हो गया। इस दौर ने एक ओर शोपितो के सोए हुए स्वाभिमान को जगाया, अधिकारो के प्रति उन्हे सचेत किया, दूसरी ओर शोषको और षड्यत्रकारियो को समाज के सामने नगा किया, उनमे अहसास जगाने का प्रयास किया। इससे परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू हो गई।

स्वाधीनता की लडाई से पहले, स्वाधीनता की लडाई के साथ-साथ तथा स्वाधीनता-सघर्ष के पश्चात् सामाजिक परिवर्तन की यह लडाई जारी रही। इसके फलस्वरूप शोपित और दलित समाज को बहुत लाभ हुआ।

स्वाधीनता के बाद बाबासाहब भीमराव अम्बेडकर की देख-रेख मे बने भारतीय सविधान ने इस शोषण को समाप्त करने के लिए ठोस आधार प्रदान किया।

आजादी के पचपन वर्ष बाद भी सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए सामाजिक परिवर्तन की यह प्रक्रिया जारी है। जिन महान हस्तियो के महाप्रयासो से भारतीय समाज का यह कलक मिटा और समाज मे मानवीय संवेदना लौटी उनके बारे में जानने की इच्छा होना स्वाभाविक है। नई पीढ़ी अवश्य ही यह जानना चाहेगी कि वे कौन लोग थे जिनके हृदयो मे सोई हुई मानवता जागी और भारी कष्ट उठाकर भी जो दीन-हीन समाज के दुख-दर्दो से कराहते लोगो की ऑखो के ऑसू पोंछने निकल पडे।

हमने इस पुस्तक मे दलित और शोषित समाज से जुड़े तथा उनकी पीड़ा से तडप उठने वाले केवल नौ महामानवों की संक्षिप्त जीवन-गाथाओ को समाहित करने का प्रयास किया है। इस आशा और विश्वास के साथ कि नई पीढी के लिए ये अनुकरणीय आदर्श साबित होंगे और उसे सही दिशा देंगे।

—एम० पी० कमल

अनुक्रम

(जन्मानुसार)

सन्त रविदास

(स. 1471 से स. 1567)

सन्त रविदास का नाम उत्तर भारत के ग्रामीण क्षेत्रो मे घर-घर मे चर्चित है। 'जब मन चगा तो कठौती में गंगा' रविदास की लोकप्रिय उक्ति है। गॉवो के बडे-बूढे कुछ विशेष सदर्भो मे इस उक्ति को कहते सुने जा सकते है।

इसके पीछे दतकथा यह है कि एक बार रविदास जी जूते बनाने में व्यस्त थे ओर उनके साथी गगा स्नान के लिए जाने लगे। रविदास जी काम पूरा किए बिना जाने को तैयार न थे। उनके साथी उन्हे काम छोडकर चल देने की बात कहने लगे तो रविदास जी बोले—"देखो भाई ! मेरे लिए काम सबसे पहले है। मै ठहरा मजदूर आदमी, मै काम छोडकर जाने वाला नही। तुम लोग जाओ और स्नान करो। मेरा मन काम मे आनन्दमग्न है" और फिर चमड़ा धोने की कठौती (काठ का बना एक चौडा कम गहरा बर्तन) की ओर हाथ उठाकर बोले—'मन चगा तो कठौती मे गगा।'

अपने काम को गगा स्नान से भी अधिक पवित्र मानने वाला यह महामानव अछूत समझी जाने वाली चर्मकार (चमार) जाति मे पैदा हुआ था। उत्तर भारत मे इस जाति के लोगो से बडी जातियो के लोग बहुत परहेज करते थे। साथ उठना-बैठना, खाना-पीना तो दूर की बात थी, बात करने से भी लोग कतराते थे। परन्तु रविदास मे कुछ ऐसी अलौकिक शक्तियों का उदय हुआ कि लोग उनके प्रवचन सुनने के लिए दौड पडे। एक ओर नीची जाति मे जन्म लेने से उनके प्रति लोगो में उमडती घृणा और उपेक्षा, दूसरी ओर मेवाड़ के महाराणा सागा की पुत्र-वधू भक्त शिरोमणि मीरा के गुरु बनने का गौरव, ऐसी थी सत रविदास की विलक्षणता।

जन्म व परिवार

सन्त रविदास के जन्म के बारे एक मत नहीं है। कुछ लोगों का मानना है कि

वे संवत् 1377 के आस-पास काशी मे जन्मे थे। कुछ के अनुसार उनका जन्म सवत् 1471 मे काशी नगरी के मीर गोवर्धनपुरा नामक मुहल्ले मे हुआ था। उनके पिता का नाम श्री राघव तथा माता का नाम श्रीमती कर्मा देवी था। ऐसी मान्यता है कि जन्म के समय इनके चेहरे पर सूर्य का तेज था। इसीलिए इनका नाम रविदास रखा गया। पिता श्री राघव जूते बनाने का काम करते थे।

गोवर्धनपुरा की धूल में गिरते-उठते जब रविदास बडे हुए और लोगो की बाते समझने लगे तो उनके सामने सबसे पहले जीवन का यह कड़ुवा सच आया कि वे अछूत है। वे केवल अपने परिवार और अपनी जाति के बच्चों के साथ ही खेल सकते है। कर्मकाडी ब्राह्मणों की नगरी काशी मे मनु स्मृति के नियमो पर क्रूरता ओर हृदयहीनता के विष का लेप करने वाले कट्टरपंथियो की कमी नहीं थी। जनेऊ और तिलक धारण करने वाले ये धर्म के ठेकेदार अछूत की छाया पडते ही जोर-जोर से 'शिव-शिव' का जाप करने लगते थे और अपने शरीर पर गंगा जल छिडकने लगते थे। इन तथाकथित पवित्र आत्माओ को इतना भी ज्ञान नही था कि सबका शरीर एक ही तरह के हाड़-मॉस का बना है और सबके भीतर एक ही जीवन तत्त्व सचरित है। फिर यह जाति-भेद क्यों ? सभी मनुष्य है। सभी को प्रकृति ने हृदय और मस्तिष्क के साथ पैदा किया है जो सृष्टि की मनुष्य को अमूल्य देन है।

रविदास के पिता जब जूते बना रहे होते थे, तब रविदास उनके पास बैठ जाते थे और गौर से देखते रहते थे। फिर वे उनसे तरह-तरह के प्रश्न भी पूछते थे ? पिता बहुत विनम्र थे। उनका विश्वास केवल काम में था। उनका मानना था कि करने को काम, भजने को हरिनाम हो तो फिर और क्या चाहिए ? रविदास की मॉ कर्मा देवी घरेलू महिला थी। घर के काम करना और पति के काम में सहयोग देना। रविदास सुन्दर और हॅसमुख थे। उनके चेहरे पर एक मोहिनी थी। जब भी वे खेलने के लिए घर से बाहर निकलते, बच्चे उनकी ओर दौडते थे, परन्तु मॉ को यह ध्यान रखना पडता था कि बच्चा बडी जाति के बच्चों मे न चला जाए। वे जानती थी कि बडी जाति के लोग उनके बच्चे को अपने बच्चो के साथ खेलने से मना करेगे तो उसका दिल टूट जाएगा। इसीलिए वे बच्चे की उगली पकड कर उसे दूर तक घुमाकर लाती थी और फिर अपनी जाति के बच्चो मे खेलने के लिए छोड देती थी।

पिता राघव रविदास को तरह-तरह की बाते सुनाते थे। रात को मॉ कहानियॉ सुनाती थी।

शूद्र होने के कारण पढने के लिए किसी आश्रम मे नहीं जा सकते थे। उन दिनो केवल बडी जातियो के बच्चे ही आश्रम मे गुरु के पास जाकर शिक्षा ग्रहण करते थे, छोटी जाति के बच्चों को शिक्षा का अधिकार नही था।

कितनी क्रूर थी यह व्यवस्था, आत्मकेन्द्रित, भय और असुरक्षा की भावना से

संचालित। जाति और वैभव के बल पर समाज के चन्द लोगो ने कैसा घिनौना और अमानवीय षड्यंत्र रचा था कि केवल उनके बच्चे विद्वान बने, धनवान और शौर्यवान बने, वे ही सम्मानित हों, वे ही पूजे जाएँ। शेष समाज उनकी जूतियो के नीचे कुचले जाने, चीखने-चिल्लाने और हाहाकार करने पर विवश हो, उन्हीं के दरवाजे खटखटाएँ, उन्ही के सामने गिड़गिड़ाएँ, उन्ही की दया पर जिएँ और उन्ही के काम करते-करते मर जाएँ। पीढी-दर- पीढ़ी यह षड्यन्त्र चलता रहा और धीरे-धीरे समाज की रग-रग मे समा गया। षड्यत्रकारी जातियो ने इसे अपना विशेषाधिकार मान लिया और शोषित जातियो ने अपना दुर्भाग्य। फिर लागू हुआ कर्मफल का सिद्धात। संपन्न वर्ग के लोग गर्व के साथ कहते कि यह तो उनके पिछले जन्मों का फल है। जो वे सुख भोग रहे है। धर्म के ठेकेदार तथाकथित आध्यात्मक प्रचारक बडे-बडे ऊँचे मंचो से प्रवचन करते हुए कहते, 'कर्म गत टारे नाय टरी।'

अर्थात् हर प्राणी को इस संसार मे कर्मो का फल भोगना ही पडता है। अब यदि ये शूद्र भोग रहे हैं तो इसमें कोई क्या कर सकता है। यह तो भगवान की मर्जी है। यदि इनके कर्म अच्छे होते तो ये नीची जाति मे जन्मते ही क्यों ? अर्थात् कर्मफल सिद्धात और ईश्वर की इच्छा दोनों को एक साथ मिलाकर गड्डमगड्ड दर्शन से अपनी उच्चता और दीन-हीन श्रमिक वर्ग की निम्नता साबित करके अपने ही भाइयो का गला घोटने वाले इन क्रूर और कपटी सपन्नो ने विपन्नो पर कौन से जुल्म नही ढाए; नियति और नियन्ता दोनों को इन्होंने पता नहीं कैसे सदा अपने अनुकूल बनाए रखा।

ऐसे तर्करोधी वातावरण मे जब चारो ओर अंधकार ही अंधकार था। लाखो अनपढ बच्चे, लाखो अनपढ माताएँ, लाखो अनपढ़ पिता नीची नजरें करके जीने पर विवेश थे। होश संभालते ही शूद्र जातियो से जुड़े ये लोग जान गए थे कि जिन्दगी उनके लिए एक सजा है। अपने पिछले कर्मो का फल भोगने के लिए भगवान ने उन्हे इस मृत्युलोक में जन्म दिया है, जहाँ उनके एक-एक गुनाह की सजा देने के नाम पर उनकी खाल खीच लेने वाला सम्पन्न और उच्च वर्ग पहले से ही मौजूद है।

सत रविदास पले और बडे हुए। विधिवत शिक्षा न मिल पाने से मानसिक विकास का कोई स्वीकृत सिलसिला नही बन पाया, परन्तु विशेष जिजीविषा के साथ जन्मे इस ऊर्जावान बालक की जानने की शक्ति इतनी तेज थी कि इसने बिना पाठशालाओं में अध्ययन किए और बिना ग्रंथ वांचे सुन-सुनकर वह सब ज्ञान एकत्रित कर लिया जो एक साधारण मनुष्य को विशेष दर्जा देने के लिए काफी होता है।

मनुष्य जन्म का क्या महत्त्व है ? क्यो जन्मता है मनुष्य इस दुनिया मे? उसके जीवन का उद्देश्य क्या है ? जीवन की सार्थकता किसमे है ? मनुष्य को जीवित

रहने के लिए क्या-क्या चाहिए ? मनुष्य की शक्तियाँ अपार हैं, कोई सच्चे मन से खोजे तो अपने अन्दर चाहे जितनी शक्तियाँ खोज सकता है। जीव, ब्रह्म और ब्रह्माड सब एक दूसरे से जुडे है। एक के ही अनेक रूप है और अतत फिर एक हो जाते है। ऐसे मे जाति, वर्ग, वर्ण, धर्म तथा अन्य विघटनकारी घटको की क्या गिनती है। ये तो मात्र शब्द है, जिन्हे निहित स्वार्थो वाले कुछ लोगो ने दूसरो पर अपना हुक्म चलाने के लिए इस्तेमाल किया है और कर रहे हैं। यह जुल्म है, यह अन्याय है। मानवता की पीठ मे छुरा घोपा गया है। धरती पर जीवन के सहज विकास की प्रक्रिया मे बाधा डाली गई है। यह घोर अपराध है। इसे सहन नही किया जाना चाहिए।

ईश्वर में विश्वास, सत्य कहने की आदत

काशी की पावन धरती पर 'हर-हर गगे' और 'भोलेशंकर भडारी' जयघोष सुनकर आनद विभोर होते-होते रविदास का बचपन किशोरावस्था मे बदल गया और किशोरावस्था युवावस्था मे।

युवाकाल तक आते-आते रविदास ससार और अध्यात्म दोनो प्रकार के ज्ञान मे पारंगत हो गए। कर्मकाड की नगरी वाराणसी में ज्ञान तो बिखरा पडा है। जो इसके पारखी हैं, वे चाहे जितना समेटें और अपनी झोली में भर ले। रविदास जी ने यही किया। वे चुपके से किसी भी सत के प्रवचन में जा बैठते थे और ज्ञान की बाते सुनते रहते थे। मन तो उनका उनके वश मे था ही, बस एकाग्रता का सहारा मिला और ज्ञान का सागर उनके विशाल मस्तिष्क मे समाहित होने लगा।

ज्ञानी मनुष्य में यह लत होती है कि वह चुप नही रह पाता। अपने ज्ञान का लाभ दूसरो को देने के लिए मचल उठता है और प्रवचन करने लगता है। रविदास ने भी यही किया। वे जूते बनाने की दुकान पर बैठे जूते बनाते रहते और ज्ञान का प्रवचन भी करते रहते। रविदास जी की भाषा इतनी सरल और बोधगम्य थी कि आम आदमी को सब कुछ समझ आने लगा। पंडित अपनी मोटी-मोटी पोथियो से जो बाते नहीं समझा पाते थे, वे बातें रविदास दोहा या छद बोल कर चुटकियो मे समझाने लगे। उनकी दुकान पर अब ग्राहक कम आते और सत्सग प्रेमी ज्यादा। रविदास को इसमे बडा सुख मिलता। वे तो कण-कण में भगवान का दर्शन करने वाले संत थे, फिर मनुष्यों मे भगवान के दर्शन करना तो उनके लिए बहुत सरल था। उन्हे ऐसा लगने लगा मानों मानव रूप धारण कर स्वयं भगवान सत्संग सुनने के लिए उपस्थित है। वे और अधिक उत्साह और मनोयोग से सत्संग सुनाते। कविता की पंक्तियां उनके मुख से स्वत ही फूट पड़ती थी।

एक दिन कुछ तिलकधारी पंडित वहाँ से निकल रहे थे। उन्होंने देखा कि एक जूते बनाने वाला चर्मकार लोगो को सत्सग सुना रहा है और वे भाव-विभोर होकर

पूरी तल्लीनता से सुन रहे है। रविदास जब मस्ती में कोई उक्ति सुनाते तो पूरी भक्त-मडली उसे बडे मनोयोग से झूम-झूम कर गाने लगती।

पंडितों का माथा ठनक गया। यह शूद्र तो चमत्कारी है। रविदास शूद्र है। शूद्र को तो धर्म-ग्रथ पढने तक का अधिकार नही है। फिर यह ऐसी उक्तियाँ कहाँ से सीख आया। यदि यह अपनी भक्ति रचनावलियाँ रच रहा है, तब भी यह पाप है। एक शूद्र को ईश्वर के बारे मे लिखने का कोई हक नही है। इसे यहाँ से उखाडना होगा अन्यथा यह तो शूद्रों को हमारे विरुद्ध भडका देगा और हम सब मारे जाएँगे।

विवाह करके दंडित किया

पडितों का जत्था रविदास के घर जा पहुँचा। रविदास के पिता राघव बहुत सीधे आदमी थे। वे घबरा गए। दोनो हाथ जोडकर बाहर निकल आए और बोले—"महाराज क्षमा करे ..दास से कोई भूल हुई हो तो बताएँ।"

"भूल नही राघव घोर अनर्थ हुआ है, घोर अनर्थ हो रहा है। तुम्हारा बेटा रविदास जूते बनाता जाता है और भगवान की कथाएँ सुनाता जाता है। जूते हाथ मे लिए वह भगवान की आरती गाता है। ऐसा अनर्थ तो आज तक धरती पर किसी ने नही किया। धोखे से भी जूते से पैर छू जाए तो हाथों को अच्छी तरह धोकर पवित्र करते हैं, तब कही भगवान का नाम लेने के अधिकारी होते है और तुम यह कैसे भूल गए हो कि तुम शूद्र हो। शूद्रों को प्रवचन करने का अधिकार किसने दे दिया, उन्हे तो धर्म-ग्रथ पढने तक का अधिकार नहीं है। तुम अपने बेटे को तुरन्त रोको, नही तो हम उसकी चमडी उधेड देगे।"

राघव डर गया। वह तो पहले से ही डरा हुआ था। वह गिडगिडाते हुए बोला—"आप सब महाज्ञानी है, उस मूर्ख अज्ञानी की ओर से मै आपके पैरो पडता हूँ, उसे क्षमा कर दो। मै कल ही उसकी प्रवचनी बद करा दूगा। वह भगवान का बहुत दीवाना बन गया है, पर अपनी जात नही देखता। नही जानता, हम नीच कुल मे जन्मे हैं। भगवान की प्रवचनी तो ब्राह्मणो का अधिकार है। हमे आप भगवान का नाम लेने की छूट दे चुके है, हमारे लिए तो यही बहुत है।"

राघव की वात सुनकर पडित-दल चला गया। राघव ने सीधे रविदास की दुकान की राह ली। राघव ने रविदास को लातों से घूसो से पीटा और उसे बताया, "शूद्रो को भगवान की भक्ति का उपदेश देने का हक नहीं है। यह हक तो केवल ब्राह्मणो को है। तूने ऐसा अनर्थ क्यों किया, क्यो किया, बता?"

रविदास पिटता रहा और मुस्कराता रहा। जब पिता उसे खूब पीट चुके तो बोला—"मुझे माफ करना बापू .मुझे मारते-मारते तुम्हारे हाथ दुख गए होगे मै बडा अभागा हूँ .मेरे पिता .. ।" रविदास के मुँह से ये शब्द सुनकर राघव पानी-पानी हो गया। उसका दिल भर आया। उसने अपने बेटे को दोनों बाँहो में भर लिया

और रो पडा—''बेटा मुझे माफ कर देना, मेरे लाल...तू मेरे कुल मे क्यों जन्मा। तू तो सचमुच सन्त है। मैने तुझे इतना मारा और तू मुस्करा रहा है, मेरी फिकर कर रहा है, मुझे लानत है ..मैने अपने देवता समान बेटे को ।'' राघव सिसकने लगा, फिर शांत होकर बोला।

''बेटा ! यह हिन्दू समाज तुझे ज्ञान की बातो का प्रचार नही करने देगा। इतनी मोटी लाठियॉ लिए घूम रहे थे पडित। मैं तुझे न रोकता तो वे तुझ पर लाठियो से प्रहार करते। मैं क्या कर लेता—बेटा समझ हम कमजोर है। हम असहाय है, हम अछूत जाति के है। हमारा छुआ तो लोग पानी भी नही पीते। हम गवार जानवरो की तरह है। ऊँची जात वालो के लिये काम करना, झिडकियॉ ओर अपमान सहना हमारी नियति है। बेटा तू मेरा एक कहना मान ले, बोल मानेगा न?''

बूढ़े पिता की कातर ऑखो मे ज्यों ही रविदास ने देखा, उसके मुँह से तुरन्त निकल गया—''आप आज्ञा करोगे तो मै मानूँगा।''

''बेटा तू शादी करके घर बसा ले।'' पिता एक ही सॉस मे कह गए।

पिता की ऊपर की सॉस ऊपर और नीचे की सॉस नीचे रह गई, फिर गर्दन झुकाकर और हाथ जोडकर बोले—''लगता है ईश्वर की यही इच्छा है, मुझे स्वीकार है।''

राघव के घर में शहनाइयॉ बज उठीं। सजातीय लडकी देखकर तुरन्त रविदास की शादी कर दी गई। रविदास की पत्नी सीधी-सादी अनपढ़ थी। दोनो पति-पत्नि प्यार से रहने लगे।

परन्तु विवाह के बाद रविदास की ईश्वर भक्ति में कोई कमी नहीं आयी। वे नित्य सबेरे उठकर काशी में स्नान करते और घाट पर बेठकर घटो जाप करते। घर आते ही थोडा सा कुछ खाते और फिर दुकान पर जा बैठते।

रविदास के भक्ति रस भरे बोल लोगों के दिलो मे उतर चुके थे। लोग आ-आकर उनसे निवेदन करने लगे और प्रवचन का दौर फिर शुरू हो गया।

ब्रह्मणों ने हंगामा मचा दिया। राघव का घर चारों ओर से घेर लिया और शर्त रखी कि या तो इसका प्रवचन बद कराओ या घर से बाहर निकाल दो।

रविदास के पिता विवश थे। पुत्र प्रवचनों पर अडा था। उसके अन्दर से ज्ञान की बातें फूटती थी तो माँ सरस्वती जिह्वा पर आ बैठती थी और मुँह से कविता के बोल निकलने लगते थे। विवाह के बाद तो काव्य रचना का दौर और भी बढ गया। रविदास की भगवद्भक्ति मे मस्ती और भी बढ गई।

पिता ने अपने दिल पर पत्थर रखकर दूसरा फैसला लिया। रविदास को पत्नी के साथ घर छोड़कर चले जाने का आदेश दे दिया।

पडितो के दबाव में दिए गए इस आदेश के पीछे पिता का दिल कितना रोया

होगा। सबसे अच्छे और पवित्र कर्मो की सजा अपने बेटे को देते क्या बीती होगी राघव के मन पर। जब इसी काम को करने से ब्राह्मण पुरस्कृत होते थे। उनकी प्रशसा मे छद गाए जाते थे, उनका सार्वजनिक अभिनन्दन किया जाता था और रविदास ने जब यह कर्म किया तो सजा मिली घर निकाला। अपनी ममतामयी माँ और विशाल हृदय वाले सज्जन पिता को अपनी पत्नी की सेवा से वचित करने के क्रूर कर्म का पाप।

परन्तु यह ब्राह्मण-व्यवस्था सम्पन्न समाज था। इसमें शूद्रो की भावनाओ के लिए कोई जगह नहीं थी।

रविदास अलग हो गए। धन तो उनके पास था नही। गरीब घर की कन्या से विवाह हुआ था। अपनी पत्नी को लेकर वे गगा किनारे चले गए और वहीं एक छोटी-सी कुटिया डालकर गुजारा करने लगे।

गुरु रामानंद से भेंट

उन दिनों काशी मे स्वामी रामानद एक उदार सन्यासी थे। वे जाति से ब्राह्मण अवश्य थे, परन्तु उनमें ब्राह्मणो वाली कट्टरता नही थी। वे केवल भाव देखते थे। जाति और धर्म नहीं। हिन्दू धर्म की छुआछूत और ऊँच-नीच के भेद-भावो से वे बहुत दुखी थे, परन्तु समाज इन मामलो में इतना पक्का हो चुका था कि बदलने का नाम ही नहीं लेता था।

नित्य प्रात वे गगा-स्नान करने के लिये आते थे और हरि नाम जपते हुए स्नान करके वापस चले जाते थे। एक दिन जब वे स्नान करने के बाद गगा के घाट की सीढ़ियाँ चढ रहे थे, रविदास दौडकर उनके चरणो मे लिपट गए और बिलखने लगे। स्वामी रामानंद ने उन्हें उठाया और स्वभाव के अनुसार गले से लगाने लगे।

रविदास बोले—"महाराज मै शूद्र हूँ, मेरा नाम रविदास है। मुझे छूने से आपका शरीर अपवित्र हो जाएगा। आप अभी-अभी स्नान करके निकले है। स्वामी रामानद वहीं के वहीं खडे रह गए। उनके चेहरे पर दिव्य तेज था, आँखो में चमक और होठो पर मुस्कान।

"मै तुम्हें अपना शिष्यत्व प्रदान करता हूँ रविदास।" स्वामी रामानंद बोले। ब्राह्मणो ने तुम पर जो जुल्म किया है, मुझे पता लग चुका है। आओ, अब गले लग जाओ। इन्सान के छूने से इन्सान अपवित्र नहीं हुआ करता।"

भाव विभोर हो रविदास गुरु रामानद से लिपट गए। रामानद ने उन्हें बहुत स्नेह दिया और बोले—"अब जाओ। मेरा आशीर्वाद सदा तुम्हारी रक्षा करेगा। भगवान के नाम का प्रचार करो। क्रोध मत करना, बदले भी भावना से झगडना मत। सहनशक्ति और विवेक का परिचय देते हुए लोगों में जागृति पैदा करो।

सबके दिलो में राम-नाम की ज्योति जगाओ। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे।"

रविदास गद्‌गद्‌ हो गए। उन्होंने गुरु को साष्टाग दडवत्‌ किया और फिर उनके चरणों की रज लेकर अपने माथे पर चन्दन की तरह लगा ली।

स्वामी रामानद जी अपने आश्रम की ओर चले गए और रविदास अपनी कुटिया की ओर।

स्त्रियों को ज्ञान व भक्ति का अधिकार

रविदास जी बडे उदारमना व्यक्ति थे। जब तक उन्होंने विवाह नहीं किया था, तब तक वे अपना पूरा जीवन ज्ञान-भक्ति और जाति-धर्म मुक्त समाज निर्माण के लिए लगाना चाहते थे, परन्तु शादी करने के बाद उनके मिशन मे एक लक्ष्य ओर शामिल हो गया। वह था—स्त्रियो को ज्ञान और भक्ति का अधिकार दिलाना। नारी को वे उसी तरह दुखी और प्रताडित मानते थे जैसे सवर्णो के समाज मे शूद्र रह रहे थे। सवर्ण पुरुषो को ही सारे अधिकार प्राप्त थे। स्त्रियाँ बाहर न निकले, दूसरो से मिले-जुले नही, इसलिए उन्होने उन पर बंदिशे लगा रखी थी। सवर्ण अपनी स्त्रियो को अपनी इज्जत मानते थे। इसीलिए वे उन्हे अधिक अधिकार देने को तेयार न थे।

रविदास ने सबसे पहले अपने घर से शुरुआत की। उन्होने अपनी पत्नी को ज्ञान और भक्ति के कामों में खुलकर भाग लेने के लिए प्रेरित किया। रविदास जी की पत्नी ने अन्य महिलाओ को इस पवित्र अधिकार को आगे बढकर प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। रविदास ने नारियो से कहा—"आप यह न भूले कि सदियो से पुरुष समाज ने आपके अनेक अधिकारों से आपको वचित रखा है। शिक्षा और भक्ति का अधिकार भी आपसे इसीलिए छीन लिया जाता है कि वे आप पर विश्वास नही करते। मै कहता हूँ यह अन्याय है। नारी पुरुष की सहचरी है। उस पर पूरा विश्वास किया जाना चाहिए और उसे सभी अधिकार मिलने चाहिए। शिक्षा और भक्ति के बिना तो जीवन ही बेकार है। शिक्षा व्यक्ति को ज्ञान और विवेक देती है, भक्ति उसका परलोक सुधारती है। जिस प्रकार इहलोक और परलोक सुधारने का हक पुरुष को है, उसी प्रकार वह स्त्री को भी होना चाहिए।"

रविदास अपनी धुन के पक्के थे। वे खाली उपदेश देकर ही नहीं रह गए। वे बहुत आगे बढे। उन्होंने बडी सख्या में स्त्रियों को ज्ञान और भक्ति मार्ग पर आगे बढने की प्रेरणा दी।

मीराबाई को शिष्यता

नारी उत्थान की और नारी मुक्ति की भावना उस समय कोई सामाजिक आदोलन नही बन पाई थी। यह वह समय था जब भारत में यमन आ चुके थे ओर

देश के अनेक भागो पर शासन कर रहे थे। देश के राजपूत राजा तथा अन्य शासक इनसे लोहा लेते-लेते बहुत नुकसान उठा चुके थे। सुन्दर स्त्रियों पर नजर पडते ही यमन उन्हें उठा ले जाया करते थे। इस डर से हिन्दुओ ने कम आयु मे ही लडकियो की शादियाँ करनी शुरू कर दी थी और शिक्षा के लिए बाहर जाने का हक भी उनसे छीन लिया। ज्ञान व भक्ति के मामले मे एक बाधा हिन्दू समाज की पारम्परिक मानसिकता थी और दूसरी स्त्रियो की अस्मिता भग होने का भय। सवर्ण जातियों के पुरुषो ने ऐसे मे अपने घर की स्त्रियों पर कडे प्रतिबंध लगा दिए थे। शूद्र जातियों की स्त्रियो पर ये प्रतिबन्ध नही थे। उन्हे बाहर निकलकर काम करना पडता था। घर मे छिपकर बैठे रहने से उनका गुजारा नही हो सकता था।

रविदास ईश्वर मे पूरा विश्वास रखते थे। इस जन्म में मेहनत और ईमानदारी का जीवन बिता कर परलोक सुधारने के लिए ज्ञान व भक्ति का सहारा लेना उनके जीवन का सिद्धांत था।

राणासागा के बेटे भोजराज की नवविवाहिता पत्नी मीरा बहुत सुन्दर थी, परन्तु वह बचपन से ही आध्यात्मिक रग में रगी थी। उसके पास कृष्ण की सुन्दर मूर्ति थी। होश सभालते ही उसे उस मूर्ति से प्यार हो गया। वह कहा करती थी कि उसके आराध्य भगवान कृष्ण उस मूर्ति मे सदा विराजमान है। वे सदा उसके साथ रहते है। वे उसके साथ खाते है, खेलते हैं और साथ ही विश्राम करते है। उन्होने कृष्ण में अनन्य भक्ति प्रकट करते हुए कहा—

"मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकट मेरो पति सोई।।"

अतः मीरा ने कृष्ण से विवाह कर लिया। परन्तु मीरा के माता-पिता ने उसे भक्ति का प्रलाप समझ कर उसे गंभीरता से नही लिया और भोजराज से उसकी शादी कर दी।

ससुराल आने के बाद मीरा पर राजपूती और राजसी अनुशासन का कोई प्रभाव नहीं पडा। वह उसी तरह नाचती-गाती और भक्ति मे भाव-विभोर होकर झूमती थी।

जब मीरा को पता लगा कि संत रविदास मेवाड़ आ रहे हैं तो वह उनके आगमन की प्रतीक्षा करने लगी। वह उमगकर रविदास की ओर दौड़ी और उनके चरणो में गिर गई। रविदास ने मीरा की आध्यात्मिक भावना का सम्मान किया। उन्होंने मीरा को अपना शिष्यत्व प्रदान किया और चले गए। जाते-जाते उन्होने कहा था—"अत्यधिक भावावेश नहीं, भक्ति मर्यादा का उल्लघन नही सिखाती।" घर की मर्यादाओं का पालन करते हुए भी भगवान की भक्ति की जा सकती है। मीरा पर सन्त रविदास के इन शब्दो का भारी प्रभाव पडा। उसकी जीवन धारा ही बदल गई।

मीराबाई ने कहा–

"गुरु मिल्या रैदास जी म्हाणै दीनी ज्ञान की गुटकी।
मेरो मन लाग्यौ गुरु सौ, अब न रहूँगी अटकी।।"

जाति-पाति और मूर्ति पूजा का विरोध

अपने गुरु के सुझाव और पिता के आदेश से रविदास ने काशी के पंडितों के साथ टकराव का इरादा तो छोड दिया था परन्तु अपने मिशन से उन्होंने तनिक भी समझौता नही किया। मनुष्य को मनुष्य के हाथो अत्याचार से बचाने, अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने तथा जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग आदि की निरर्थकता साबित करने के लिए रविदास सकल्पबद्ध थे। वे केवल आध्यात्मिक पुरुष ही नहीं थे, वे सच्चे मनुष्य और समाज सुधारक थे। समाज की सकीर्णताओ और बुराइयो के खिलाफ अपनी शैली में लड़ाई छेड़ना उनका उद्देश्य था। जीवन भर वे अपने मिशन मे लगे रहे। रविदास की मान्यता जब बहुत बढ़ गई तो पडित शांत हो गए। उन्होंने रविदास के प्रवचनों का विरोध करना बद कर दिया। अब वे खुलकर बोलने लगे। अपने प्रवचनो मे वे छोटी जाति के लोगो से कहते थे कौन कहता है, तुम नीच हो? तुममे भी वही आत्मा है जो ऊँची जाति वालों मे है। तुम्हारा शरीर भी उसी हाड-माँस का बना है जिससे उनके शरीर बने हैं। फिर कैसी नीच जाति और कैसी ऊँच जाति। ईश्वर ने सबको बराबर बनाया है। सब ईश्वर की सतान हैं, फिर यह भेदभाव क्यों ?

"जाति-पाति पूछे नहिं कोई
हरि को भजै सो हरि को होई।"
जाति-पाति के फेर में उलझ रहे सब लोग
मानुषता को खात है रैदास जात का रोग।"

जातिप्रथा का विरोध करते हुए उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि यह एक अभिशाप है जो मनुष्य जाति को तबाह कर देगा।

जात-जात में जाति है
ज्यों केले में पात
रैदास न मानुस जुड़ि सकें
जब लौं जाति अरु पाति

महानता जन्म से नहीं कर्म से मिलती है

रविदास जी का मूल दर्शन यह था कि मनुष्य की योग्यता और उसके गुणों का मूल्याकन उसकी जाति से नहीं, कर्म से किया जाना चाहिए। जन्म के आधार पर

जाति की घोषणा करने वालो को वे समाज का दुश्मन मानते थे। ऐसे लोग छोटी जाति मे पैदा हुए अनेक प्रतिभावान लोगों को नष्ट करने और ऊँची जाति मे पैदा हुए अनेक ओछे विचारो वाले व नीच प्रवृत्ति वाले लोगो को समाज के गले मढने के अपराधी है।

उनका विश्वास था कि नीची जाति में पैदा हुआ मनुष्य यदि ऊँचे कर्म करे तो निश्चय ही वह ऊँचा उठ जाता है और ऊँची जाति में पैदा हुआ यदि कुकर्म करे तो महानीच हो जाता है।

रैदास सुकरमन करन से
नीच ऊँच हो जाए।

करई कुकरम जे ऊँच भी
ते महानीच कहलाय

अपनी जाति-कुल और कर्म के बारे मे कहते-कहते वे यकायक भावुक हो उठे और बोले—

जाति भी ओछी करम भी ओछा
ओछा कसब हमारा
नीच से प्रभु ने ऊँच किया है।
कहै रैदास चमारा।

अर्थात् लोग भले ही यह कहें कि रविदास नीची जाति का है और उसके कम भी निम्न कोटि है, परन्तु भगवान जानता है कि रविदास क्या है ? वह जाति ओर धर्म पर नही जाता, आदमी के मन की पवित्रता और सच्चे इरादो को भॉप लेता है और उसे नीचे से उठाकर ऊपर चढा देता है।

अपने आप पर गर्व करते हुए वे कह उठे—

ऊँचा कुल नीचा मता
यह कर्मो की मार
नीचा कुल ऊँचा मता
धन्य रैदास चमार।

पराधीनता की बेडियाँ तोडो

यद्यपि रविदास जी बाबा साहब अम्बेडकर या दक्षिण भारत के संत पेरियर रामास्वामी नायकर की तरह आक्रामक नहीं थे, परन्तु फिर भी पराधीनता जैसी अमानवीय स्थिति के खिलाफ वे खुलकर बोले। पराधीनता मे व्यक्तित्व का विकास नहीं होता। मनुष्य दबकर जीता है। उसकी सारी शक्तियो का हनन होता रहता है

और जीने के नाम पर तिल-तिलकर मरता रहता है। इसलिए रविदास ने पीड़ित और शोषितो को संत की भाषा मे ललकार कर कहा—पराधीनता पाप है। पराधीनता की बेडियाँ तोड डालो। तुम्हें भगवान ने उसी तरह आजाद पैदा किया है जैसे कि बडी जाति वालो को किया है। यह उनकी चालाकी और मक्कारी है कि उन्होने तुम्हें आगे नही बढने दिया। तुम्हे अपने चंगुल मे फंसा लिया और तुम पर पराधीनता थोप दी।

पराधीनता पाप है
        जान लेऊ रे मीत
पराधीन रैदास सो
        कौन करै है प्रीत।

हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल

रविदास का मन मानवतावादी था। वे किसी प्रकार के भेद-भाव को पसद नही करते थे। उनका मानना था कि हर सकीर्णता मनुष्य के सहज विकास के मार्ग मे बहुत बडी बाधा है। धर्म को भी वे मानवता की राह मे उतना ही बड़ा रोड़ा मानते थे, जितना जाति, वर्ग और वर्ण आदि को। इसीलिए उन्होने हिन्दू-मुस्लिम भाईचारे पर बल दिया। उस समय तक मुस्लिम आबादी भारत का हिस्सा बन चुकी थी। मुसलमानों और हिन्दुओ को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता था। दोनों एक ही समाज के हिस्से थे। दोनो की सस्कृतियॉ आपस मे हिल-मिल गई थी। इसीलिए रविदास ने धार्मिक भेद-भाव से ऊपर उठकर मानवीय धरातल पर जीने की बात कही थी।

मुसलमान सौं दोस्ती
        हिन्दुअन सौं कर प्रीत
रैदास ज्योति सब राम की
        सभी हमारे मीत
कृष्ण-करीम-राम हरि राघव
        जब लगि एक न देखा
वेद कितेब-कुरान-पुरानन
        सहज एक नहि देखा।
रैदास हमारा राम जी
        सोई है रहमान
काशी काबा जाति नहिं
        दोनों एक समान।



परम तत्व के ज्ञान बिना मुक्ति नहीं

सन्त रविदास सम्पूर्ण अध्यात्मवादी थे। उनके लिए जीवन का उद्देश्य परिश्रम की कमाई करना और तत्व ज्ञान प्राप्त करना था। तत्व ज्ञान से उनका तात्पर्य उसी ज्ञान से है जो भगवान कृष्ण ने कुरुक्षेत्र के मैदान मे गीता के माध्यम से अर्जुन को दिया था। आत्मा का ज्ञान ही तत्व ज्ञान है। इस भौतिक ससार का सार परम सन्त अथवा ईश्वर है। आत्मा ईश्वर का ही अश है। जो जीवनी शक्ति के रूप मे हर प्राणी के शरीर मे मौजूद रहती है। इस आत्मा को समझना, इसमें स्थित होना ही इश्वर में स्थित होना है। यदि तुम जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति पाना चाहते हो तो अपने आत्म-तत्व में स्थित हो जाओ। तुम्हे अलौकिक ज्ञान प्राप्त हो जाएगा। फिर तुम्हे वार-वार जन्मना और मरना नहीं पडेगा। ऐसा माना जाता है कि मनुष्य ससार मे अपने पिछले जन्म के कर्मो के वधन काटने के लिए जन्म लेता है, परन्तु ससार मे आते ही ऐसे झंझटो मे पड जाता है कि बधन काटने की बजाय अपने आप को ओर नए-नए बंधनो मे फँसा लेता है।

तत्व ज्ञानी बंधन मे नही बधता, वह जीपन मुक्त हो जाता है।

चमत्कारी शक्तियों के धनी

रविदास जी तत्व ज्ञानी थे। उन्हे सिद्धियॉ प्राप्त थी। इन्ही सिद्धियो की शक्ति से उन्होंने जीवन मे अनेक बार चमत्कार दिखाए।

एक बार कुछ पडित इकट्ठे हो गए और रविदास जी से बहस करने लगे। बोले—"यदि तुम शालिग्राम को गंगा के तल पर तैरा दो तब हम तुम्हे मान लेगे कि तुम ब्रह्मज्ञानी हो।"

रविदास जी को जव कोई चुनौती देता था तो वे अपना बचाव नहीं किया करते थे, न ही बुरा मानते थे। वे मुस्कराते रहते थे।

ब्राह्मणों की इस चुनौती को उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। एक ब्राह्मण के हाथ से उन्होंने शालिग्राम पत्थर ले लिया और उसे गंगा के तल पर रख कर हल्का सा धक्का दे दिया। शालिग्राम पानी पर तैरता हुआ आगे निकल गया।

पडितो ने जब यह दृश्य देखा तो एक स्वर से नारे लगाने लगे—"सत रविदास जी की जय।" "सन्त जी ब्रह्मज्ञानी हैं।"

एक वार माडव की महारानी सन्त रविदास से मिलने आई। वे सन्त जी का बहुत आदर करती थीं। परन्तु यकायक उनके मन मे रविदास जी की परीक्षा लेने की बात आ गई। रविदास जी उस समय जूता बना रहे थे। सामने कठौती में पानी रखा था।

महारानी वोली, "सन्त जी हमारी बडी इच्छा हो रही है कि हम आपके हाथ से दिए गए कगन पहनते। क्या आप हमारी यह छोटी सी इच्छा पूरी करेगे ?"

सन्त जी ने जूते पर से हाथ हटाए और कठौती के पास आ बैठे। ध्यान-मुद्रा मे बैठने के बाद बोले, "अब बोलो महारानी क्या इच्छा है?"

"एक जोडी कगन सन्तजी।"

"बस इतनी सी बात।" सन्त जी के मुँह से निकला। 'अभी लीजिए। गगा महारानी। हमारी महारानी की इच्छा पूरी करो", कहते हुए उन्होने अपने दोनो हाथ कठौती के पानी मे डाल दिए और कुछ टटोलने लगे। अगले ही क्षण उन्होने हाथ बाहर खीच लिए। दोनो हाथों में एक-एक सोने का कगन था।

महारानी ने जब सन्त जी के हाथों से वे कगन लिए तो वे हैरान थीं। कगन भारी थे और बहुत सुन्दर थे। महारानी ने सन्त जी के पैर पकड़ने चाहे तो उन्होने अपने पैर पीछे खींच लिए और बोले—"आप माँ है महारानी ..माँ से पैरो का स्पर्श कराना पाप होता है।"

ऐसे अनेक चमत्कार उन्होने अपने जीवन मे दिखाए। कभी-कभी वे पडितो का गर्व चूर करने के लिए उनकी पगत मे अचानक प्रकट हो जाते थे। पडित जब उन्हे देखते तो हैरान रह जाते थे। पडित समझ गए कि रविदास साधारण व्यक्ति नहीं है। शूद्र के घर मे जन्मा जरूर है, पर है सन्त।

सन्त रविदास सही अर्थो में महामानव थे। वे जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग आदि सभी सकीर्णताओ से ऊपर थे। वे एक सच्चे इन्सान थे।

उन्होंने अनेक अवसरो पर चमत्कार दिखाए। गगा की धारा को विपरीत दिशा मे बहाना, गगा के साक्षात् दर्शन कराना, सीना फाड कर जनेऊ दिखाना, बड़े-बडे पडितों को शास्त्रार्थ मे हराकर उनका गर्व चूर करना आदि अनेक घटनाएँ है, जो उनके अदर अलौकिक शक्तियों का होना प्रमाणित करती है।

सन्त रविदास की महिमा अनेक ग्रंथों मे गाई गई है। भक्तमाल मे उन्हे भक्त शिरोमणि कहा गया है। भक्त पच्चीसी तथा गुरुग्रंथ साहिब मे उनकी वाणियों का गुणगान किया गया है।

उन्होने आजीवन ब्राह्मणवादी आडम्बरों और पाखंडों का विरोध किया। अपनी सरल व मीठी वाणी में उन्होंने मानवता और भाईचारे का सदेश दिया। वे एक ऐसे महामानव थे जिनके विचारों के केन्द्र मे मनुष्य था—सच्चा, सरल और मानवीय गुणो से भरपूर एक ऐसा मनुष्य जिसकी कोई जाति नहीं, कोई धर्म नहीं, कोई देश नहीं, जिसकी पहचान केवल मानवता है।

समाज की कुरीतियों पर प्रहार करते हुए, जातिवाद के जहर को जन-जन से निचोड़कर बाहर करने के प्रयास करते हुए, भगवान की भक्ति और उनका गुणगान करते हुए इस महासन्त ने संवत् 1567 की चैत्र वदी चौदस को चित्तौड़ में परम पद प्राप्त किया।

ज्योतिबा फुले

(20 फरवरी, 1827 से 1890)

जन्म आधारित वर्ण व्यवस्था और कट्टर जातिवाद ने भारतीय हिन्दू समाज का इतना नुकसान कर दिया है कि इसकी पूरी तरह भरपाई करने में सैकडों वर्ष लगेगे। इस व्यवस्था के कारण पूरे 1800 वर्षो तक शूद्रों को शिक्षा से वचित रहना पडा, देश मे जनसख्या वृद्धि की गति बढ़ी, सामाजिक बुराइयॉ पनपीं और समाज बॅट जाने के कारण देश एक शक्तिशाली सुरक्षा तंत्र खडा करने मे असमर्थ रहा। नतीजतन विदेशी आक्रांताओं ने इस देश को लूटा, तबाह किया और फिर गुलाम वना लिया।

19वी शताब्दी मे अंग्रेजो की गुलामी के दौरान देश के शूद्रो को शिक्षा का अधिकार मिला। भारतीय समाज की कमजोरियो का लाभ उठाकर अग्रेजो ने भारत पर कब्जा किया था और भारत के बहुसंख्यक दलित समाज को शिक्षा से जोडने का श्रेय भी उन्ही को है।

महात्मा ज्योतिबा फूले भारतीय शूद्र समाज मे (माली जाति में) जन्मे एक ऐसे महान योद्धा थे जिन्होने जन्म आधारित जातिवाद का जमकर मुकाबला किया ओर उसकी जडो को बुरी तरह हिला कर रख दिया।

20 फरवरी, 1827 को महाराष्ट्र प्रांत मे जन्मे ज्योतिबा बचपन से कुशाग्र बुद्धि थे। इनकी माता का नाम चिमणा बाई और पिता का नाम गोविन्द राव फूले था। ज्योतिदा अपने नाम के अनुकूल बहुत सुन्दर मन, सुन्दर बुद्धि और सुन्दर तन वाले थे। जो भी उन्हे देख लेता प्यार करना चाहता था।

मिशन स्कूल में दाखिला

1841 में आयु के 13 वर्ष पूरे करने के वाद उन्हें स्कूल जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ज्योतिवा के पिता श्री गोविन्द राव फूले समाज के डर से उन्हें स्कूल

नही भेज पाए थे। माता चिमणा बाई को भी यह चिन्ता रहती थी कि सवर्ण जाति के लोग उनके बच्चे के स्कूल जाने से चिढ जाएँगे और तरह-तरह की मुसीबते खडी होगी। परन्तु गफ्फार वेग मुंशी और अंग्रेज लैजिट ने गोविन्दराव पर दवाव डाला कि वे ज्योतिबा को स्कूल भेजे। गोविन्दराव तैयार हो गए और उन्होने अग्रेज लैजिट की मदद से ज्योतिवा का दाखिला मिशन स्कूल मे करा दिया।

ज्योतिबा पढ़ने में बहुत होशियार थे। वे सवर्ण बच्चो से भी आगे निकल गए। कक्षा मे वे प्राय: प्रथम आते थे। कुछ दिन तक उनकी पढ़ाई ठीक-ठाक चलती रही और फिर बीच में व्यवधान आ गया। पंडितो को जब यह पता लगा कि गोविन्द राव माली का बेटा ज्योतिबा पढाई-लिखाई में सबसे आगे है तो उनको बहुत बुरा लगा। सोचने लगे यदि यह लडका पढ गया तो हमारे बच्चो के मुकाबले इसकी हिम्मत बढ़ जाएगी। फिर यह हमारे बच्चों की इज्जत नहीं करेगा। ब्राह्मणो तथा अन्य सवर्ण जाति के लडको की तुलना मे शूद्र का लड़का आगे निकल जाएगा तो दूसरो के भी कान खडे हो जाएगे। वे भी अपने बच्चो को स्कूल भेजने लगेगे। ब्राह्मणो ने इसके लिए अंग्रेजो को भी कोसा। अग्रेज बाहर के लोग है, वे क्या जानें। भारतीय समाज की अदरूनी सरचना कैसी है ? मनु महाराज की बनाई वर्ण व्यवस्था को ये अग्रेज तोड़ेगे तो हिन्दू धर्म नष्ट हो जाएगा, समाज का संतुलन बिगड जाएगा। अग्रेज आज हिन्दुस्तान मे है, कल चले जाएँगे, परन्तु इस समाज का क्या होगा ? चिन्ता से परेशान ब्राह्मण ज्योतिबा के पिता गोविन्दराव के पास पहुँचे और बोले—"अरे गोविन्दराव ! तुम ज्योतिबा को क्यो पढ़ा रहे हो ? क्या उसे पडित बनाने का इरादा है?"

गोविन्द राव ने गिडगिड़ाकर पडितो के सामने हाथ जोड़े और माफी माँगी।

अगले ही दिन ज्योतिबा का स्कूल जाना बन्द हो गया। माता और पिता दोनो को अपने बेटे के जीवन की चिन्ता थी। वे डरते थे, कही सवर्ण जाति के लोग उसे कोई नुकसान न पहुँचा दे। उनके मन पर डर इतना हावी हुआ कि उन्होने ज्योतिवा का स्कूल जाना बन्द करा दिया।

ज्योतिवा को बहुत बुरा लगा। परन्तु किशोर ज्योतिबा कर क्या सकता था। माता-पिता का विरोध करके वह स्कूल नहीं जा सकता था, अत: वह चुपचाप घर बैठ गया। परन्तु शिक्षा मे उसकी रुचि बहुत गहरी थी। वह बिना पढे नहीं रह सकता था।

अब वह दिन भर खेतो पर काम करता रहता और रात को चिराग की रोशनी मे पढ़ने बैठ जाता था। कभी-कभी तो वह रात भर पढता रहता था। उसे पढ़ने का बहुत शौक था। पिता उसे समझाते, "बेटा तू इतना क्यों पढता है, क्या तू नहीं जानता कि हम शूद्र है और शूद्रों को पढ़ने का अधिकार नहीं है। फिर पढ़ने-लिखने

का फायदा क्या ? तेरी काम करने की आदत और छूट जाएगी। यदि ऐसा हुआ तो हम कहीं के नहीं रहेगे। यह मत भूल बेटा कि तुझे काम तो खेतो मे ही करना है।" पिता की बात सुनकर ज्योतिबा बोला—"आप बहुत भोले हैं बापू। आप नही जानते कि पढ़ने-लिखने का कितना महत्त्व होता है। शूद्र नहीं पढते, इसीलिए तो पिछड गए है। न उनके पास पैसा है, न इज्जत, इसीलिए ऊँची जाति के लोग उन पर आसानी से कब्जा जमा लेते हैं। आप मुझे नही पढने देगे तो मै भी अनपढ-गवार रह जाऊँगा। जीवन भर किसी की गुलामी करके पेट भरता रहूँगा। यदि आप मुझे प्यार करते है तो मुझे पढने दे। विश्वास करें, मैं किसी को कोई नुकसान नही पहुँचाऊँगा।"

पिता ने कहा—"बेटा चाहते तो हम भी यही है कि हमारा बेटा खूब पढे-लिखे, परन्तु डर है कि वे लोग कहीं कोई नुकसान न पहुँचा दे। एक डर यह भी है कि पढ-लिखकर तुम्हारी रुचि अपने काम में नहीं रहेगी।"

ज्योतिबा ने अपने पिता को समझाने का प्रयास किया कि ऊपर उठने के लिए पढना बहुत जरूरी है। डरते रहने से काम चलने वाला नही। डर तो मनुष्य का सबसे बडा शत्रु है। इतना नुकसान कोई नही कर सकता, जितना अकेला डर कर देता है।

पिता की समझ मे ज्योतिवा की बात आ गई। उसी दिन उनकी मुलाकात गफ्फार बेग मुशी और लैजिट से हो गई। जब उन्हे यह पता लगा कि ज्योतिबा की पढाई रोक दी गई है तो उन्होंने गोविन्द राव को समझाया। अगले ही दिन गोविन्द राव ने ज्योतिवा को स्कूल जाने की अनुमति दे दी। ज्योतिबा बहुत खुश हुआ। वह ओर मन लगाकर पढ़ने लगा। अब वह कक्षा मे और भी आगे निकल गया।

शिवाजी और वाशिंगटन की जीवनी से प्रेरणा

ज्योतिवा का व्यवहार बहुत अच्छा था। वह स्कूल में सब लडको से बडे प्यार से बोलता था। अनेक लडके स्कूल मे उससे दोस्ती करना चाहते थे, परन्तु शूद्र होने के कारण बहुत से लड़के पीछे हट जाते थे।

एक दिन ज्योतिबा ने शिवाजी और वाशिंगटन की जीवनी पढ़ी। शिवाजी मराठा वीर थे, जिन्होने मुगल सेना के छक्के छुडा दिए थे। अपने शौर्य और पराक्रम के बल पर उन्होने मराठा राज्य की नींव डाली थी। वाशिंगटन अमेरिका का राष्ट्रपति था। अमेरिका को एक महान राष्ट्र बनाने के लिए वाशिंगटन ने सराहनीय प्रयास किए थे।

इन दोनों जीवनियो ने ज्योतिबा का मनोबल बहुत ऊँचा कर दिया। उसने प्रतिज्ञा की कि वह भारतीय समाज से बुराइयों दूर करने के लिए अपना पूरा जीवन

लगा देगा और देश को आजाद कराने के लिए सघर्ष करेगा।

शिक्षा ने ज्योतिषा के अन्दर वहुत बडा साहस भर दिया था। अब वह साधारण युवक नही था। कुछ खास कर डालने की तरगे उसके मन मे सदा उठती रहती थीं।

उसे सदा ऐसा लगता था कि जिस समाज में वह रह रहा है, वह एक बीमार समाज है। एक तरह के मनुष्यो से मनुष्य घृणा करे और दूसरी तरह के मनुष्यो की भगवान की तरह पूजा करे, यह कैसी सोच है ? ब्राह्मणो की कुटिलता आर हृदयहीनता से ज्योतिवा बहुत दुखी था। जिस जाति पर हिन्दू धर्म को दिशा देने का दायित्व था, उसी ने हिन्दुओ की एक बहुत बडी आवादी को पूजा तक से वचित कर रखा था। यह कैसी धर्मपरायणता थी। जो कौम अपने आपको धर्म मर्मज्ञ और ज्ञानी कहती है उसके विचारो में ऐसी सकीर्णता क्यों ?

बाजीराव पेशवा का मत था कि शूद्र पढ़ेंगे तो काम कौन करेगा? पढ़-लिखकर वे अपने अधिकार मॉगेंगे, सवर्णो की बराबरी करेंगे तो बाल काटने, लकडी काटने, सफाई करने, जूते बनाने के काम क्या सवर्ण करेंगे ? ज्योतिवा ने जव यह बात लोगो से सुनी तो उसे बहुत दुख हुआ। अपने आपको बहादुर कहने वाली जाति की सोच इतनी अमानवीय हो सकती है, इसका उसे अनुमान न था।

ज्योतिबा की आदत इतनी अच्छी थी कि अनेक सवर्ण लडके उनके मित्र बन गए थे। एक मित्र तो पाठशाला में उनके साथ पढ़ता था और प्राय· साथ ही रहता था। उसे शूद्रो के साथ सवर्णो की क्रूरता पसंद नहीं थी। इस पर ब्राह्मणो ने विरोध प्रकट किया। ज्योतिबा ने इसकी परवाह नहीं की। सवर्ण मित्र ने भी ब्राह्मणो की धमकी को अनसुना कर दिया। उनकी मित्रता बनी रही।

सवर्ण मित्र की शादी में जाने पर हंगामा

ज्योतिबा के एक मित्र थे सदाशिव बल्लाल गोवड़ि। वे सवर्ण थे। उनकी शादी की तैयारियॉ होने लगी तो उन्होने बारात मे चलने के लिए ज्योतिबा को निमंत्रण दिया। ज्योतिबा को बड़ी खुशी हुई। उन्होने शादी में जाने के लिए अच्छे कपड़े बनवाए।

शादी के दिन नए कपडे पहन कर ज्योतिबा विवाह-स्थल पर जा पहुँचे। वे अपनी उम्र के लडको के साथ घुल-मिलकर बातें कर रहे थे कि एक ब्राह्मण ने उन्हे पहचान लिया। वह आगे बढ़ा और सबके सामने ज्योतिवा की बॉह पकडकर बोला—"चल निकल यहॉ से। ब्राह्मणों के बीच मे तू कैसे आया ? क्या तुझे मालूम नहीं कि शूद्रों को ब्राह्मण की शादी में शामिल होने का अधिकार नहीं है ?"

सबने चौककर ज्योतिबा की ओर देखा। अपमान और क्रोध से ज्योतिबा का

चेहरा लाल हो गया। परन्तु इतने सवर्णो के बीच वह अकेला शूद्र क्या करता। बिल्लाल के परिवार वालों ने भी उस ब्राह्मण को नहीं रोका।

ज्योतिबा ने ब्राह्मण की बॉह झटकी और वहाँ से चले गए। उस दिन वे एकात मे पडे-पडे बहुत देर तक रोते रहे। अपमान का वह धूट जो उन्होने इतने लोगो के सामने पिया था, पच नहीं पा रहा था। बार-बार मन करता कि उस ब्राह्मण से बदला ले। वह कौन होता है सबके सामने इस तरह अपमान करने वाला। विवाह मे बिना बुलाए तो नहीं गए थे। बिल्लाल ने निमत्रण दिया था तो गए थे, इसमे उनका क्या दोष था ? वह ब्राह्मण चुपके से कान में भी कह सकता था—ज्योतिबा तू शूद्र है, तू अपने घर चला जा। लेकिन उसने जानबूझ कर मेरा अपमान किया। इस अपमान का बदला मैं लेकर रहूँगा। पूरी ब्राह्मण कौम से मै इस अपमान का वदला लूगा। कौन होते हैं यह ब्राह्मण दूसरो को नीचा और अपने आप को ऊँचा कहने वाले। काम करने वाले नीच और उनका शोषण करने वाले, उनकी कमाई पर पलने वाले उच्च और आदरणीय ? यह सब सहन नहीं किया जाएगा। इस अमानवीय परम्परा को बदलना होगा। समाज को चेतना होगा। जो नीचे दबे पड़े है, सिसक रहे है, पछता रहे है उन्हे उठाना होगा। ईश्वर ने सबको एक जैसा पैदा किया है। इस दुनिया मे जो साधन है, वे सबके लिए है। इन ब्राह्मणो ने चालाकी से सारे संसाधनों पर अधिकार कर लिया है और ये बात-बात पर हमारा अपमान करते हैं। यह अपमान हम नहीं सहेंगे। ईट का जबाव पत्थर से देगे।

ज्योतिबा के दिमाग में तूफान उठ खडा हुआ था। पास ही एक डडा पडा था। वह उन्होने उठा लिया और अपने क्रोध को शात करने के लिए उसे हवा मे घुमाने लगे मानो वे अपमान करने वाले का सिर फोड़ रहे हैं।

क्रोध शात होने पर उन्होने डडा हाथ मे लिए हुए प्रतिज्ञा की—"मैं ज्योतिबा प्रतिज्ञा करता हूँ। मनुवादी ब्राह्मणों को मैं चैन से नहीं सोने दूगा। मैं दलित-शोषित समाज को सवर्णो की गुलामी से मुक्ति दिलाऊँगा। दलितो को शिक्षा का अधिकार मिलेगा। वे पढेगे और एकजुट होकर सवर्णो के अत्याचारों के विरुद्ध सघर्ष करेगे। दलित मुक्ति के लिए मैं अपना पूरा जीवन लगा दूँगा।"

प्रतिज्ञा करने के बाद वे बाहर निकले और दलित एकता के कामों में जुट गए। उन्होने अपने अपमान की कहानी अनेक युवको को बताई और कहा—"अब तुम्ही बताओ, यह अपमान हम कब तक सहते रहेगे। क्या हम मनुष्य नहीं है ? क्या हम कमाकर नहीं खाते ? क्या हम चरित्रहीन और अपराधी हैं ? क्या हम चोर-उचक्के ओर लंपट है ? फिर बिना बात हमारा अपमान क्यो ?"

जन्म आधारित जातिवाद का विरोध

ज्योतिबा ने खादी के कपडे बनवाए और सिर पर पगडी बाधनी शुरू कर दी। जन्म आधारित जातिवाद का विरोध करते हुए उन्होंने कहा--"कितना अनर्थ है । ब्राह्मणों ने हम पर व्यवस्था थोपी है कि ऊँचे कुल में जन्मने वाला ऊँचा और नीचे कुल मे जन्मने वाला नीचा। जब कि कोई कुल ऊँचा या नीचा नही होता। कोई सवर्ण और शूद्र नही होता। ये नाम मनुवादी ब्राह्मणों ने दिए हैं। ब्राह्मण चाहते है कि मेहनत करने वाली कौम को सदा गुलाम बनाए रखे और उसका मनोबल नीचा रखे। इसीलिए वे शूद्रो को शिक्षा का अधिकार नही देते। वे जानते हैं कि शिक्षा मनुष्य को आजाद रहना सिखाती है। शिक्षा मनुष्य की आँखें खोल देती है। उसका मनोबल बढ जाता है और फिर उसे पशु की तरह बाध कर नही रखा जा सकता। इसीलिए वे दलीलें देते है कि मनुस्मृति में शूद्रो के लिए पढना-लिखना वर्जित है। नहीं चाहिए हमे ऐसी आचारसहिता और नियमावली जो मनुष्य को पशु बनाकर रख देती है। हम मनुस्मृति और मनुवादियो का खुला विरोध करते है। हम मेहनत करते है। हम ईमानदार है। हमारा धर्म हमारी मुट्ठी में है, ब्राह्मणो का धर्म हमे नही चाहिए। प्रतिज्ञा करो कि तुम अपने बच्चो को जरूर पढाओगे। आधे पेट खाकर रह लो, फटा-पुराना पहन कर गुजारा कर लो परन्तु बच्चों को जरूर पढ़ाओ। बच्चे नहीं पढे तो अगली पीढ़ी भी सवर्णो की गुलामी करेगी। यदि ये लोग हमारे बच्चो को अपनी पाठशालाओ मे नही जाने देगे तो हम अपने लिए अलग से पाठशालाएँ खोलेगे। हममे से जो लोग पढ-लिख गए है, वे और पढेगे, मेहनत करेंगे, और बच्चो को शिक्षा देगे। 'शूद्र' शब्द आवरण अब हटा दो। अपने आपको जाति के बधन से मुक्त करो। जाति या तो रहेगी ही नहीं और यदि रही तो वह कर्म पर आधारित होगी जन्म पर नहीं।" ज्योतिबा के शब्दों का दलित समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा। लोगो का मनोबल उठा, उनका स्वाभिमान जागा और वे इकट्ठे होने लगे, चर्चाएँ करने लगे, अपनी अगली पीढी को सवर्णो की दासता से मुक्त करने के सपने देखने लगे।

नारी-उद्धार का संकल्प

ब्राह्मणों ने जिस प्रकार दलितो से शिक्षा का अधिकार छीना था, उसी प्रकार स्त्रियों को भी शिक्षा के अधिकार से वचित कर दिया था। भारत के पिछले इतिहास को उठाकर देखें तो पता लगता है कि पुरुषों की भाति स्त्रिया भी शिक्षा प्राप्त करती थी। धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों में उनका बराबर योगदान रहता था, परन्तु वाद में मनुस्मृति की आड लेकर ब्राह्मणो ने स्त्रियों से शिक्षा का अधिकार छीन लिया। ब्राह्मणों और सवर्णो का यह तर्क था कि स्त्री पढ़-लिख

जाती है तो उसकी प्रवृत्ति बहिर्मुखी हो जाती है। इससे पारिवारिक सन्तुलन बिगडता है। अत बेहतर यह है कि स्त्री को पढ़ने ही न दिया जाए। मुस्लिम समाज के सपर्क मे आने पर सवर्णो के नियम स्त्रियों के प्रति और कठोर हो गये। मुस्लिम समाज की पर्दा-प्रथा हिन्दू समाज मे घर कर गई। हिन्दू समाज में स्त्री व्यक्ति न रहकर वस्तु बन गई। मेहनतकश समाज मे तो स्त्रियॉ काम करती थी, अत. उन्हे बाहर निकलना होता था, परन्तु सवर्ण जातियो में तो स्त्रियाँ घर की दीवारो मे केद हो गई। उन्हें केवल बच्चे पालने और घर के काम देखने का अधिकार था। बाहर के ससार से उन्हे अलग कर दिया गया। शिक्षा ग्रहण करने के लिए बाहर जाना जरूरी था इसीलिए उनकी शिक्षा का अधिकार छीन लिए गया।

ज्योतिबा फूले को यह बात बहुत बुरी लगी। स्त्री को कठोर नियमों मे बांधकर बलपूर्वक कैद रखने और उसका हर तरह से शोपण करने की मानसिकता पर उन्होने करारी चोट की।

स्त्री को पुरुष के बराबर अधिकार दिए जाएँ, यह बात उन्होने अपने घर से ही शुरू की। ज्योतिबा का विवाह हुए कई वर्ष हो गए थे। उनकी पत्नी का नाम सावित्री था। सबसे पहले तो उन्होने सावित्री को पढ़ाना शुरू किया। उन्होंने सावित्री से कहा—"मै तुम्हे इसलिए शिक्षा दे रहा हूँ ताकि तुम अन्य स्त्रियो मे शिक्षा का प्रसार करो। मै चाहता हूँ कि तुम पढ़-लिख जाओ। फिर हम एक स्कूल खोलेगे और तुम उसमे पढाओगी।"

सावित्री ने पति को पूरा सहयोग दिया। कुछ ही वर्षो मे सावित्री पढ लिख कर इस योग्य हो गई कि दूसरो को पढ़ा सके।

ज्योतिबा समाज को जगाने मे लगे थे। स्त्री-शिक्षा के लिए प्रयत्न कर रहे थे कि एक दिन उनके पिता ने उनसे कहा—"बेटा ज्योतिबा, तुम्हारी शादी को कितने वर्ष हो गए, अभी तक बहू ने सतान को जन्म नही दिया। अब तुम अधिक इन्तजार मत करो। वश चलाने लिए और मुक्ति प्राप्त करने के लिए संतान का होना जरूरी है। अत· अब मेरी मानों तुम दूसरी शादी कर लो। कई लोग तुम्हारे रिश्ते के लिए तैयार है।"

ज्योतिबा ने पिता से कहा—"मै दूसरी शादी करने को तैयार हूँ परन्तु मेरी एक शर्त है। मुझे आप दूसरा विवाह करने की अनुमति दे रहे है तो सावित्री को भी दूसरे विवाह की अनुमति दें। जब पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है तो स्त्री क्यो नहीं कर सकती ? हमारे समाज मे स्त्री और पुरुष के बीच यह जो भेद-भाव बरता जा रहा है, यह विनाश की जड है। ईश्वर ने स्त्री-पुरुष सबको समान बनाया है। जब ईश्वर के नियम सबके लिए समान है तो मनुष्य-समाज के नियम अलग-अलग क्यों ?"

ा का तर्क सुनकर पिता चुप हो गए। फिर कभी उन्होंने दूसरी शादी उठाई। पति के मुँह से ऐसी बात सुनकर सावित्री गर्व से फूल गई। जाना था कि उसके पति के विचार महान है परन्तु वे स्त्री के प्रति ी हैं, यह बात जानकर उसे बहुत अच्छा लगा। उन दिनो यह बात स्त्री के सतान न होने पर पुरुप दूसरा विवाह करने के लिए स्वतत्र ने पुरुषो को यह विशेषाधिकार दिया हुआ था।

। पुरुप की दासता से मुक्त कराने के लिए पूना के 'बुधवार पेठ' वस्ती मे ज्योतिबा फूले ने बालिका विद्यालय की स्थापना की। दलित समाज की बालिकाएँ इस विद्यालय मे शिक्षा ग्रहण करने लगी। स विद्यालय में पढाने की जिम्मेदारी संभाल ली।

को विद्यालय मे पढाते देखकर सवर्ण बौखला गए। उन्होंने सावित्री रना शुरू कर दिया। जव वह विद्यालय के लिए तैयार होकर निकलती पर छींटाकशी करते, भद्दी-भद्दी गालियाँ देते। सावित्री कोई जवाब । वह जानती थी कि सवर्णो का विरोध स्वाभाविक है। यह तो एक यो को उनके अधिकार दिलाने के लिए यह सब तो सहन करना ही कार लेने और अधिकार दिलवाने के लिए उन लोगो का विरोध तो ा है जिन्होने अधिकार अपनी मुट्ठी मे दबा रखे है।

े लिए लड़ने की सजा घर-निकाला

ा भारी दबदबा था। समस्या इतनी आसान नही थी जितनी सावित्री । कोई उपाय न देख सवर्ण एकत्रित हुए और मशविरा करके उन्होने और उनकी पत्नी को सजा दिलाने का षड्यंत्र रच डाला। वे ता के पास गए और बोले—"तुम्हारा बेटा धर्म विरोधी काम कर रहा नी तो बिल्कुल निर्लज्ज हो गई है। वह खुलेआम घूमती रहती हे। मे जाकर पढाती है।"

सवर्णो की वात सुनी। वे कुछ कहने जा रहे थे कि माली समाज के बुरा-भला कहा और माली जाति से अलग करने की धमकी दे दी। ष्कृत ओर तिरस्कृत होना उन दिनों बहुत बड़ी सजा थी। अपने ानित और उपेक्षित होकर जीना मुश्किल हो जाता था।

ा गए और उन्होंने ज्योतिबा और उनकी पत्नी सावित्री को घर से पिता के हाथों पुत्र और पुत्र-वधू को सजा मिल गई और सवर्णो की न्हे विश्वास था कि घर से अलग रहकर ज्योतिबा की मुश्किलें बढ यह दलित-उत्थान अभियान छोडकर अपनी पत्नी के साथ चैन से

रहना शुरू कर देगा।

परन्तु ज्योतिबा हार मानने वालो मे से नहीं था। उसने अपने मित्र सदाशिव गोविन्दे से मदद माँगी। गोविन्दे ने जूनागढ में रहने के लिए मकान दिलवा दिया। पति-पत्नी दोनों इस मकान में रहने लगे। सावित्री ने विद्यालय मे शिक्षा का काम जारी रखा। थोडी परेशानी जरूर बढी, परन्तु उसे पति-पत्नी ने मिलकर बाँट लिया, फिर सब कुछ आसान लगने लगा।

नारी जाति का समाज में उन दिनो पग-पग पर अपमान किया जाता था। उसकी धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाई जाती थी। विधवा होने पर उसे पति के शव के साथ सती कर दिया जाता था या उसका मुडन कर उस पर कडे प्रतिबन्ध लगा दिए जाते थे। उसे किसी भी हालत मे दुबारा विवाह करने की अनुमति नहीं दी जाती थी। बेचारी स्त्री इतने हादसे से गुजरने के बाद इस बात के लिए विवश कर दी जाती थी कि वह हर क्षण प्रताडना, अपमान और उपेक्षा सहे तथा शोषण की शिकार बने। निर्दोष होते हुए भी समाज उसी को दोषी मानता था और सताता रहता था।

ज्योतिबा फूले ने स्त्रियो पर होने वाले अत्याचारों की खुलेआम निन्दा की। ब्राह्मणो के बनाए स्त्री विरोधी नियमो का खंडन किया और नारी-मुक्ति की लडाई लडी।

विधवा ब्राह्मणी का उद्धार

नारी को उसके अधिकार दिलाने की लिए जब ज्योतिबा सघर्ष कर रहे थे तो उनके सामने एक विधवा ब्राह्मणी का मामला आ गया। काशीबाई नामक ब्राह्मण-कन्या कम आयु मे विधवा हो कर यातना का जीवन जी रही थी कि उसके जीवन में एक ओर तूफान आ गया। किसी पुरुष ने मौका देखकर उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध बना लिए और वह गर्भवती हो गई। उसने एक पुत्र को जन्म दिया। अवैध सतान को जन्म देने वाली उस विधवा ब्राह्मणी पर कहर टूट पड़ा। वे उसे और उसके बच्चे को सताने लगे।

ज्योतिबा फूले ने ब्राह्मणी से निवदेन किया कि वह अपने पुत्र को उन्हे गोद दे दे। उन्होने समझाया कि जाति और वर्ण का मोह छोडो और जीवन की सच्चाई का बहादुरी से मुकाबला करो। ब्राह्मणी की समझ मे यह बात आ गई। पुत्र के प्राणो की रक्षा करना और उसे सामाजिक स्वीकृति दिलाने को वह छटपटा रही थी। ज्योतिबा फूले ने बच्चे को अपनी पत्नी सावित्री की गोद में डाल दिया और उसका नाम रखा—यशवन्त फूले, फिर उन्होने उस ब्राह्मणी का पुनर्विवाह कराया।

ब्रिटिश हुकूमत द्वारा सम्मानित

मात्र 25 वर्ष की आयु मे ज्योतिबा फूले अपने सामाजिक कार्यो के कारण इतने चर्चित हो चुके थे कि ब्रिटिश हुकूमत की भी नजरो मे आ गए।

16 नवम्बर, 1852 को सरकार ने उन्हे दलितो और शोषितो के उद्धार तथा नारी जाति के लिए किए गए कार्यो के लिए सम्मानित किया।

सरकार से सम्मान्ति होने के बाद ज्योतिबा फूले का रुतबा बढ गया। अब वे खुलकर ब्राह्मणवाद के खिलाफ प्रचार करने लगे। उनके सिर पर सरकार का हाथ आ जाने से सवर्ण उन पर हमला करने की हिम्मत नही जुटा सकते थे। ज्योतिबा ने इस स्थिति का पूरा फायदा उठाया। उन्होंने दलित युवकों की टोलियाँ बनाई और उन्हे पिछडे समाज में चेतना जगाने की जिम्मेदारी सौंपी। सरकार द्वारा सम्मान प्राप्त ज्योतिबा पिछडो की दृष्टि मे और ऊँचे उठ गए थे। अब वे उनके मसीहा थे।

पिछड़े समाज मे एकता बढने लगी। लोगो मे शिक्षा के प्रति रुचि जागी। स्त्रियो मे नई चेतना आने लगी। वे पढाई के अधिकार की माँग करने लगी। यह ज्योतिबा की बडी सफलता थी।

'गुलाम गीरि' सत्यशोधक समाज और 'सत्य धर्म'

1965 में ज्योतिबा फूले ने 'गुलाम गीरी' नामक पुस्तक की रचना की। यह शूद्रो के लिए एक नया इतिहास था। इसमें मनुवादी व्यवस्था को मानवता विरोधी बताया गया था और उसका खंडन किया गया था। यह पुस्तक पिछड़ो को उनके महत्त्व के बारे मे जानकारी देने में बहुत सफल हुई। इस पुस्तक ने उनकी आँखें खोल दी। उनकी समझ में आ गया कि मनुवादी व्यवस्था की आड मे ब्राह्मणों ने उनका कितना शोषण किया है। उनके सारे अधिकार छीन लिए है, उन्हे ससाधनो से वचित कर सवर्णो की गुलामी के लिए विवश कर दिया है।

24 सितम्बर, 1863 को ज्योतिबा फूले ने दलितो को दिशा देने के लिए 'सत्यशोधक समाज' नामक संगठन की स्थापना की। इस संगठन का उद्देश्य उन कारणों तथा तथ्यों का पता लगाना था, जिनके आधार पर हिन्दू समाज के बहुत बडे भाग को शूद्र घोषित किया गया।

इन तथ्यों के आधार पर उन्होने एक पुस्तक की रचना की, जिसका नाम रखा—'सत्यशोधक समाज।' इस पुस्तक के प्रकाशित होते ही शूद्र कहलाने वाले पिछडे समाज के हौसले बुलन्द हो गए और ब्राह्मण समाज में मायूसी छा गई।

ब्राह्मण सक्रिय हुए। उन्होने सवर्णो की बैठके की और ज्योतिबा फूले से निबटने के लिए रणनीति तय की। सबसे पहले उन्होंने इस पुस्तक पर मुकदमा कर दिया। उनका तर्क था कि यह पुस्तक हिन्दू धर्म की व्यवस्था के खिलाफ खुला

विद्रोह है। अत: इसे जब्त किया जाना चाहिए और इस पर प्रतिबध लगना चाहिए। मुकदमा लम्बा चला। पेशी पर पेशी हुई। तर्क दिए गए। उदाहरण पेश किए गए, परन्तु सवर्ण न जीत सके। ज्योतिबा फूले ने 1890 मे यह मुकदमा जीत लिया।

'महामानव' की उपाधि

ज्योतिबा फूले की आयु अब काफी हो चुकी थी। उन्होंने अपना पूरा जीवन दलित-उद्धार के लिए सघर्ष मे लगा दिया था। अपने सघर्ष के जब वे 40 वर्ष पूरे कर चुके, तब समाज ने उन्हे सम्मानित करने के लिए एक महासम्मेलन का आयोजन किया।

11 मई, 1888 को माडली के फोर्लीवाडा हाल में इस सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन मे महाराजा बडौदा श्यामजी राव गायकवाड को विशेष रूप से आमत्रित किया गया था। परन्तु वे किसी कारणवश उपस्थित न हो सके। वक्ताओं ने ज्योतिबा फूले को 'महात्मा ज्योतिबा फूले' कहकर सम्बोधित किया। उनके कार्य की सबने प्रशसा की और उन्हे सम्मानित कर गर्व का अनुभव किया।

महाराजा गायकवाड की ओर से भेजा गया प्रतिवेतन पढ़कर सुनाया गया। इस प्रतिवदेन मे महात्मा ज्योतिबा फूले के सामाजिक कार्यो, विशेपकर दलितोत्थान तथा नारी शिक्षा के कामो की भारी प्रशंसा की गई थी। सबसे बडी बात यह थी कि महाराजा ने उन्हें 'महामानव ज्योतिबा फूले' की उपाधि प्रदान कर उन्हे विशेष सम्मान दिया था। प्रतिवेदन मे कहा गया था—''महामानव ज्योतिबा फूले' भारत के वाशिगटन है, जिन्होने शूद्र एव अतिशूद्रो की खोज कर उनकी दासता का रहस्य ज्ञात कर जीवनपर्यन्त उनके अधिकारो की लड़ाई लडी। उनके चालीस वर्ष के जीवन के संघर्ष को भुलाया नही जा सकता, उन्होने नारी समाज के उत्थान के लिए जो कुछ भी कार्य किया वह अत्यन्त सराहनीय है।''

'सत्यमेव जयते' में विश्वास रखने वाला महापुरुष

महात्मा ज्योतिबा फूले की यह आदत थी कि वे कोई भी लेखन कार्य आरम्भ करते समय 'सत्यमेव जयते' अवश्य लिखा करते थे। इन दो शब्दो मे उन्हे पूरा विश्वास था। इन्ही शब्दों से उन्होंने सदा ऊर्जा प्राप्त की और शक्तिशाली सवर्ण समाज के खिलाफ इतनी बड़ी लड़ाई लडी और जीती।

अपने 42 वर्ष लम्बे सघर्ष के दौरान महात्मा ज्योतिवा फूले ने शूद्रो के लिए तालाब बनवाए, उनकी शिक्षा के लिए स्कूल खुलवाए, गरीबो के लिए अस्पताल खुलवाए, सती-प्रथा का खुला विरोध कर उसके विरुद्ध जनमत तैयार किया। विधवाओ के पुनर्विवाह करवाए और नारी शिक्षा के लिए समाज मे जागरूकता पैदा

की। वे एक ऐसे महामानव थे जो एक क्षण को भी रुके नहीं। आगे और आगे चलते रहे। हर पल हर क्षण, हर दिन वे अपने मिशन के लिए सघर्ष करते रहे।

मानवता विरोधी व्यवस्था का खुला विरोध करते हुए, स्त्रियो, शोषितो और दलितो के अधिकारो के लिए लडते हुए 63 वर्ष की आयु मे 1890 ई० मे वे मृत्यु को प्राप्त हुए।

आज वे हमारे बीच नहीं है, परन्तु नारी उत्थान और दलित-उद्धार के लिए जीवन भर सघर्ष करने के बाद उन्होने जो जमीन तैयार की थी, 21वीं शताब्दी मे आते-आते उस पर दलित-विकास का विराट और भव्य महल बनकर तैयार हो गया है।

पेरियर ई. बी. रामास्वामी नायकर

(17 सितम्बर, 1879 से 24 सितम्बर, 1973)

पेरियर ई. बी. रामास्वामी नायकर दलित आदोलन के प्रतिष्ठाता एव प्रभावशाली द्रविण थे। उन्होने ब्राह्मणवादी व्यवस्था का गहन अध्ययन किया। जब उनकी समझ मे आ गया कि देश की आधी से अधिक हिन्दू आबादी को जानवरो से बदतर हालत मे रखने के लिए वह व्यवस्था जिम्मेदार है तो वे पूरी ताकत से उसके खिलाफ जुट गए। पूरे दक्षिण भारत के दलित समाज को एकजुट कर उन्होने ब्राह्मणवाद पर गिन-गिनकर प्रहार किए। इससे पिछडी जातियो का मनोबल बढा ओर वे अपने अधिकारो के लिए उठ खडी हुई।

रामास्वामी नायकर का जन्म 17 सितम्बर, 1879 को तमिलनाडु के इरोडे नगर मे हुआ। इनके पिता का नाम वेकटा नायकर तथा माता का नाम चिन्ताथाई अम्माल था। श्री वेकटा नायकर दक्षिण भारत के प्रसिद्ध व्यापारी थे। माता चिन्ताथाई अत्यधिक धार्मिक प्रवृत्ति की थी। भगवान की पूजा आराधना मे ही उनका अधिक समय बीतता था।

आठ वर्ष की आयु मे रामास्वामी को स्कूल में दाखिल कराया गया। स्कूल की शिक्षा वर्ण-व्यवस्था को पुष्ट करने वाली थी। रामास्वामी के मन मे वर्ण-व्यवस्था के लिए कोई स्थान न था। उन्हे यह शिक्षा-पद्धति अच्छी नहीं लगी। वे दो वर्ष तक स्कूल मे शिक्षा ग्रहण करते रहे और वर्ण-व्यवस्था के प्रति मन मे घृणा सचित करते रहे। जब उन्हे बिल्कुल भी बर्दाश्त नहीं हुआ तो उन्होने पढाई छोड दी।

पिछडी जातियो के लोगों को शूद्र कहकर शिक्षा तथा अन्य अधिकारो से वचित कर दिया गया था। उन्हें अछूत माना जाता था। सवर्ण जातियो के बच्चे अछूतो के बच्चों के साथ खेलना पसद नहीं करते थे। अछूतो की बस्तियॉ अलग होती थीं। उनके लिए पीने के पानी तक की सुविधा नही थी। सवर्ण अपने कुओ से उन्हे पानी नहीं भरने देते थे। कहीं-कहीं तो अछूत गदे तालाबो का पानी पीने

पर विवश थे।

रामास्वामी नायकर को यह सब बाते बहुत बुरी लगी। 10 वर्ष की आयु मे गमास्वामी सवर्णो की छोटी जातियो के प्रति घृणा को समझ गए थे। उन्होंने ब्राह्मणों के बनाए हर नियम का उल्लघन शुरू कर दिया। वे ब्राह्मणो से उलझ पडते। उन्हे खरी-खोटी सुनाते और दलितो के अधिकारों के लिए लडते। पिता क पास ब्राह्मण उनकी शिकायतें लेकर आने लगे। पिता ने रामास्वामी को बहुत समझाया परन्तु वे नहीं माने। पिता ने उन्हे बदलाव के लिए ननिहाल भेज दिया। नाना के घर पहुँचने के बाद भी उनके स्वभाव मे कोई परिवर्तन नही आया। वे उसी तरह ब्राह्मणों से घृणा करते रहे और दलितों का पक्ष लेते हुए सवर्णो से झगडे मोल लेते रहे।

पिता ने उन्हे ननिहाल से वापस अपने पास बुला लिया और स्कूल मे दाखिला करा दिया। पढ़ना उन्हे बुरा नही लगता था, परन्तु जो कुछ पढ़ाया जाता था उसमे जातीय घृणा दूर करने के उपाय शामिल नही थे, इसीलिए रामास्वामी फिर उखड गए। उनके मन मे तो एक ही लगन थी—समाज मे फैली जातीय घृणा को कैसे समाप्त किया जाए। वे चाहते थे कि शिक्षक स्कूलो मे जातीय घृणा कम करने के बारे में पढाएँ। वे स्वय छुआछूत न माने और दलित बच्चो के साथ सौतेला व्यवहार न करे। वे दलितो को गले लगाएँ और सवर्णो को इस बात के लिए तैयार करें कि वे दलितों से प्यार करे और ऊँच-नीच का भेद-भाव भूल जाएँ।

ग्यारह वर्ष की आयु में क्रांतिकारी

रामास्वामी नायकर ने ग्यारह वर्ष की अवस्था मे ही दलितो पर होने वाले अत्याचारो के विरुद्ध क्राति का संकल्प कर लिया था। वे अपने माता-पिता से कहा करते थे—मानव-मानव के बीच जाति के आधार पर भेद-भाव क्यो है ? कोई इतना गरीब है कि उसे खाने को रोटी नहीं मिल पाती और तन ढकने के लिए कपडे नही मिल पाते। किसी के पास इतनी सपत्ति है कि वह संभाल नही पाता, किसी के पास रहने को घर नही और अन्न पैदा करने को खेत नहीं। जिनके पास ज्यादा धन-संपत्ति है वे गरीबो पर जुल्म क्यों करते है ? उन्हे तो उन पर दया करनी चाहिए। वे तो पहले से ही कष्टो में जी रहे हैं, ऊपर से धनी लोगो की मार सहने और उनके लिए बेगार करने पर विवश है। बडी जाति और छोटी जाति का यह भेद-भाव क्यो ? बड़ी जाति वाले संपन्न हैं, छोटी जाति वाले गरीब है। फिर भी अपने आपको ऊँची जाति का कहने वाले लोग छोटी जाति वालो से घृणा क्यो करते है, उनका अपमान क्यो करते है ? उनके साए से भी बचते है, उनका हाथ का छुआ हुआ नही खा सकते, यह सब क्या है ? किसने बनाई है यह मानवता विरोधी रीतियाँ ?

कौन इतना क्रूर है कि इसानियत को मरते, पल-पल दम तोडते देखकर खुश है ? क्या यह ईश्वर ने बनाया है ? क्या ईश्वर इतना कठोर हो सकता है ? यदि ईश्वर इतना कठोर है तो मै उसे नहीं मानता।

ग्यारह वर्ष की उम्र मे पेरियर को जो उत्तर अपने माता-पिता से मिलते थे, उनसे वे कभी सतुष्ट नही हुए। अंततः वे विद्रोही हो गए। उन्होंने फैसला किया कि वे समाज में यह अन्याय नहीं होने देगे। पढाई-लिखाई से उनका मन उचट गया। सवर्णो और ब्राह्मणों के प्रति उनके मन मे घृणा पैदा हो गई।

उन्होने सवर्ण जाति के लोगो को ललकारकर कहा—"अत्याचार की भी कोई सीमा होती है। ईश्वर को मानते हो न तुम फिर तुम्हारे मन मे दया क्यों नहीं आती? क्या तुम्हारा ईश्वर तुम्हे गरीबो और दलितो पर अत्याचार करने के लिए उकसाता है ? क्या तुम्हारे धर्म ग्रथ कहते है कि तुम इन गरीबो को दुखी करो ओर चेन से रहो ? अपने आपको सवर्ण कहने वालो होश में आओ, जिस धर्म और ईश्वर की आड़ मे तुम यह जुल्म कर रहे हो, उससे थोडा-सा तो डरो। यदि तुम्हारे मन मे इतना बडा अपराध करने पर भी डर नही उपजता तो इसका अर्थ यह है कि तुम्हारा धर्म और तुम्हारा ईश्वर एक ढोग है और तुम सब ढोगी हो।"

उनकी तीखी चोट से कई बार सवर्ण चिढ जाते थे और उन्हें चोट पहुँचाने के लिए षड्यत्र रचते थे। परन्तु पेरियर इतने बहादुर थे कि वे किसी से डरते नही थे। दलितो और पीडितो को न्याय दिलाने के लिए वे किसी भी हद तक जाने को तैयार थे।

विवाह तथा पत्नी में वैचारिक परिवर्तन

रामास्वामी के पिता उनके क्रातिकारी विचारो से बहुत परेशान थे। उन्होने रामास्वामी को ऊँच-नीच समझाकर रास्ते पर लाने और आराम का जीवन जीने के लिए बहुत प्रयत्न किए, परन्तु उनमे कोई बदलाव नहीं आया। पिता ने उन्हें अपने साथ व्यापार मे लगाया तो वे मान गए, परन्तु पिता का सहयोग करने के साथ-साथ उन्होने पौराणिक कथाओ, देवी-देवता सबधी कपोल-कल्पित कहानियों का अध्ययन जारी रखा। कुछ ही वर्षो मे वे यह जान गए कि हिन्दू धर्म-ग्रंथ पाखडो से भरे है। ब्राह्मणो ने अपनी कमाई करने के लिए देवी-देवताओ के बारे मे ऐसी-ऐसी कहानियाँ रच ली है कि उन्हे पढकर कोई भी बहकावे मे आ जाएगा और उनके समक्ष नाक रगड़ने लगेगा। वे बडे-बड़े पंडितो को बहस के लिए ललकारते और अपने अकाट्य तर्को से उन्हे हरा देते।

19 वर्ष की अवस्था में पिता ने उन्हें समझा-बुझाकर विवाह के लिए राजी कर लिया। कई वर्षो से उनके पिता उन पर विवाह के लिए जोर डाल रहे थे, परन्तु वे

तैयार नही हुए थे . अब वे इस शर्त पर राजी हो गए कि लडकी उनके विचारो के अनुकूल होनी चाहिए।

उनकी पत्नी का नाम था नागम्मई। नागम्मई जब विवाह करके घर मे आई तो रामास्वामी के क्रातिकारी विचारो से हैरान रह गई। वह तो रूढिवादी परिवार मे पली थी। छुआछूत और जातीय घृणा वाले परिवेश से आने वाली नागम्मई को शुरू मे तो वडी परेशानी हुई परन्तु शीघ्र ही वह संभल गई। रामास्वामी के माता-पिता ने नागम्मई को यह दायित्व सौपा कि वह अपने पति के विचारो मे परिवर्तन लाए, परन्तु रामास्वामी के तर्को के सामने वह तनिक भी नही ठहर पाई। रामास्वामी ने तर्को मे पत्नी को अपने प्रभाव मे लेना शुरू कर दिया। उन्होने साफ कह दिया कि वे रूढिवादी मनुवादी व्यवस्था के कट्टर विरोधी हैं। यदि नागम्मई ने अपने विचारो को नहीं वदला तो वे उन्हे अपने जीवन में शामिल नहीं कर पाएगे। नागम्मई ने अपने आपको शीघ्र ही पति के विचारो मे ढाल लिया और उनके सामाजिक कार्यो मे उनकी सहयोगिनी बन गई।

घर छोड़ कर चले गए

पत्नी के विचारो मे परिवर्तन आ रहा था। रामास्वामी स्त्रियो को पुरुषो की गुलामी से मुक्त करने के अभियान में जुटे थे कि एक दिन एक घटना हो गई। नागम्मई ने सोने की हँसली पहन रखी थी। रामास्वामी बोले—''मेरी समझ में एक वात नहीं आती, तुम स्त्रियों को पुरुषों की गुलामी क्यो पसद है। तुम गहने पहन कर सज-धज कर घर में वैठना पसंद करती हो। शायद तुम नही जानती कि ये गहने तुम्हारी गुलामी के प्रतीक है। पुरुष ने अनेक प्रकार के गहने पहना कर स्त्री को अपना गुलाम बना रखा है। और स्त्री को यह गुलामी पंसद है। हिन्दू स्त्रियो में गहनो प्रति प्रेम उनके जीवन और विचारो की आजादी कम करता है। तुम यह हँसली उतार दो, यह तुम्हारी गुलामी का प्रतीक है।'' नागम्मई ने हँसकर कहा, ''लेकिन मुझे यही अच्छा लगता है कि मैं तुम्हे अपना देवता मानूँ। मैं गहने इसीलिए पहनती हूँ कि तुम्हे अच्छी लगूँ।''

''तुम मुझे विना गहनों के अधिक अच्छी लगती हो। मेरा कहना मानो तुम यह हँसली उतार दो। इसे पहने देखकर मुझे ऐसा लगता है जैसे मैंने तुम्हारे गले मे गुलामी का फंदा डाल रखा है।''

''तुम्हारे कहने से मैं कुछ भी करने को तैयार हूँ, परन्तु हँसली सुहाग का चिह्न मानी जाती है। जो भी मुझे बिना हँसली के देखेगा, बुरा मानेगा।''

पत्नी की यह वात सुनकर रामास्वामी चुप रह गए। पत्नी ने उनके चेहरे पर देखा और समझ गई कि पति की आज्ञा का पालन करना ही होगा। उन्होने हँसली

उतार दी

थोड़ी देर बार ज्यों ही नागम्मई सास के सामने पहुँची। उन्होंने पूछा, "बहू। तुम्हारा गला खाली क्यों है ? हँसली कहाँ गई ?" नागम्मई ने सिर झुका लिया और बोलीं, "उन्हे यह सब पसंद नहीं। कहते हैं गहने स्त्री की गुलामी के चिह्न हैं. .।" कहते-कहते नागम्मई रो पड़ीं।

सदियो से चली आ रही मान्यताएँ और परम्पराएँ मन में गहरी जगह बना लेती हैं। उन्हे एक झटके मे तोड़ डालना असम्भव है। नागम्मई ने हँसली उतार तो दी परन्तु उन्हें लगा जैसे उन्होंने कोई पाप कर दिया है। अपने सुहाग चिह्न को उतारकर अपने सुहाग के साथ मानों उन्होंने विश्वासघात किया है। इसीलिए उनकी आँखों मे आँसू भर आए और वे अपनी भावनाओं का उबाल न रोक सकी।

हँसली उतारने और नागम्मई के इस तरह रो पड़ने से घर मे तूफान आ गया। माता और पिता दोनों रामास्वामी पर बिगड़ गए। पिता ने कहा, "अछूतों के उद्धार के लिए जो कुछ तुम कर रहे हो, हमने तुम्हें कभी नहीं टोका। लगता है तुम्हे खुली छूट देकर हमसे गलती हो गई। तुम्हारी इतनी हिम्मत कैसे हुई ? हमसे बिना पूछे तुमने बहू के गले से हँसली उतरवा दी। जानते हो इसका मतलब क्या होता है ? निकल जाओ यहाँ से, जो करना है बाहर जाकर करो। घर में यह सब नहीं चलेगा।"

पिता को अधिक नाराज देख रामास्वामी चुप रह गए। वे चुपचाप घर से बाहर निकल गए। पिता का क्रोध शांत नहीं हुआ। पड़ोस की स्त्रियों के कान में पड़ते ही बात मुहल्ले भर में फैल गई और इसकी बड़ी भारी प्रतिक्रिया हुई।

क्लेष से बचने और तूफान को शांत करने की दृष्टि से रामास्वामी ने उस समय घर से चले जाने का निश्चय किया। वे कलकत्ता चले गये। कुछ दिन कलकत्ता रहकर वे उत्तर भारत में बनारस जा पहुँचे। उनके मन में एक उत्सुकता जागी कि सन्यासियों के बीच मे रहें और जानें कि उनका दर्शन क्या है। वे सन्यासियो के बीच रहने लगे, उन्ही की तरह ध्यान लगाते, तपस्या करते तथा आध्यात्मिक ज्ञान को समझने का प्रयास करते। उन्होंने उपवास किए तथा अलौकिक शक्ति के दर्शन करने की लालसा से वह सब किया जो महात्माओं ने बताया। परन्तु उन्हें कोई अलौकिक अनुभूति नहीं हुई। उनके मन पर अध्यात्म का रंग चढा ही नहीं। हाँ वे एक निश्चय पर अवश्य पहुँच गए कि यह अध्यात्म, यह ईश्वर-चिन्तन सब एक दिखावा है।

ईश्वर और अध्यात्म के प्रति अपनी धारणा पुष्ट करके वे बनारस से घर लौट आए और फिर अपने समाज सुधार के काम मे जुट गए। अब वे यह निश्चय कर चुके थे कि जो कुछ करना है मनुष्यों को ही करना है। जो दबे-पिचे और पिछडे

है उन्हें अपनी लड़ाई स्वय ही लडनी है। ईश्वर दया करके उनके कष्टो का निवारण नही करेगा। यदि ईश्वर दयालु होता तो निश्चय ही उसे अब तक दलितो पर हो रहे अत्याचारों को देखकर उन पर दया आ गई होनी ओर उसने इनका उद्धार अवश्य किया होता। ऐसा भी नहीं है कि ईश्वर की पूजा केवल ब्राह्मण ही करते है, शूद्र ईश्वर का नाम नही लेते। सच पूछो तो ब्राह्मणो की तुलना में शूद्रो की श्रद्धा बडी है। शूद्र मेहनत करके खाते हैं, अधपेट रहते हैं। उनका जीवन तो एक तपस्या है। उन पर ससाधनो के नाम पर कुछ है ही नही। उनसे बड़ा त्यागी कौन हो सकता है। शूद्रों मे वे सब गुण मौजूद है, जिनके आधार पर दया करने की बाते हिन्दू धर्म ग्रंथो मे लिखी है, परन्तु फिर भी ईश्वर उन पर दया नही करता।

सवर्णो के विरुद्ध व्यापक आंदोलन

बनारस से लोटने के बाद रामास्वामी ने सवर्णो के विरुद्ध खुला आंदोलन छेड दिया। दलित समाज को दक्षिण भारत मे वे एकताबद्ध कर चुके थे। पिछडी जातियों को यह बात समझ मे आ चुकी थी कि उनके साथ जो अन्याय हो रहा है, वह ब्राहणो के षड्यन्त्र का फल है। ब्राह्मण नही चाहते कि शूद्र पढ़-लिख कर बराबर में खड़े हों। यदि वे बराबर मे खड़े हो गए तो अपना अधिकार मॉगेगे। शूद्रों को उनके अधिकार न देने और उन्हे यथास्थिति में बनाए रखने का फैसला पूरे सवर्ण समाज का था। देश के तीन चौथाई से ज्यादा ससाधनों पर सवर्णो का अधिकार था और आधी से अधिक आबादी के हिस्से में एक चौथाई संसाधन भी नही थे। ऊपर से उन पर बेगार, अपमान, कर्ज और ब्याज की मार। सवर्ण और अधिक धनी होते जा रहे थे, दलित और अधिक निर्धन तथा साधन हीन होते जा रहे थे। शिक्षा न मिल पाने के कारण उनकी अगली पीढियों के लिए भी अलग से एक नर्क तैयार हो रहा था। इतना बड़ा अन्याय रामास्वामी को बर्दाश्त नही हुआ। उनकी पारदर्शी दृष्टि ने सब कुछ साफ-साफ देख लिया था। अब बारी थी इस अन्याय के खिलाफ कदम उठाने की।

वह कदम रामास्वामी ने उठा लिया। सवर्णो के अत्याचारो का खुलासा करते हुए उन्होंने दलित समाज को बताया कि अपने अधिकारों को पाने के लिए वह एकजुट होकर खडा हो जाए और उनके बताए रास्ते पर उनके पीछे चल पडे, सफलता अवश्य मिलेगी।

रामास्वामी गाँव-गॉव घूमकर दलितों को इकट्ठा करते। उन्हें बताते कि किस प्रकार उनके साथ ब्राह्मणों ने षड्यंत्र किया है। उन्हें शिक्षा का अधिकार नहीं, मन्दिरो में पूजा का अधिकार नहीं, कुएँ और बावडियो से पानी भरने का अधिकार नहीं। उनका साया छू जाने से भी सवर्ण अपने आपको अपवित्र मानते है। यह सब

सवर्णो की एक चाल है वे देश की आधी से अधिक जनसख्या को अपना गुलाम बनाए रखना चाहते है, इसलिए बात-बात पर उनका मनोबल गिराते रहते हैं। सारी रस्मे और परपराएँ पिछडो का मनोबल गिराने और सवर्णो का मनोबल ऊँचा करने मे सहायक हैं। हमे ये परम्पराएं तोडनी होगी। हिन्दू धर्म ग्रंथो की आड लेकर ब्राह्मणो ने अपनी कमाई के धंधे खडे कर लिए हैं। वे दिन भर खाली रहते हैं और फिर भी भरपेट खाते हैं, अच्छे कपड़े पहनते है और रात को चैन की नींद सोते हैं।

दिन निकलते ही वे बडे गर्व के साथ चौड़ी छाती किए घर से बाहर निकलते है। उन्हे मालूम है कि जो भी रास्ते में मिलेगा, उन्हे प्रणाम अवश्य करेगा। दिन भर उन्हे प्रणाम करने वाले मिलेगे, सवर्ण भी और शूद्र भी। पूरे दिन पडित जी का मनोबल बढेगा। दलितो को उनके खोल में बन्द रखने के लिए उनके इरादे और हाथ और मजबूत हो जाएँगे।

ये इरादे और हाथ तब तक मजबूत बने रहेंगे जब तक दलित इस व्यवस्था के खिलाफ खुलकर मैदान में नही आ जाते। रामास्वामी की सीधी बात दलितों के गले उतर रही थी। उस समय देश मे अग्रेजी शासन था। काग्रेस का गठन हो चुका था। गोपालकृष्ण गोखले, बालगगाधर तिलक जैसे जुझारू नेता भारतीय समाज की खुशहाली के लिए और अग्रेजी शासन के विरोध के लिए काग्रेस के मंच से आगे बढ़कर अपनी आवाज उठा रहे थे। पूरे देश में जागृति की लहर थी। क्रांतिकारियों के जत्थे भी देश मे सक्रिय थे। वे भी सामाजिक न्याय और ब्रिटिश शासन से मुक्ति के लिए बदूको के बल पर लडाई लड रहे थे।

ऐसे समय मे पेरियर रामास्वामी नायकर ने दलितो के उद्धार के लिए सवर्णो के खिलाफ दक्षिण मे खुला आंदोलन छेड़ा।

रामास्वामी ने बड़े धैर्य और विवेक से काम लिया। उन्होने सवर्णो के अत्याचारो के विरोध मे आंदोलन छेडने के साथ-साथ पिता के साथ व्यापार मे सहयोग करना भी शुरू कर दिया था। पिता ने जब यह देखा कि विचारों से उग्र होते हुए भी पुत्र व्यापार में उनका सहयोगी है और घर-परिवार के प्रति अपनी जिम्मेदारियों को निभा रहा है तो पिता नर्म पड़ गए। उन्होने रामास्वामी की वैचारिक क्राति मे कोई दखल नहीं दिया। रामास्वामी एक साथ दोनों काम सफलतापूर्वक करते रहे।

पैतृक संपत्ति में हिस्सा

1911 में रामास्वामी के पिता का स्वर्गवास हो गया। रामास्वामी के बडे भाई कृष्णास्वामी ने पिता की मृत्यु के बाद संपत्ति का बटवारा कर लिया। बटवारे मे उन्हें बहुत बड़ी सपत्ति मिली। पिता ने व्यापार मे बहुत धन कमाया था। आधा

हिस्सा रामास्वामी को मिला। एक हजार ताडी के पेड, अनेक मूल्यवान प्रोनोट व दस्तावेज, उनके ट्रस्टों का स्वामित्व तथा नकदी।

रामास्वामी का जीवन तो बहुत सादा था। उन्हें अपने परिवार को चलाने के लिए अधिक संपत्ति की आवश्यकता नही थी। पत्नी नागम्मई पति के बिल्कुल अनुकूल थीं। वे भी सादा जीवन पसद करती थीं। गरीबों और दलितों को शोषण से उबारने को काम में वे पूरी तरह पति के साथ थी। अतः रामास्वामी ने अपने संसाधनों को भी समाज सेवा में लगा दिया।

उनके त्यागमय जीवन और सेवा के लिए समर्पण का समाज पर भारी प्रभाव पड़ा। लोग उन्हें आदर की दृष्टि से देखने लगे। दलितों और पिछड़ों की भलाई के लिए जितने भी संगठन क्षेत्र में मौजूद थे, उन्होने सब की आर्थिक सहायता की, सबको आगे बढ़ाने में सहयोग दिया।

शहर भर मे उनके प्रति इतना स्वीकार भाव जागा कि वे इरोड नगर के चेयरमेन चुन लिए गए। बाद मे उन्हें ऑनरेरी मजिस्ट्रेट का पद भार भी सौपा गया। रामास्वामी बहुत सक्रिय व्यक्ति थे। इतनी सारी जिम्मेदारियो को एक साथ निभाने में उन्हें तनिक भी परेशानी नहीं होती थी। सामाजिक स्वीकृति और जिम्मेदारियों ने उनका कद और बढ़ा दिया था, उनकी बात मे अब बहुत वजन आ गया था। बहुत जल्दी वे क्षेत्र के आदर्श पुरुष माने जाने लगे।

राजाजी से भेंट और कांग्रेस की सहायता

जिस समय रामास्वामी इरोड के नगरपालिका अध्यक्ष थे, उसी समय राजगोपालाचारी सलेम शहर के नगरपालिका अध्यक्ष थे। उन्हें जनता इतना प्यार और आदर करती थी कि राजाजी कहकर बुलाती थी। राजा जी रामास्वामी की कीर्ति सुनकर उनसे मिलने गए। उन्होने रामास्वामी के सामाजिक कार्यो की प्रशंसा की और उन्हें कांग्रेस में शामिल होने का निमंत्रण दिया। राजाजी ने कहा—"आपने दलितो के उद्धार के लिए जो आदोलन छेडा है, मैं उसका समर्थन करता हूँ। आपके प्रयास सराहनीय हैं। पिछडी जातियों पर जो अत्याचार हुए हैं, उनकी जितनी भी निन्दा की जाए, वह कम है। ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था ने हमारे समाज को बहुत नुकसान पहुँचाया है। परन्तु हमें एक बात नहीं भूलनी चाहिए कि हम एक गुलाम देश हैं। हम पर बाहर के लोगों का शासन है। जब तक देश आजाद नही हो जाता तब तक हम दबे-पिचे और शोषित लोगों के लिए कोई स्थाई व्यवस्था नही दे पाएंगे। अंग्रेज हमारी हर कमजोरी का फायदा उठाते रहे है। पिछड़ो और सवर्णो की लड़ाई का भी फायदा उठाने मे वे नहीं चूकेंगे। मैं यह नहीं कहता कि पिछडों के हितों की लड़ाई रोक देनी चाहिए, परन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि आप

हमारे साथ आ जाए कांग्रेस मे शामिल हो जाए तो आपको अपनी लडाई के लिए एक बडा मच मिल जाएगा और हम सबका सहयोग भी। आपने महात्मा गाधी का नाम तो सुना ही होगा। वे दक्षिण अफ्रीका से लौटकर भारत आ गए है और अछूतो को 'हरिजन' नाम देकर उनके हितो के लिए सामाजिक आदोलन मे लगे है। उनकी लडाई एक साथ दो मोर्चो पर है—सामाजिक और राजनीतिक। मै चाहता हूँ आप भी राजनीतिक मंच पर आ जाएँ और एक साथ दोनो मोर्चो पर काम करे। देश की आजादी के बाद अपना सविधान बनेगा तो अछूत और दलित कही जाने वाली जातियों को कानूनी विशेषाधिकार देकर उन्हे स्थायी रूप से ऊपर उठाने का रास्ता निकल आएगा।''

रामस्वामी राजाजी की बातो से सहमत हो गए और उन्होने काग्रेस की सदस्यता ले ली।

मद्रास कांग्रेस के अध्यक्ष

काग्रेस की सदस्यता लेने के साथ ही रामास्वामी दक्षिण भारत में तेजी से चर्चा मे आ गए। कांग्रेस के मंच से उन्होंने पिछड़ो पर सवर्णो के अत्याचार की बात उठाई। राजनीतिक मच पर पहुँचने से जनता में उनका विश्वास और बढ़ गया। दलित और पिछड़ी जातियों के लोग बडी संख्या में उनके पीछे खड़े हो गए। उन्हे इतना भारी जन-समर्थन मिला कि 1920 मे वे मद्रास राज्य के काग्रेस अध्यक्ष चुन लिए गए।

उन्होंने पूरे मद्रास प्रांत में घूम-घूम कर सभाएँ की और राजनीतिक तथा सामाजिक महत्व के भाषण दिए। उनकी सभाओ मे पिछडों की संख्या अधिक रहती थी। उदार सवर्ण उनके साथ थे। कट्टर सवर्ण उनसे चिढ़ते थे और उनका विरोध करते थे। परन्तु काग्रेस मे आ जाने के बाद उनका उतना खुला विरोध नहीं होता था, जितना उससे पहले होता था। रामास्वामी ने इस मंच का फायदा उठाया तथा सामाजिक आदोलन को राजनीतिक मच से और अधिक बढावा देना शुरू कर दिया। उनकी सभाओ में हजारों लोग इकट्ठे होते थे। पिछडी जातियो के दुखो को जब वे लोगो के सामने रखते थे तो सवर्ण जाति के लोगो के दिल भी पिघल जाते थे।

सविनय अवज्ञा आंदोलन में गाँधी जी के साथ

1920 में महात्मा गाधी ने सविनय अवज्ञा आदोलन आरम्भ किया। रामास्वामी ने मद्रास प्रांत में इस आदोलन का भारी प्रचार किया। उनके भाषणो को सुनकर पुलिस चौकन्नी हो गई और उन्हें गिरफ्तार कर जेल मे डाल दिया गया।

कई महीने जेल मे रहने के बाद जब वे छूटकर आए तो पूरे दक्षिण भारत मे उनका भारी स्वागत हुआ। अब वे दक्षिण भारत के नेता बन चुके थे।

आदोलन अब भी जारी था। गांधी जी की नीतियो पर चलते हुए। उन्होंने सरकारी अदालतो का बहिष्कार किया और अपने 50 हजार रुपये की कीमत के प्रोनोट जला दिए। वे प्रोनोट सरकारी अदालतों के जरिए ही भुनाए जा सकते थे। इस समय उन प्रोनोटो की कीमत करोडो में होती। देश के लिए इतना बड़ा त्याग करने वाले पेरियर रामास्वामी को देश कैसे भुला सकता है।

ताड़ी के पेड़ कटवा दिए

कांग्रेस ने नशा विरोधी आंदोलन शुरू किया तो रामास्वामी ने उसमें आगे बढ़ कर हिस्सा लिया। रामास्वामी तो बहुत पहले से ही इस आंदोलन को चलाते आ रहे थे। वे इस बात से बड़े दुखी थे कि पिछडी जातियो के लोग ताड़ी पीकर नशा करते हैं और फिर अपनी पत्नियों पर जुल्म ढहाते हैं। ताडी के नशे के कारण कितने ही दलित परिवार तबाह हो चुके थे। रामास्वामी ने अपने हिस्से में आए ताड़ी के सारे पेड़ों को कटवा दिया। उनका तर्क था—"अपने आपको पिछड़ा और उपेक्षित कहने वाले ये लोग ताडी के नशे में अपने आपको बर्बाद करने पर तुल जाते हे। ताडी के पेड़ इस नशे की जड हैं, अत. मेरा फर्ज है कि मै कम से कम अपने हिस्से के ताड़ी के पेडों को तो कटवा ही दूं ताकि ताड़ी के नशे का स्रोत कुछ तो कम हो जाए।"

रामास्वामी के इस कदम का पिछड़े समाज पर बहुत अच्छा प्रभाव पडा। अनेक लोगो ने उनके इस त्याग से प्रभावित होकर ताड़ी न पीने की कसम खाई और अनेक परिवार तबाह होने से बच गए।

आरक्षण की मॉग न मानने पर कांग्रेस छोड़ दी

रामास्वामी नायकर की यह आदत थी कि वे सिद्धांतों से कोई समझौता नहीं करते थे और आगे बढ़ाया हुआ कदम वापस नही लेते थे।

वे पिछड़ों को उनका हक दिलाने के लिए इतने उतावले थे कि देश की आजादी तक इंतजार करने को तैयार नहीं थे। उन्होंने 'तिरुनेलवेली' में एक विशाल सम्मेलन बुलाया और उसमे पिछड़ो के लिए सबसे पहले आरक्षण की मॉग उठाई। आरक्षण के लिए पूरी रूप-रेखा तैयार उनके मस्तिष्क मे थी। रामास्वामी के इस प्रस्ताव को पिछड़े समाज में भारी समर्थन मिला। उनकी ताकत और बढ़ गई। पिछड़ी जातियो के लोग अब खुलकर उनके साथ आ गए।

कई वर्षो तक कांग्रेस तथा सामाजिक मंचों पर उन्होंने इस मॉग को उठाया तो

दोनो वातो उनके सामने आने लगी जहा पिछड़े समाज के लोग हर्ष ध्वनि से इसका स्वागत करते, वहीं सवर्ण इसका विरोध करने लगे। रामास्वामी को यह बात समझते देर नहीं, लगी कि काग्रेस पिछडों की समस्याओ को पहला स्थान देने को तेयार नही हे। काग्रेस मे सवर्ण जातियो का बडा जमघट था और वे लोग किसी भी कीमत पर आरक्षण जैसी मॉग स्वीकार नहीं कर सकते थे। परन्तु अभी तक सवर्णो की पोल नहीं खुली थी। नेतृत्व के स्तर पर कोई भी इसका विरोध करने के लिए खुलकर सामने नही आया था। अकेले एस श्रीनिवास आयकर ने इस मॉग का विरोध किया था।

1925 में 'तमिलनाडु कांग्रेस कमेटी' का कांजीपुरम में अधिवेशन हुआ। रामास्वामी नायकर पूरी तैयारी के साथ पहुॅचे और उन्होने आरक्षण का प्रस्ताव अधिवेशन मे रख दिया। सवर्ण इस मॉग को सुनते ही भडक गए। श्रोताओ मे सवर्णो की भीड़ उत्तेजित हो उठी। जिस समय रामास्वामी माइक के सामने खडे होकर इस प्रस्ताव पर बोल रहे थे, भीड ने ईट और पत्थरो से उन पर हमला कर दिया। उन्हे भारी चोटे आई। इतनी चोटें खाने के बावजूद वे मंच से नहीं हटे। परन्तु जब काग्रेस ने उनके प्रस्ताव को मजूर नहीं किया तो वे धैर्य खो बैठे। उन्होने तुरन्त काग्रेस पार्टी से इस्तीफा दे दिया।

'द्रविण आंदोलन' का गठन

कांग्रेस छोडने के बाद उन्होंने दक्षिण को अपने आदोलन से जोडने के लिए एक संगठन बनाया। उसका नाम रखा 'द्रविण आदोलन'। इस सगठन का उद्देश्य ब्राह्मणवादी व्यवस्था का खुलकर विरोध करना, पिछडी जातियों को एकजुट करना तथा उन्हें सवर्णो की गुलामी से मुक्ति दिलवाना था। ब्राह्मणवादी व्यवस्था पर कटाक्ष करते-करते कई बार वे ईश्वर और उसको मानने वालो की कटु आलोचना कर जाते थे। वे कहते—''जिन्होंने भगवान को बनाया है, वे धूर्त है। भगवान का प्रचार करने वाले नीच और दुष्ट हैं तथा उसकी पूजा करने वाले अनपढ और गॅवार है।''

पेरियर रामास्वामी के धुआँधार प्रचार का दक्षिण भारत पर बहुत प्रभाव पडा। पिछड़ी जातियॉ तो उनके साथ आदोलन में खडी थी, सवर्ण जातियो के लोगो मे भी बदलाव आया। अनेक ब्राह्मण भी अपने आपको शार्मिदा महसूस करने लगे थे। रामास्वामी जनमत को सवर्णो के विरुद्ध तथा पिछड़ों के पक्ष मे झुका देने का प्रण ले चुके थे। वे अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहे और रात-दिन मिशन में जुटे रहे।

जाति व वर्गहीन समाज की स्थापना करना उनका अतिम उद्देश्य था। यद्यपि उन परिस्थितियों मे यह सभव नहीं था, परन्तु रामास्वामी हार मानकर बैठने वालो मे से नहीं थे। उन्होंने वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए 'जस्टिस पार्टी' बनाई।

इस सगठन के मच से उन्होने पूरे दक्षिण भारत मे यह आवाज बुलद की कि "समाज का जातियो व वर्गो में विघटन इस देश के लिए घातक सिद्ध हुआ है। इसी विघटन के कारण देश मे बाहर के हमलावर घुसने और कब्जा करने मे सफल हुए। अतत देश अग्रेजो का गुलाम हो गया। यह विघटन आगे भी बहुत विनाश करने वाला साबित होगा। इस देश मे रहने वाले सब लोग आपस मे भाईचारा कायम करे। हिन्दू समाज ऊँच-नीच और जाति वर्ग आदि के भेद-भाव खत्म करे। सब एक-दूसरे का आदर करें और मिलकर काम करे तो देश जल्दी आजाद हो सकता है और देश का विकास हो सकता है।"

वाइकोम प्रकरण

जब रामास्वामी अछूतो के उद्धार और जाति व वर्गहीन समाज के निर्माण मे जुटे थे, उसी समय कोचीन के राजा ने वाइकोम मे एक विशाल मदिर बनवाया और उसे ब्रह्मणो को सौप दिया। ब्राह्मणो ने मदिर के आस-पास के क्षेत्र मे अछूतो के रास्ते ही बन्द कर दिए। अछूत अपनी गदी बस्तियो मे कैद होकर रह गए।

मंदिर के प्रागण मे राजा की अदालत थी। राजा का जन्मदिन मन्दिर मे मानने का फैसला लिया गया। राजा के जन्मदिन पर भव्य समारोह का आयोजन किया गया। अछूतों को मंदिर की वजह से जो परेशानी हुई थी, उसे राजा के सामने रखने का अच्छा मौका था। इजवा जाति की ओर से राजा से गुहार करने के लिए माधवन को वकील बनाकर अदालत परिसर मे राजा के सामने पेश किया गया। ब्राह्मणों ने वकील के अछूतो के पक्ष मे तर्क सुने तो वे बौखला गए। उन्होने राजा के सामने ही माधवन का भारी अपमान किया। उस समय केरल प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री के पी केशव मेनन तथा उपाध्यक्ष जार्ज जोसेफ वहाँ मौजूद थे। उन्होने ब्राह्मणो को अपमान करने से रोका और माधवन का पक्ष लिया। राजा के हस्तक्षेप से यह व्यवस्था दी गई कि मदिर मे मुख्य समारोह मे पूजा के समय एक अछूत को अवश्य शामिल किया जाएगा। सभी अछूतो के लिए मदिर के द्वार खोलने पर सहमति न हो सकी।

कांग्रेसी नेता चाहते थे कि मन्दिर के आस-पास अछूतो के रास्ते खोले जाएँ तथा उन्हें मन्दिर मे आकर पूजा करने की छूट दी जाए। राजा इतना कट्टर था कि वह कांग्रेस की इस मॉग का बुरा मान गया और उसने 18 कांग्रेसी नेताओं को जेल मे डलवा दिया।

रामास्वामी को जब राजा के इस कदम की सूचना मिली तो वे तुरन्त मैदान मे आ गए। उन्होने मन्दिर मे हरिजन प्रवेश आंदोलन का नेतृत्व सभाल लिया। उन्होने पूरे कोचीन राज्य का दौरा कर राजा के खिलाफ जनमत तैयार किया तो

राजा क्रोध मे आ गया और उसने रामास्वामी को गिरफ्तार कर जेल मे डलवा दिया।

रामास्वामी के गिरफ्तार होते ही उनकी पत्नी नागम्मई मैदान मे उतर आई। आदोलन की बागडोर उन्होंने अपने हाथ में ले ली। रामा- स्वामी की बहन कन्नमल तथा एस रामनाथन ने नागम्मई का साथ दिया। नागम्मई ने प्रात की महिलाओ को एकजुट कर आदोलन को भडका दिया। महिलाओ ने ऐसा विरोध किया कि राजा को झुकना पडा। राजा ने अछूतों पर लगे सारे प्रतिबन्ध हटा लिए ओर गिरफ्तार आदोलनकारियों को रिहा कर दिया।

यूरोप यात्रा

बहुत दिनों से रामास्वामी अखबारों में अमेरिका के स्वाधीनता सग्राम, फ्रास व रूस की क्राति तथा जर्मनी व इटली मे राष्ट्रीय राज्यो की स्थापना के समाचार पढ रहे थे। इन समाचारों को पढ़कर उन्हें लगा कि भारत के बाहर की दुनिया तेजी से बदल रही है। पूँजीपतियो और सामतो के शोषण के विरुद्ध विश्व मे आवाज उठी है। रूस मे तो 1917 मे सर्वहारा क्राति हुई थी और उसके बाद सर्वहारा वर्ग का शासन स्थापित हो गया था। रामास्वामी को आशा बंधी कि भारत में भी इस परिवर्तन का प्रभाव पड़ेगा। वे जानना चाहते थे कि इतने बडे परिवर्तन इन देशो मे कैसे हुए हैं और वहॉ नई व्यवस्था का स्वरूप क्या है ? अत 1931 में वे एक वर्षीय यूरोप यात्रा पर चले गए। वे जर्मनी, इग्लैड, फ्रास, स्पेन आदि देशों मे गए और वहाँ की राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन किया। इन देशो के स्कूलो, कारखानो तथा अस्पतालों से रामास्वामी बहुत प्रभावित हुए। यूरोपीय समाज की वैज्ञानिक दृष्टि ने उन्हे बहुत प्रभावित किया। यूरोप के लोग भारत के लोगों की तरह अधविश्वासी और पाखंडी नहीं थे। वहॉ खुला समाज था। जो कुछ था, सामने और सर्वस्वीकृत था। आदर्शो की आड में जो पाखड वे भारतीय समाज मे वर्षो से देखते आ रहे थे, वह उन्हें यूरोपीय देशो में देखने को नही मिला।

इन देशों की यात्रा के बाद रामास्वामी रूस गए। रूस की क्राति से वे बहुत प्रभावित थे। उन्होंने रूस के कल-कारखाने देखे, मजदूर सगठन देखा, काम करने के ढंग और सरकार चलाने के तौर-तरीके देखे। मजदूरों की खुशहाली, आत्मविश्वास और जिदादिली देखकर उन्हे लगा कि ससार मे मेहनत करने वालो के लिए यदि स्वर्ग कही है तो वह रूस मे है। रूस मे राजनीतिक शिक्षा परिवर्तन के साथ-साथ जो सामाजिक क्राति हुई थी, उससे रामास्वामी का मनोबल बहुत बढ गया। पूँजीपतियों और सामंतों के चंगुल में पिसती जनता ने सत्ता पलटने के बाद किस प्रकार इन तत्वो को धूल मे मिलाया था, इसे देखकर वे दग रह गए। रूस से

रूढ़िवाद अंधविश्वास और शोषण बिल्कुल समाप्त हो चुका था श्रम के प्रति सम्मान और श्रमिक को मिलने वाले पुरस्कार से रामास्वामी का मन गद्गद हो गया था रूस के समाज से जब उन्होंने भारत की तुलना की तो उनका सिर शर्म से झुक गया वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अपने आप को आदर्शवादी, अहिंसावादी और मानवतावादी कहने वाला भारत वास्तव मे दुनिया का सबसे अधिक दकियानूसी और पिछड़े समाज वाला देश है।

भारतीय सामंती मूल्यों पर प्रहार

1932 में रामास्वामी नायकर भारत वापस लौटे। दुनिया के अनेक देशों मे पूँजीवादी व सामंतवादी व्यवस्थाओं का विनाश देखने के बाद अब उन्हे विश्वास हो गया था कि भारत मे भी ये मूल्य ढाए जा सकते हैं। सच तो यह है कि भारत मे पनपी सामंती व्यवस्था ने चन्द लोगो और कुछ जातियो को इतना शक्तिशाली बना दिया था कि वे अपनी सत्ता पर इतराने लगे थे और उन्होंने अपने लिए गुलामों और अधीनस्थो की एक बड़ी फौज को बनाए रखने की दृष्टि से दलित जातियों पर शिकंजा कसा था। सवर्ण जातियों के लोग अपनी अगली पीढ़ियों के लिए भी सुरक्षा और प्रभुता का तंत्र बनाए रखना चाहते थे, इसीलिए वे पिछड़ी जातियों के प्रति इतने क्रूर हो गए। दूसरों से गुलामी करवाने और बेगार लेने का सुख उनके कुछ इस तरह मुँह लग गया कि उनके दुख-दर्दो के प्रति उनकी संवेदना ही मर गई।

रामास्वामी अब पूरी तरह समझ चुके थे कि सामंती ढांचा ही इस अमानवीय क्रूरता के लिए जिम्मेदार है। इसे तोडे बिना पिछड़ो और दलितों का उद्धार नहीं होगा। मनुष्य को ऊपर उठाने वाली तीन ताकते होती है—अर्थशक्ति, राजनीतिक शक्ति और शिक्षा व संस्कारों से मिलने वाली मानसिक शक्ति। इन तीनों ही शक्तियो पर सवर्णो का कब्जा था। मनुवादी सामाजिक व्यवस्था ने जन्म के आधार पर वर्णो मे समाज को बाँटकर शूद्रों को शक्तिहीन और असहाय बनाकर शेष तीनो वर्णो के रहम पर जीने के लिए छोड दिया था। हिन्दू धर्म-ग्रंथो खासकर 'मनुस्मृति' के अनुसार शूद्रों का काम सवर्णो की सेवा करना था। सेवा के बदले जो भी उन्हें मिल जाए, उस पर गुजारा करना उनकी नियति थी।

पीढ़ी-दर-पीढी जब यह तंत्र चलता रहा तो शूद्रों ने अपनी नियति को स्वीकार कर लिया था और वे भूल गए थे कि उनके भी कुछ अधिकार हैं, उन्हे भी मनुष्यों की तरह जीने का हक है। प्रतिष्ठा, प्रभुता, स्वाधीनता और स्वाभिमान उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए भी उतना ही जरूरी है, जितना सवर्णो के लिए हुआ करता है। यदि सवर्णो से उनकी प्रभुता, स्वाधीनता और प्रतिष्ठा छीन ली जाए तो उनमे और शूद्र कहलाने वाली जातियों में कोई अन्तर नही रह जाएगा।

कालांतर मे शूद्र कहलाने वाले वर्ण से जो जातियॉ विकसित हुई, वे सवर्णो के लिए अछूत बन गई। अब आवश्यकता इस बात की थी कि इन जातियो मे स्वाभिमान की इच्छा और आत्मविश्वास पैदा किया जाए। इन्हे एकजुट कर एक शक्तिशाली समाज मे बदला जाए तथा राजनीतिक व सामाजिक सगठनो के मचो से उनके अधिकारों की मॉग उठाने के साथ-साथ सामती ढाचे को तोडने की माग भी उठाई जाए।

सामती ढाचा धर्म के आडम्बर पर टिका था। इसीलिए हिन्दू धर्म के इन पाखण्डो को निशाना बनाया जाना आवश्यक था। धर्म की आड लेकर ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ बन बैठे थे और पूरे देश के तमाम मदिरो, पूजा-स्थलो और तीर्थो पर केवल उन्हीं का कब्जा था।

1932 से 1934 तक उन्होने द्रविड आदोलन चलाया। इसके अतर्गत आर्थिक मुद्दे, रेलवे, जहाजरानी तथा बैको के राष्ट्रीयकरण की मॉग उठाई। पिछडी जाति के गरीबों की ऋण-माफी, राष्ट्र और राष्ट्रीय रियासतो के एकीकरण, बेकारी की समस्या के समाधान के लिए राजकीय सहायता की मॉग उठाई। वे समाचार पत्रो मे लेखन मे जुट गए। छुआछूत, दहेज-प्रथा, सती-प्रथा, विधवा-विवाह और अछूतोद्धार के साथ-साथ उन्होने धर्म निर्मित परपराओ, धार्मिक आडंबरो, ब्राह्मणो की धार्मिक तानाशाही के मुद्दे पर भी जम कर लिखा। परन्तु उन दिनो प्रैस पर ब्राह्मण वर्ग का कब्जा था, अत: वे मुद्दे या तो दबाए गए या उन्हे विकृत रूप देकर छापा गया। पेरियर रामास्वामी को प्रैस ने राष्ट्रद्रोही, धर्म विरोधी, नास्तिक कहकर बदनाम किया। यह साबित करने की कोशिश की कि यह आदमी अछूतो-दलितो का मसीहा बनने की धुन मे होश खो बैठा है, इसका दिमागी सतुलन खराब हो गया है।

पेरियर रामास्वामी ने ब्राह्मणो पर आरोप लगाते हुए कहा—"ब्राह्मणों ने अछूत समाज मे जन्मे महान पुरुषों को कभी अंगीकार नही किया, वे उनकी छाया से भी कोसो दूर रहे। भगवान तथा देवाधि मंदिरो मे कुत्ता, बिल्ली या व्यभिचारी सवर्ण तो प्रवेश पा सकता है, परन्तु शूद्र घोषित किए गए मनुष्य का प्रवेश सदा वर्जित माना जाता है। सवर्ण मानसिकता ने दलितो को ऐसे धरातल पर लाकर खडा कर दिया है कि उनके सामने सामाजिक सघर्ष और राष्ट्रीय युद्ध के अलावा कोई विकल्प बचा ही नही है।" उन्होने ब्राह्मणो द्वारा दलित समाज पर थोपे गए दिव्य अवतारवाद, स्वर्ग-नर्क, भाग्य-भगवान, पुनर्जन्म आदि मिथ्याचारो का खडन किया।

ब्राह्मणों से वे इतने चिढ गए थे कि उन्होने तमिलनाडु राज्य मे गैर-ब्राह्मण प्रशासन की स्थापना के लिए खुली लडाई छेड़ दी। उन्होंने स्पष्ट किया कि सामती तन्त्र की जडे तब तक नही काटी जा सकतीं, जब तक धर्म पर से ब्राह्मणो की ठेकेदारी हटा नहीं दी जाती।

रूढ़िवाद, अंधविश्वास और शोषण बिल्कुल समाप्त हो चुका था। श्रम के प्रति सम्मान और श्रमिक को मिलने वाले पुरस्कार से रामास्वामी का मन गद्‌गद् हो गया था। रूस के समाज से जब उन्होंने भारत की तुलना की तो उनका सिर शर्म से झुक गया। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अपने आप को आदर्शवादी, अहिंसावादी और मानवतावादी कहने वाला भारत वास्तव में दुनिया का सबसे अधिक दकियानूसी और पिछड़े समाज वाला देश है।

भारतीय सामंती मूल्यों पर प्रहार

1932 में रामास्वामी नायकर भारत वापस लौटे। दुनिया के अनेक देशों में पूँजीवादी व सामंतवादी व्यवस्थाओं का विनाश देखने के बाद अब उन्हें विश्वास हो गया था कि भारत में भी ये मूल्य ढाए जा सकते हैं। सच तो यह है कि भारत में पनपी सामंती व्यवस्था ने चन्द लोगों और कुछ जातियों को इतना शक्तिशाली बना दिया था कि वे अपनी सत्ता पर इतराने लगे थे और उन्होंने अपने लिए गुलामों और अधीनस्थों की एक बड़ी फौज को बनाए रखने की दृष्टि से दलित जातियों पर शिकंजा कसा था। सवर्ण जातियों के लोग अपनी अगली पीढ़ियों के लिए भी सुरक्षा और प्रभुता का तंत्र बनाए रखना चाहते थे, इसीलिए वे पिछड़ी जातियों के प्रति इतने क्रूर हो गए। दूसरों से गुलामी करवाने और बेगार लेने का सुख उनके कुछ इस तरह मुँह लग गया कि उनके दुख-दर्दों के प्रति उनकी संवेदना ही मर गई।

रामास्वामी अब पूरी तरह समझ चुके थे कि सामंती ढांचा ही इस अमानवीय क्रूरता के लिए जिम्मेदार है। इसे तोड़े बिना पिछड़ों और दलितों का उद्धार नहीं होगा। मनुष्य को ऊपर उठाने वाली तीन ताकतें होती हैं—अर्थशक्ति, राजनीतिक शक्ति और शिक्षा व संस्कारों से मिलने वाली मानसिक शक्ति। इन तीनों ही शक्तियों पर सवर्णों का कब्जा था। मनुवादी सामाजिक व्यवस्था ने जन्म के आधार पर वर्णों में समाज को बाँटकर शूद्रों को शक्तिहीन और असहाय बनाकर शेष तीनों वर्णों के रहम पर जीने के लिए छोड़ दिया था। हिन्दू धर्म-ग्रंथों खासकर 'मनुस्मृति' के अनुसार शूद्रों का काम सवर्णों की सेवा करना था। सेवा के बदले जो भी उन्हें मिल जाए, उस पर गुजारा करना उनकी नियति थी।

पीढ़ी-दर-पीढ़ी जब यह तंत्र चलता रहा तो शूद्रों ने अपनी नियति को स्वीकार कर लिया था और वे भूल गए थे कि उनके भी कुछ अधिकार हैं, उन्हें भी मनुष्यों की तरह जीने का हक है। प्रतिष्ठा, प्रभुता, स्वाधीनता और स्वाभिमान उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए भी उतना ही जरूरी है, जितना सवर्णों के लिए हुआ करता है। यदि सवर्णों से उनकी प्रभुता, स्वाधीनता और प्रतिष्ठा छीन ली जाए तो उनमें और शूद्र कहलाने वाली जातियों में कोई अन्तर नहीं रह जाएगा।

कालातर मे शूद्र कहलाने वाले वर्ण से जो जातियाँ विकसित हुई, वे सवर्णो के लिए अछूत बन गई। अब आवश्यकता इस बात की थी कि इन जातियो मे स्वाभिमान की इच्छा और आत्मविश्वास पैदा किया जाए। इन्हे एकजुट कर एक शक्तिशाली समाज में बदला जाए तथा राजनीतिक व सामाजिक संगठनों के मचो से उनके अधिकारों की माँग उठाने के साथ-साथ सामती ढाचे को तोडने की माग भी उठाई जाए।

सामती ढाचा धर्म के आडम्बर पर टिका था। इसीलिए हिन्दू धर्म के इन पाखण्डो को निशाना बनाया जाना आवश्यक था। धर्म की आड लेकर ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ बन बैठे थे और पूरे देश के तमाम मदिरो, पूजा-स्थलो और तीर्थो पर केवल उन्ही का कब्जा था।

1932 से 1934 तक उन्होने द्रविड आदोलन चलाया। इसके अतर्गत आर्थिक मुद्दे, रेलवे, जहाजरानी तथा बैंको के राष्ट्रीयकरण की माँग उठाई। पिछड़ी जाति के गरीबो की ऋण-माफी, राष्ट्र और राष्ट्रीय रियासतो के एकीकरण, बेकारी की समस्या के समाधान के लिए राजकीय सहायता की माँग उठाई। वे समाचार पत्रो मे लेखन मे जुट गए। छुआछूत, दहेज-प्रथा, सती-प्रथा, विधवा-विवाह और अछूतोद्धार के साथ-साथ उन्होने धर्म निर्मित परपराओ, धार्मिक आडबरो, ब्राह्मणो की धार्मिक तानाशाही के मुद्दे पर भी जम कर लिखा। परन्तु उन दिनो प्रैस पर ब्राह्मण वर्ग का कब्जा था, अत वे मुद्दे या तो दबाए गए या उन्हे विकृत रूप देकर छापा गया। पेरियर रामास्वामी को प्रैस ने राष्ट्द्रोही, धर्म विरोधी, नास्तिक कहकर बदनाम किया। यह साबित करने की कोशिश की कि यह आदमी अछूतो-दलितो का मसीहा बनने की धुन मे होश खो बैठा है, इसका दिमागी सतुलन खराब हो गया है।

पेरियर रामास्वामी ने ब्राह्मणो पर आरोप लगाते हुए कहा—''ब्राह्मणो ने अछूत समाज में जन्मे महान पुरुषों को कभी अगीकार नही किया, वे उनकी छाया से भी कोसो दूर रहे। भगवान तथा देवाधि मदिरो मे कुत्ता, बिल्ली या व्यभिचारी सवण तो प्रवेश पा सकता है, परन्तु शूद्र घोषित किए गए मनुष्य का प्रवेश सदा वर्जित माना जाता है। सवर्ण मानसिकता ने दलितो को ऐसे धरातल पर लाकर खडा कर दिया है कि उनके सामने सामाजिक संघर्ष और राष्ट्रीय युद्ध के अलावा कोई विकल्प बचा ही नही है।'' उन्होने ब्राह्मणो द्वारा दलित समाज पर थोपे गए दिव्य अवतारवाद, स्वर्ग-नर्क, भाग्य-भगवान, पुनर्जन्म आदि मिथ्याचारो का खडन किया।

ब्राह्मणो से वे इतने चिढ़ गए थे कि उन्होंने तमिलनाडु राज्य मे गैर-ब्राह्मण प्रशासन की स्थापना के लिए खुली लडाई छेड दी। उन्होंने स्पष्ट किया कि सामती तन्त्र की जड़ें तब तक नहीं काटी जा सकतीं, जब तक धर्म पर से ब्राह्मणो की ठेकेदारी हटा नहीं दी जाती।

मन्दिरो पर ब्राह्मणों का एकाधिकार और नारी-दासता के विरुद्ध संघर्ष

वे यह मानकर चलते थे कि जन्म के आधार पर ब्राह्मणो को मदिरो का स्वामित्व सौप देना सरासर गलत है। हर जाति में विद्वान और योग्य व्यक्ति होते हे। कर्म के आधार पर ब्राह्मणत्व तय किया जाना चाहिए। ब्राह्मणो से मदिरो का स्वामित्व छीन लिया जाए और क्षेत्र मे किसी भी जाति के योग्य और उदार व्यक्ति को मदिर का स्वामित्व सौपा जाए। ऐसा करने मे मदिरों मे हर जाति का समान रूप से प्रवेश संभव हो सकेगा। दलितों को शिक्षा का अधिकार मिलेगा, उन्हे समाज में बराबरी का दर्जा मिलेगा और संसाधनों व सुविधाओं मे उनकी भागीदारी होगी तो वे किसी भी तरह ब्राह्मणो से कम साबित नही होगे। बल्कि मानवता ओर उदारता मे वे ब्राह्मणो से बहुत आगे जाएँगे।

नारी को गुलाम बनाए रखने और उसे शिक्षा से वचित रखने को उन्होने सवर्णो का सामती षड्यंत्र बताया। नारी को व्यक्ति के स्थान पर मात्र भोग की वस्तु या परिचारिका समझना नारी का घोर अपमान है। जो नारी हमारी माँ है, हमारी अगली पीढियो की वाहक है यदि वह गुलाम मानसिकता वाली, अनपढ ओर दवी-पिची बनी रहेगी तो अपनी सतान को ऊपर उठाने मे वह क्या योगदान दे पाएगी। नारी का पीडित रहना मानवता का घोर अपमान है। एक ओर हिन्दू समाज देवियो की पूजा करता है। "यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमते तत्र देवता" का मत्र पढता है और दूसरी ओर नारियों पर घोर अत्याचार करते उनके व्यक्तित्व का हनन करते संकोच नहीं करता, यह कहाँ का न्याय है।

रामास्वामी नायकर का दर्शन

पेरियर रामास्वामी नायकर सामती व्यवस्था के घोर विरोधी थे, वे मनुस्मृति के सिद्धांतों ओर ब्राह्मणो द्वारा अपने निहित स्वार्थो के लिए बनाए गए धार्मिक नियमो व मर्यादाओ के खिलाफ थे। उन्होंने आर-पार देख लिया था कि हिन्दू समाज मे व्याप्त वर्ण व्यवस्था पिछडो और दलितों के अधिकार छीनकर उन्हें हमेशा सवर्णो का गुलाम बनाए रखने का एक हथियार है। इसलिए उन्होंने पिछड़ी जातियो को ब्राह्मण-धर्म से सावधान करने, धर्म के नाम पर ठगी से बचने और सत्य व न्याय पर आधारित समाज-व्यवस्था को समझने के लिए अपना दर्शन प्रचारित किया।

ईश्वर की सत्ता एक छलावा है

पेरियर रामास्वामी ईश्वर की सत्ता को नहीं मानते। उनका कहना था कि ईश्वर की सत्ता स्वीकारना और उसकी आड़ मे सुविधावादी जीवन जीना बहुत सरल है। इसके लिए बुद्धि की आवश्यकता नहीं होती। जबकि ईश्वर को नकारने

के लिए मजबूत तर्क-बुद्धि और विवेक का होना अनिवार्य है। ईश्वर और देवी-देवताओं का ससार ब्राह्मणों ने अपने निजी लाभ के लिए रचा हे। यदि वे ऐसा न करते तो उन्हे कौन पूछता ? ईश्वर को नकारते हुए उन्होंने कहा—"जब मनुष्य द्वारा मनुष्य का घोर अपमान होता है, शोषण होता है, उसका जीवन नर्क बनाया जाता है, तब ब्राह्मणो का वह दयालु ईश्वर कहॉ चला जाता है। दलितो और पीड़ितों पर अत्याचार करने वाले हाथों को तोडने के लिए वह क्यो नही आता।

जब-जब होय धर्म की हानी,
बाढ़े असुर अधम अभिमानी
तब-तब प्रभु धर मनुज शरीरा
हरहि कृपा निधि सज्जन पीरा।

तुलसीदास जी की रामायण की यह चौपाई दलितो पर लागू क्यो नही होती। 1800 वर्षो तक दलितों को शिक्षा और ससाधनो से अलग रखा गया। पीढी-दर-पीढी उन्हे सवर्णो की गुलामी करने पर मजबूर किया गया, तब ईश्वर को पता ही नही चला। क्या सवर्णो के ये कृत्य असुर अधम और अभिमानियो के कृत्य नहीं हे ? क्या इनके हाथ रोकने के लिए ईश्वर को अवतार नही लेना चाहिए था ?

सच तो यह है कि ईश्वर नाम की कोई चीज है ही नही, कोई सत्ता है ही नहीं। यह अवतारवाद और देवी-देवतावाद सब ब्राह्मणो की मनगढत कहानियॉ हैं। उनका विचार है कि ईश्वर के नाम पर हिन्दू अनेक प्रकार के गलत काम करते है। ईश्वर की मूर्तियॉ तक चुराने में नहीं हिचकते, फिर कैसे मान लिया जाए कि ईश्वर है ? इश्वर की सत्ता की आड में ब्राह्मणों ने अपनी धाक जमा ली। सवर्ण धनी होते चले गए। यदि ईश्वर की कल्पना नहीं की गई होती तो भारत में गरीब-अमीर, ऊॅच-नीच, जाति-पॉति और सामाजिक असमानता नही टिक पाती। कर्म-फल सिद्धांत का बहाना लेकर सपन्न लोग गरीबो का उपहास उडाते है। कहते हैं कि अपने पिछले जन्मो के कर्मो का फल भोगने के लिए ये लोग गरीब और दलित है। जो बुरे कर्म करता है वह नीच घर में जन्म लेता है और जो अच्छे कर्म करता है वह सज्जन या सामत के घर मे जन्मता है। यह सब मनगढत कहानियॉ है। न कोई पुनर्जन्म होता है, न कोई कर्म-फल सिद्धात। यदि कर्म-फल सिद्धात होता तो सबसे कठोर दड उन ब्राह्मणों को मिलता जो श्रद्धा और भक्ति से भरे दलितो को भगवान के मदिर में घुसने तक नहीं देते। मन्दिरों के सारे चढावे को भगवान की सत्ता की आड मे ब्राह्मण चट कर जाते है।

आत्मा या जीवात्मा

रामास्वामी नायकर आत्मा या जीवात्मा का अस्तित्व भी नहीं मानते। वे कहते

है मनुष्य की शरीर-रचना म आत्मा का कोई स्थान नही है। जब मनुष्य के शरीर मे प्रत्येक अग का कार्य निश्चित है तो आत्मा का और कोन सा काम रह जाता है। आत्मा मिथ्या कल्पना है और वह कल्पना धर्म के पाखड तंत्र की रक्षा करती है, इसीलिए ब्राह्मण उसके प्रचार मे लगे रहते है। आत्मा हिन्दू धर्म की आधार शिला है। आत्मा को निकाल दीजिए, हिन्दू धर्म मिट जाएगा।'

वे शरीर को प्रकृति से उत्पन्न होने वाला और जीवन को प्रकृति मे उत्पन्न मानते है। आत्मा की सत्ता को वे किसी भी रूप मे स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि मनुष्य का शरीर भी ठीक उसी प्रकार जन्म लेता है जेसे अन्य जानवरों, पक्षियों तथा पेड़-पौधो का जन्म होता है। जन्म के बाद शरीर का विकास होता है और एक अवधि के बाद शरीर कमजोर होने लगता है। शरीर की कोशिकाएँ शिराएँ और धमनियाँ काम करना बंद कर देती हैं और मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के बाद कोई आत्मा शरीर से बाहर निकल पर परलोक नही जाती। परलोक जेसी कोई सत्ता है ही नही। ब्राह्मणों ने तो पता नहीं कितने लोकों की कल्पना की है और कितने ही देवताओ को उनसे जोड़ दिया है। यह सब कल्पित जाल है। हिन्दू धर्म के पतन का एकमात्र कारण भी यही है।

यदि सचमुच आत्मा होती है और आत्मा ईश्वर का अश है तो वह दलितो और शूद्रो मे भी होती है। फिर वह आत्मा ब्राह्मण की आत्मा से भिन्न तो नही हो सकती। ईश्वर का अश तो सदा पवित्र और महान होना चाहिए। यदि ब्राह्मण के अदर ईश्वर का अश कहलाए जाने वाली आत्मा का निवास है तो वह दलितों के अन्दर मौजूद आत्मा को सताने के लिए तरह-तरह के हथकडे क्यो अपनाता है ? फिर कोई अछूत और नीचा क्यो ? जब सबके अन्दर एक ही आत्मा या एक ही तरह की आत्मा का निवास है तब तो सबका महत्त्व बराबर हुआ, फिर हम इतने कठोर क्यो हो जाते है कि किसी को भूख और ठड से मरने देते हैं और स्वयं दौलत इकट्ठी करने और प्रतिष्ठा के अम्बार लगाने मे लगे रहते है।

"यदि आत्मा होती तो वह अन्याय नहीं होने देती। ईश्वर का अश न अन्याय सह सकता है, न अन्याय कर सकता है। परन्तु जब हम साफ देख रहे है कि सवर्ण दलितों पर रात-दिन जुल्म ढहाते नहीं थकते तो कैसे मान लें कि सवर्णो में ईश्वर का अंश आत्मा है और दलितो में ऐसी कोई आत्मा है?"

धर्म

धर्म को ईश्वर तक पहुँचने का साधन माना गया है। परन्तु रामास्वामी ऐसा नहीं मानते। उनका विचार है कि धर्म की खोज सुविधा के लिए की गई है। धर्म इसलिए बनाया गया कि कबीलाई से सस्कृति-काल मे लोग एक दूसरे से बंधे रह

सके और समाज संगठित व शक्तिशाली बन जाए।

परन्तु ब्राह्मणों ने और संपन्नों ने सदा उसका दुरुपयोग किया है। धर्म से जुडी तरह-तरह की कहानियाँ ब्राह्मणों ने गढ़ ली और उन्हें दूसरों के गले मढ़ दिया। धर्म के दो ही रूप देखने को मिलते हैं—एक साम्प्रदायिकता और दूसरा आडंबर। साम्प्रदायिकता ने मनुष्य को मनुष्य का दुश्मन बना दिया है। साम्प्रदायिकता के कारण अलग-अलग राष्ट्र बने है। राष्ट्रो का विघटन हुआ है। समाज बंटे है। समाज टूटे है। मनुष्य ने मनुष्य का खून बहाया है और अब भी बहा रहा है। धर्म का रूप अत्यधिक भयावह तथा पूरी तरह अमानवीय है। वैज्ञानिक दृष्टि वाला और मानवीय गुणों से युक्त कोई भी मनुष्य धर्म के इस रूप को स्वीकार नही करेगा।

दूसरा रूप है आडंबर। पूजा-स्थलों और तीर्थ स्थानों की परम्पराएँ और मनुष्य को भगवान तक पहुँचाने की सीढी। रामास्वामी कहते है, जब भगवान है ही नही तो यह सीढी कहाँ है और किसको किस तक पहुँचाने का काम कर रही है। उनका स्पष्ट विचार है कि धर्म एक आडम्बर है, एक दिखावा है, एक छलावा है, एक धोखा है।

रामास्वामी नायकर की दृष्टि इतनी आर-पार थी कि उन्हे कोई सिद्धांत, कोई विचार बहका नहीं सकता। उनका दर्शन बहुत स्पष्ट था। उनका यही मानना था कि मनुष्य प्रकृति से उपजता है और प्रकृति में ही लीन हो जाता है। ईश्वर, आत्मा, धर्म, पुनर्जन्म आदि सब ढकोसले ब्राह्मणों ने पैदा किये हैं। अनेक प्रकार के देवी-देवता और अवतारों की कल्पना ब्राह्मणों ने की है। धर्म ग्रंथो की रचना ब्राह्मणों ने की ताकि बिना कुछ किए कीर्ति और प्रतिष्ठा कमाई जा सके। धन और सुविधाओं के साधन जुटाए जा सकें।

वे केवल मानव धर्म को मानते थे। उनके लिए मनुष्य ही सब कुछ था। मनुष्य का मनुष्य के हाथों अपमान और तिरस्कार बर्दाश्त नही किया जा सकता। दलितो और पिछडो के अधिकार सवर्णो द्वारा जबरन छीने गए है। अब यदि वे अपने अधिकारो को प्राप्त करना चाहते है तो धर्म, ईश्वर, पूजा-स्थल और तीर्थो के छलावे मे न आएँ। ब्राह्मणो ने ऐसी व्यवस्था को पैदा किया और सुरक्षित रखा है, जिसमे दलितों के अधिकार छीने जा सकें। अब समय आ गया है कि वे सत्य को पहचान ले और अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए संगठित होकर इस सामंतवादी ब्राह्मणवादी व्यवस्था से लडें और इसे ढहा दे।

सत्य को सूर्य के प्रकाश की तरह उजागर करने वाले दलितो और स्त्रियो के अधिकारो के संघर्ष मे अपना पूरा जीवन दाव पर लगा देने वाले महर्षि पेरियर रामास्वामी नायकर का 24 दिसम्बर, 1973 को शरीर पूरा हुआ।

डॉ० भीमराव अम्बेडकर

(14 अप्रैल, 1891 से 6 दिसम्बर, 1956)

बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर भारतीय दलित आंदोलन एवं सामाजिक न्याय अभियान के इतिहास मे एक ऐसा नाम है जो दूर से ही चमकता है।

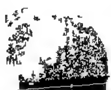
अछूत समाज मे जन्म लेकर, ब्राह्मण संचालित हिन्दू समाज के उच्च वर्गो की वर्जनाए, उपेक्षाए और अपमान से उपजी यातनाएं सहते हुए उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की और दलित व पिछड़े समाज को अपने साथ लेकर उनके अधिकारों की लडाई लड़ी।

अपने जीवन काल मे ही उन्होने पिछड़ों को उनके अधिकार दिलाए। अपनी योग्यता के बल पर भारत का संविधान लिखा और सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष किया। दलित व पिछडे समाज को शिक्षा के लिए प्रेरित किया। उसे विशेष सुविधाएं दिलाईं तथा राजनैतिक शक्ति का हथियार थमा कर उसे इतना मजबूत बना दिया कि वह अपना सदियो का खोया मनोबल फिर से प्राप्त कर राष्ट्र की मुख्य धारा मे सीना तान कर खड़ा हो गया है।

अपमान से अपमान तक

भीमराव का जन्म 14 अप्रैल, 1891 को मध्य प्रदेश के रत्नागिरी जिले मे मऊ नामक गॉव मे हुआ था। मऊ इन्दौर नगर के निकट है। इनके पिता का नाम राम जी राव तथा माता का नाम भीमाबाई था। पिता सेना मे सूबेदार थे। अम्बेडकर अपने माता-पिता की चौदहवीं सतान थे। उनसे पहले जन्मे भाई बहनो मे से केवल दो भाई और दो बहने ही जीवित थीं। अन्य की मृत्यु हो चुकी थी। उनके एक भाई का नाम आनंदराव था। दूसरे का बसंतराव। एक बहन का नाम मंजुला था और दूसरी का तुलसी।

पिता कहने को तो सूबेदार थे परन्तु वेतन केवल 50 रु मासिक मिलता था।



उन दिनो सेना मे नौकरी की अवधि 15 वर्ष हुआ करती थी।

15 वर्ष तक सेना को अपनी सेवाएँ देने के बाद रामजी राव सेवा मुक्त हो गए। अब उनके सामने रोजगार की समस्या थी।

वे मऊ से सतारा आ गए। सतारा मे बहुत दिनों तक रोजगार की तलाश मे भटकते रहे, अतत 40 रु. मासिक पर उन्हें एक कंपनी मे चौकीदारी का काम मिल गया।

इसके साथ मत खेलना, यह अछूत है

सतारा मे अम्बेडकर परिवार ने किसी तरह जीवन-यापन का सहारा तो ढूढ लिया परन्तु बच्चों के लिए समाज मे घुलने-मिलने की समस्या खड़ी हो गई। भीमराव के भाई-बहन तो अब तक यह जान चुके थे कि वे अछूत है और उन्हे समाज के लोग इज्जत नही देते। लोग उनसे बचते है, उनकी छुई हुई चीज नही खा सकते; ब्राह्मण तो इतना परहेज करते है कि यदि उनका साया भी छू जाए तो शिव-शिव करते हुए फिर से स्नान करने के लिए भाग खडे होते हैं। परन्तु भीमराव अभी छोटे थे। जब उन्होंने यह सब देखा तो उन्हे बडी हैरानी हुई। बचपन से ही भीमराव मे चीजों को गहराई से देखने और जानने की इच्छा तेज थी। वे जब घर से बाहर निकलते तो सब ओर देखते और दौडकर सब बच्चो के साथ घुल मिल जाना चाहते थे।

परन्तु वे इस सच्चाई से अनजान थे कि जिस परिवार और जाति मे उन्होंने जन्म लिया है, वह भारतीय समाज मे अछूत है। और उन्हें सब बच्चो के साथ हिल-मिलकर खेलने और उन्हें दोस्त बनाने का अधिकार नही है।

वे नही जानते थे कि ऊँची जाति और नीची जाति क्या होती है। निम्न वर्ण और उच्च वर्ण क्या होता है।

जब वे बाहर होते और कोई बच्चा उन्हे दिखाई दे जाता तो उसकी ओर दौड पडते। वे उसके साथ खेलना चाहते थे। परन्तु ज्यो ही वे बच्चे के पास पहुँचते और बच्चा हसकर उनकी ओर आने को होता, तभी दो हाथ पीछे से उस बच्चे को उठा लेते थे और भीमराव के कान मे आवाज पडती, "चल-चल. .यह अछूत है, इसके साथ मत खेलना।"

भीमराव ठगे से देखते रह जाते। उनको लगता जैसे किसी ने मुँह मे जाते-जात उनके हाथ से निवाला छीन लिया है।

कही बच्चो का झुड खेल रहा होता और भीमराव दौडकर खेल मे शामिल होना चाहते तो कोई बड़ा बच्चा झट से आगे आता और कहता, "नहीं तू हमारे साथ नहीं खेल सकता . तू अछूत है. जा यहाँ से .भाग . !"

भीमराव रोते हुए घर लौट आते। माँ पूछती, "क्या हुआ भीम . तू रो क्यों रहा है ?" तो वे माँ से सिसकते हुए कहते, "माँ, मुझे कोई अपने साथ नही खिलाता .सब बच्चे मुझे भगा देते है .कहते हैं . तू अछूत है।"

"हाँ बेटा।" माँ भीमराव को चिपटाते हुए कहतीं। "वे ठीक कहते हैं। हम अछूत है। वे बड़ी जाति के बच्चे है. .तू उनके साथ खेलने की जिद क्यो करता है क्यो जाना है तू वहाँ बेटा तू अपनी बहनो और अपने भाइयो के साथ खेल लिया कर . ।"

सिसकते-सिसकते भीमराव चुप हो जाते और प्रायः माँ की गोद में सो जाते।

स्कूल में दाखिला जूतों की जगह बैठते थे

जब छः वर्ष के हुए तो माँ भीमाबाई, रामजी राव के पीछे पड गई, "भीम अब बड़ा हो गया है। उसका दाखिला क्यों नही करवाते ?"

राम जी राव कुछ न कुछ बहाना बना कर टाल देते। कभी कहते, "बात की है," कभी कहते, "हो जाएगा, थोड़ा सब्र कर।'

आज जब भीमाबाई ने उन्हें टोका तो वे बिफर गए, "कहाँ कराऊँ इसका दाखिला. कैसे कराऊं. .तुझे क्या पता मैं कहाँ-कहाँ नही गया हूँ। पूरे आठ दिन की छुट्टी ले चुका हूं अब तक इस लड़के को दाखिल कराने के चक्कर मे, परन्तु कोई राजी नहीं होता. .अछूत जो हैं. .। हॉ, स्कूल मे ऊँची जाति के बच्चे पढते हैं .कहते हैं हमारा बच्चा उनके साथ नहीं बैठ सकता. मै पूछता हूँ जब साथ ही नही बैठ सकता तो पढ़ेगा कैसे ?"

भीमाबाई शांत रही। आगे बढकर उन्होंने पीछे से पति के कंधों पर अपने दोनो हाथ रख दिए और बोली, "आपका दुख मैं समझती हूँ.. पता नही क्यों इतना कह गई ..सूबेदार की पत्नी होने का गुरुर आ जाता है तो भूल जाती हूँ कि हम अछूत है.. ।"

अपने आँसू पीने के बाद राम जी राव ने पत्नी की ओर मुँह फेरा और उसके आँसुओं को अपनी दोनो हथेलियों में समेटते हुए बोले, 'बड़ी मुश्किल से एक हैड मास्टर ने हाँ की है, पर उसकी एक शर्त है।"

"शर्त. .?" कहते हुए भीमाबाई ने पति की आँखो मे देखना चाहा।

रामजी राव ने आँखे झुकाते हुए कहा, "कहता है, आपके लड़के को दाखिल तो कर लूगा। परन्तु उसे बड़ी जाति के बच्चों के साथ नहीं बिठा सकता। उसे अपनी टाट-पट्टी साथ लानी पड़ेगी और कक्षा की दहलीज़ मे जहाँ बच्चे अपने जूते उतारते हैं, वहाँ बैठकर पढना पड़ेगा।"

"नही . ।" भीमाबाई ने अपना माथा पीटा, "भगवान इतना अन्यायी नही हो

उसी समय भीमराव बाहर निकल आए। वे माता-पिता के बीच हुई बात सुन चुके थे। उनकी आँखों में दृढ़ निश्चय की चमक थी, वे बोले, "माँ...मेरा दाखिला करवा दो.. मैं जूतों की जगह बैठकर पढ़ लूगा।" फूल से कोमल बच्चे के मुंह से जब ये शब्द निकले तो पिता रामजी राव उनमें छिपी विवशता पर रो पड़े और अपने आँसुओं को छिपाने के लिए वहाँ से हट गए।

माँ भीमाबाई ने बेटे की आँखों के भाव पढ़े और उसे चिपटा कर सामने दीवार पर देखने लगीं, "हाँ, बेटा . कल से तू स्कूल जाएगा। जूतों की जगह ही सही ..तू पढ़ेगा.. ।" जब वे ये शब्द धीमी आवाज में कह रही थी, तो उनकी आँखों से आँसुओं का रेला बड़ी तेज गति से बह रहा था। उन्होंने दोनों हाथों से दबाकर भीमराव को चिपटा रखा था। वे नहीं चाहती थीं कि नन्हा भीम उनके आँसू देखे।

अगले दिन भीमराव का दाखिला हो गया। अपने घर से पुरानी टाट-पट्टी लेकर वे अपने पिता के साथ स्कूल गए और जूतों को एक ओर हटाकर टाट-पट्टी बिछाकर दहलीज में बैठ गए।

भीमराव ने देखा कि जब वे जूतों को हटाकर अपने बैठने के लिए जगह बना रहे थ, तो कुर्सी पर बैठे आचार्य और सामने बैंचों पर बैठे छात्र उन्हें ऐसे देख रहे थे मानों सोच रहे हों, इसके छूने से कहीं हमारे जूते तो अपवित्र नहीं हो गए ?

भीमराव की पढ़ाई शुरू हो गई। रोजाना अपनी टाट-पट्टी साथ लाना, बिछाकर जूतों की जगह बैठना, आधी छुट्टी में सबसे अलग बैठकर दूसरी ओर मुँह करके अपना खाना खत्म करना और इस बात का पूरा ध्यान रखना कि स्कूल का कोई विद्यार्थी या किसी की कोई चीज भूल से भी छू न जाए।

माँ बीमार पड़ीं, इलाज करने कोई वैद्य नहीं आया

भीमराव पढ़ने में बहुत तेज थे। घर से स्कूल दूर था। वे सवेरे घर से निकलते और शाम को लौटते थे। खूब मन लगाकर पढ़ते थे।

पहली कक्षा से वे पाँचवीं में आ गए। पूरे स्कूल में उन्होंने नाम कमा लिया। पिता जब उनके स्कूल जाते तो हैडमास्टर भीमराव की बहुत तारीफ करता। पिता को बहुत अच्छा लगता। घर लौट कर वे भीम की माँ को बताते तो भीमाबाई की आँखों में खुशी के आँसू आ जाते। ईश्वर को धन्यवाद देते हुए वे कहतीं, "किसी ने सच ही कहा है दाता ! तेरे घर देर तो है, पर अंधेर नहीं है।"

भीमराव के भविष्य के बारे में सुनहरे स्वप्न देखते-देखते भीमाबाई एक दिन बीमार पड़ गई। जब वे बीमार हुई तो रामजी राव चिंतित हो उठे। उनके बल पर तो पूरी गृहस्थी चल रही थी।

उन्होंने बड़ी देखभाल की, बहुत दौड़-भाग की। परन्तु सब बेकार गई। उन्हे ऐसे वैद्य की जरूरत थी जो उनके रोग को समझ सके और उन्हें अच्छी दवा देकर रोग के चंगुल से निकाल सके। परन्तु उनके घर आने को कोई वैद्य तैयार नही हुआ। सभी अच्छे वैद्य ऊँची जाति के थे। एक महार के घर भला कैसे आ सकते थे। उनका तो धर्म भ्रष्ट हो जाता।

वैद्य अपना धर्म बचाते रहे और सही दवा के अभाव मे भीमाबाई का जीवन चला गया। वे मृत्यु की गोद में हमेशा-हमेशा के लिए सो गई।

माँ की मृत्यु पर भीमराव बहुत रोए। भीमराव भूख के बहुत कच्चे थे। माँ इस बात का बहुत ख्याल रखा करती थीं कि उनका बेटा भूखा न रहे।

वही माँ जब अपने बच्चे को रोता बिलखता छोड़कर चली गई तो भीमराव ने कई दिन तक रोटी को हाथ नही लगाया।

पिता ने बहुत समझाया। पिता बोले, "बेटा तुम ऐसे ही रोते रहोगे तो तुम्हारी माँ के सपनों का क्या होगा ? तुम नहीं जानते तुम्हारी माँ की आँखो मे तुम्हे बड़ा आदमी बनाने के कितने सपने थे। बेटा, उठो...खाना खाओ और पढाई मे लग जाओ। वे सपने तुम्हे पूरे करने हैं।" भीमराव ने पिता के चेहरे पर देखा और रो पड़े। पिता ने पुत्र को गले से लगा लिया। अगले दिन से भीमराव नियमित स्कूल जाने लगे। माँ की आँखों के सपने अब उनके दिल में थे।

भूखे रहकर पढ़ाई की

माँ के लाडले भीमराव अब बिना खाना साथ लिए स्कूल आने लगे। 11-12 साल के बच्चे ने निश्चय किया कि खाना मिले न मिले, पढ़ाई का नुकसान नही होने दिया जाएगा।

हेडमास्टर ब्राह्मण थे। अछूतों के प्रति सामाजिक व्यवहार के सामने वे विवश थे, परन्तु भीम को भूखा देखा तो उन्हे दया आ गई। उसके लिए दोपहर की रोटी का इतजाम उन्होंने स्वय किया।

जब सब बच्चे दोपहर का भोजन करने बैठते तो वह एक दोने में सब्जी रखकर भीमराव के सामने रख देते और दूरे से ही रोटियाँ उसके हाथों में फैंक देते थे। भीमराव अपनी भूख मिटा लेते थे।

दूसरे लडके जब हैडमास्टर को ऐसा करते देखते तो काना-फूसी करते। वे कहते, "लगता है हैडमास्टर का दिमाग चल गया है। ब्राह्मण होते हुए भी यह महार जाति के अछूत लड़के के लिए रोटी बनाकर खिलाते है।"

भीमराव लड़कों के मुंह से जब ऐसी बातें सुनते, अपने प्रति उनके चेहरों पर ओर आँखों में घृणा देखते तो सहम जाते। कभी-कभी उन्हे बहुत गुस्सा आता।

परन्तु वे सब सह जाते।

एक बार उनकी माँ ने उनके कान मे कहा था, "एक बात याद रखना बेटा, हम लोग महार जाति के हैं, अछूत है। तुम्हें समाज मे बहुत अपमान सहना पडेगा, बडी घृणा झेलनी पडेगी। इस सब की परवाह न करना। किसी से उलझना नही, तुम्हें पढना है। बिना पढ़े कोई बडा आदमी नही बन सकता। जब तुम बडे आदमी बन जाओ तब समाज की इस गदी रीति को बदल डालना। यही मेरी इच्छा है।"

माँ तो नहीं रही, पर उनके ये शब्द भीमराव के लिए प्रेरणा के स्रोत बन गए। जब-जब उन्हे कोई घृणा की नजर से देखता, जब-जब कोई उनका अपमान करता, माँ मानों उनके कानों में कह देती, "भडकना नहीं, सहते जाना है। रुकना नही, आगे बढते जाना है।" भीमराव वैसा ही करते, अपमान और घृणा सहते-सहते उन्हे चुप रहने की आदत पड गई। अब कोई कुछ भी कहे, कुछ भी करे, वे प्रायः चुप रहते और अपने काम मे लगे रहते।

परात गिरवी रखकर हाई स्कूल में दाखिला दिलाया

कक्षा पाँच पास करने के बाद भीमराव को दूसरे स्कूल मे दाखिला लेना था। भीमराव के पिता पत्नी के देहान्त के बाद बहुत परेशान रहने लगे थे। नौकरी करना और घर में बच्चो की देख भाल करना, वे बहुत दुखी थे। घर मे बहुत गरीबी आ गई।

भीमराव के दाखिले के लिए वे एल फिस्टन हाई स्कूल मे बात कर आए। भीमराव के अक बहुत अच्छे थे। दाखिला मिल गया, परन्तु पैसा ? वह कहाँ से आए ? और कोई चारा न देखकर रामजी राव ने अपनी पीतल की भारी परात निकाली और उसे लेकर सेठ सूरजमल के पास जा पहुँचे।

सूरजमल सूदखोर और लालची था। वह जेवर या कीमती चीजे गिरवीं रखकर ब्याज पर पैसा देता था और उससे लिखा लेता था कि समय पर नही छुड़ा पाया तो चीज उसकी हो जाएगी।

उसने रामजी राव की भारी परात रख ली और उनसे लिखा लिया कि यदि निश्चित तिथि तक पैसा ब्याज सहित वापस नहीं किया तो परात उसकी हो जाएगी।

पुत्र को पढ़ाने की धुन में रामजी राव ने परात की परवाह न की। उस सूदखोर का ब्याज इतना अधिक था कि भीमराव के पिता दी हुई तिथि तक पैसा न जुटा सके और उनकी गाढ़ी कमाई से खरीदी गई परात उस सूदखोर की हो गई।

इस देश मे मजबूरी का फायदा उठाने वाले, इंसानियत का चोगा पहन कर इसानियत का खून करने वालो की कमी नही रही है। ऐसे लोगो ने अपने छोटे से

स्वार्थ के लिए दूसरों के वडे-बडे नुकसान किए है। दुर्भाग्य तो यह है कि कोई कानून इस क्रूर हृदय और कुटिल बुद्धि हैवानी की गर्दने नहीं नाप सका।

कानून बनाकर अछूतों का उद्धार करूँगा

परात गिरवी रखने के बाद जब रामजी राव प्राइमरी स्कूल के हैडमास्टर के पास पहुँचे। भीमराव की मदद करने के लिए उन्होने हैडमास्टर को बार-बार धन्यवाद दिया और सर्टीफिकेट माँगा।

हैडमास्टर भीमराव से बहुत खुश थे। उसने प्रथम श्रेणी पाई थी और बहुत अच्छे अंक प्राप्त किए थे।

हैडमास्टर ने सर्टीफिकेट तैयार कर दिया और उसमे उनका पूरा नाम लिखा– भीमराव अम्बेडकर।'

पिता रामजी राव ने इसे ब्राह्मण का आशीर्वाद मानकर खुशी जाहिर की। उस दिन उन्हें क्या पता था कि यह 'अम्बेडकर' शब्द एक दिन भारतीय इतिहास की शानदार धरोहर बनेगा और पूरे देश की पिछडी जातियो के लोग इससे प्रेरणा, आश्रय और सामाजिक न्याय प्राप्त करते हुए उन अधिकारों को प्राप्त करने मे सफल होंगे जिनका संकल्प लेकर भीमराव ने अपमान पर अपमान सहते हुए अपनी पढाई जारी रखी थी और जिन अधिकारों के सपने मरते समय उनकी माँ की आँखों मे थे।

हेडमास्टर को उस समय भीमराव की बात पर तनिक भी विश्वास नही हुआ। वे जानते थे कि समाज को बदलना इतना आसान नहीं। फिर भी उन्होंने कहा, "ईश्वर तुम्हारी मदद करे।"

सर्टीफिकेट लेने के बाद जब भीमराव चलने लगे तो श्रद्धा और भावुकता से भरकर वे गुरु जी के चरण छूने के लिए झुके परन्तु तभी उन्हें याद आ गया कि चरण तो वह छू नही सकता। छूने से गुरुजी अपवित्र हो जाएंगे। अतः चरणों की ओर बढते उनके हाथ ठिठक गए और भीमराव ने कहा,

"क्षमा करना गुरुजी ! मै आपके चरण नहीं छू सकता, अछूत जो हूँ।"

"मेरा आशीर्वाद सदा, तुम्हारे साथ है।" भावुक स्वर मे गुरुजी बोले, "लेकिन बेटे बहुत दिनों से एक बात मेरे मन में घूम रही है। अब पूछ ही लेता हूँ। तुमने पाँच साल तक दूसरो छात्रो के जूतों की जगह बैठकर पढ़ाई की, भूखे रहकर, बार-बार अपमान सहकर भी जरा विचलित नही हुए। ऐसा क्या है इस पढाई मे जो तुम इतना सब सह रहे हो ? आगे पढोगे तो और भी अपमान झेलना पड़ेगा। फिर तुम महार जाति के हो, तुम्हें ऊँची नौकरी भी नही मिल पाएगी। तुम यह सब क्यो कर रहे हो ?"

भीमराव के कदम रुक गए। वे मुड़े और सम्मान पूर्वक ब्राह्मण के सामने खडे होकर बोले, "गुरुजी. .मैं सब कुछ सहूँगा, मुझे पढ-लिखकर एक दिन एक नया कानून बनाना है। एक ऐसा कानून जो अछूतों को समाज मे ऊँचा स्थान दिलाएगा। देख लेना, सरकार इस कानून को मानेगी।

1904 में एल फिस्टन हाई स्कूल मे भीमराव का नाम लिख गया। अब वे भीमराव अम्बेडकर कहलाने लगे थे। लडके उन्हें केवल 'भीम' कहा करते थे।

एक दिन कक्षा में एक अजीब घटना घटी। अध्यापक भूगोल पढा रहे थे। यकायक वे भीमराव से बोले, "भीम, तुम उठो और चॉक से ब्लैक बोर्ड पर भारत का मानचित्र बनाओ।"

भीमराव उठे। चाक लेकर जैसे ही वे ब्लैक बोर्ड की ओर बढ़े, लड़के आपस में खुसर-फुसर करने लगे।

तभी एक लड़का खड़ा हुआ और बोला, "ठहरो भीम।"

लड़के की आवाज पर भीमराव ठिठक गए अध्यापक ने डांट कर लडके से कहा, "क्या बात है ?"

"सर ब्लैक बोर्ड के पीछे हम लोग अपना खाना रखते हैं। भीम महार है, इसने हमारा खाना छू लिया तो वह अपवित्र हो जाएगा और हमें फैंकना पडेगा।"

"ओह", अध्यापक के मुँह से केवल एक शब्द निकला।

तभी सब लडके उठे और उन्होंने अपने-अपने खाने के डिब्बे वहाँ से उठा लिए।

इसके बाद भीमराव आगे बढे और उन्होंने ब्लैक बोर्ड पर भारत का मानचित्र बनाया।

कक्षा समाप्त होने के बाद सब लोग बाहर निकल गए। यह खाना खाने का समय था। सब लडके एक झुंड मे बैठकर खाना खाने लगे।

भीमराव अम्बेडकर आपना खाना लेकर एक ओर चला गए। खाना खाते समय वह सोच रहे थे, एक अपमान और सही। अब तो इस सब की आदत डालनी होगी।

1906 में उनके पिता ने भीखू वालंगकर की बेटी रमाबाई के साथ भीमराव की शादी कर दी।

1907 में उन्होंने 750 में 382 अक लेकर हाई स्कूल परीक्षा पास की।

बड़ौदा नरेश की कृपा

हाई स्कूल पास करने के बाद भीमराव के सामने आगे पढ़ने की समस्या आ खडी हुई। पिता पहले से ही बहुत दुखी थे, वे बूढ़े हो चले थे। घर मे गरीबी थी।

हाई स्कूल में दाखिला दिलाने के लिए जो परात उन्होंने गिरवी रखी थी, उसे ही नहीं छुडा पाए थे। उधार तक कोई नहीं देता था। अब पैसा कहाँ से आएगा।

हाई स्कूल मे पढते समय भीमराव की एक ईसाई लडके से अच्छी दोस्ती हो गई थी। उसका नाम था—कैलुस्कर। भीमराव ने अपनी समस्या कैलुस्कर के सामने रख दी। कैलुस्कर ने उसे महाराजा बड़ौदा से मिलने की सलाह दी।

अगले ही दिन भीमराव बडौदा नरेश की कोठी पर जा पहुँचे। उन्होने अपनी पूरी कहानी बिना झिझक के बड़ौदा नरेश को सुना दी।

राजा साहब जानते थे कि एक महार जाति के लडके के लिए उच्च शिक्षा लेना बहुत कठिन है। पैसे की कमी और अपमान दोनो ही आढे आते है।

परन्तु भीमराव का भोलापन, ईमानदारी और राजा पर विश्वास काम कर गया। उन्हें लगा कि यह जानते हुए भी कि मै उच्च जाति का हूँ, यह अछूत लडका मुझ पर विश्वास करके मेरे पास आया है, तो मुझे इसकी मदद अवश्य करनी चाहिए।

उन्होंने एल फिस्टन में भीमराव का दाखिला करा दिया और खजाने से 25 रु महीना छात्रवृत्ति दिलवा दी।

भीमराव ने लगन से पढ़ना शुरू कर दिया। उन्हीं दिनों उसके पिता राम जी राव भी मुंबई आ गए। उनकी सतारा की नौकरी छूट गई थी। अतः वे परिवार को लेकर बेटे के साथ ही रहने लगे।

नवम्बर 1912 में भीमराव की पत्नी रमाबाई ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम रखा गया यशवन्त। जनवरी 1913 मे भीमराव ने बी. ए. पास कर लिया। जब उन्होंने देखा कि पिता गरीबी की मार नहीं झेल पा रहे हैं, तो उन्होने बडौदा के महाराजा से कहकर सेना में नौकरी के लिए आवेदन कर दिया।

बी. ए. पास कर चुके थे। महाराज की सिफारिश थी, अतः भीमराव को लेफ्टीनेंट के पद पर नियुक्ति मिल गई।

पिता से मिलने के लिए नौकरी छोड़ दी

रमाबाई अपने पुत्र यशवन्त की देख-भाल तथा घर परिवार का दायित्व निभा रही थीं। और भीमराव लैफ्टीनेंट के रूप में बडौदा की रियासत को अपनी सेवाए दे रहे थे। एक दिन उन्हें घर से तार मिला। लिखा था, पिता बहुत बीमार है, छुट्टी लेकर आ जाओ।

पिता की बीमारी से भीमराव विचलित हो गए।

वे बड़े अफसर के पास पहुँचे और तार दिखा कर छुट्टी के लिए प्रार्थना की, परन्तु अफसर ने छुट्टी देने से इनकार कर दिया।

भीमराव अपनी माता को तो खो चुके थे। अब पिता ही उनके लिए सब कुछ थे। वे उन्हे खोना नहीं चाहते थे। उन्हें संदेह था कि यदि अच्छा इलाज नहीं मिला तो पिता की भी उसी तरह मृत्यु हो जाएगी, जिस तरह माँ की हो गई थी। अत उन्होंने अफसर से बार-बार प्रार्थना की। परन्तु अफसर अड गया और बोला, "छुट्टी किसी हालत मे नहीं मिल सकती।"

"तो फिर मेरा इस्तीफा स्वीकार कीजिए।" भीमराव ने कहा।

अफसर बोला, "हाँ, यह हो सकता है। आप नौकरी छोड दीजिए और अपने घर चले जाइए ।"

भीमराव ने एक क्षण नहीं गँवाया। तुरन्त इस्तीफा दिया और पिता की सेवा के लिए उनके पास चले गए।

पिता को जब यह पता चला कि उनका बेटा नौकरी छोड़ आया है तो उन्हे बडा दु:ख हुआ।

भीमराव ने उनका बहुत इलाज कराया परन्तु वे ठीक न हो सके। फरवरी 1913 में एक दिन वे अपने पुत्र भीमराव अम्बेडकर को समाज से जूझने के लिए अकेला छोडकर इस दुनिया से चले गए।

उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका रवानगी

अपने मित्र कैलुस्कर की सलाह पर एक बार फिर भीमराव बड़ौदा नरेश महाराज गायकवाड़ की कोठी पर जा पहुँचे। उस समय महाराज भारत के अनेक होनहार युवको को उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका भेजने की योजना में लगे थे।

भीमराव ने महाराज को पूरी कहानी सुनाई और अमेरिका जाकर पढ़ाई करने की इच्छा व्यक्त की। महाराज इस बात से बड़े प्रभावित हुए कि भीमराव ने पिता की सेवा करने के लिए लैफ्टीनेट की नौकरी को लात मार दी थी। वे स्वाभिमानी युवकों को बहुत पसद करते थे। उन्होंने भीमराव को अनुमति दे दी। उन्हें एक शपथ-पत्र पर हस्ताक्षर करने पड़े जिसमें लिखा था कि शिक्षा पूरी करने के बाद वे 10 वर्ष तक रियासत की सेवा करेंगे।

4 जून 1913 को अपनी पत्नी रमाबाई और छ माह के बेटे यशवन्त से विदा लेकर जहाज द्वारा मुंबई से अमेरिका के लिए रवाना हुए।

जुलाई 1913 को उन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय न्यूयार्क मे राजनीति संकाय मे दाखिला ले लिया।

अमेरिका का वातावरण उन्हे बहुत अच्छा लगा। यहाँ जो खुला स्वागत उन्हे मिला, इससे वे हैरान रह गए। भारत की जमीन पर उन्हे कदम-कदम पर अपमान सहना पड़ता था। परन्तु अमेरिका जातिवाद के विष से मुक्त था। यहाँ व्यक्ति को

महत्त्व दिया जाता था

दिन भर लड़के-लड़कियां उनसे खुलकर मिलते थे और खूब बातें करते थे अमेरिका प्रवास के दौरान उनकी मुलाकात भारतीय छात्र नवल भटेना से हुई। उस समय भीमराव होस्टल में अलग कमरा लेकर रह रहे थे। नवल भटेना को भीमराव से दोस्ती हो गई। उन्होने भीमराव को अपने ही कक्ष मे बुला लिया। फिर वे दोनो एक ही कक्ष मे साथ-साथ रहने लगे। साथ-साथ रहते, खाते खेलते, बाते करते और जमकर पढ़ाई करते। भीमराव को इतने सुख का अनुभव होने लगा जिसकी उन्होंने कल्पना भी नही की थी। होस्टल और पढ़ाई का पूरा खर्चा बड़ौदा नरेश दे रहे थे।

भीमराव सबके साथ घुल मिलकर रहते हुए भी सबसे अलग थे। वे सादा जीवन पसंद करते थे। सादा खाना खाते थे और खूब जमकर पढ़ते थे। दूसरे लड़को की तरह फिल्म देखने अथवा गप्पें लड़ाने में उन्हे तनिक भी रुचि नहीं थी।

अपनी माँ का स्वप्न, अपने पिता की प्रेरणा, अपनी जाति के उद्धार की चिन्ता, सदा उन्हें लक्ष्य से बांधे रहती थी। भटकने और गुम हो जाने के लिए उनके जीवन में कोई गुंजाइश नहीं थी। कौम और देश के नाम समर्पित पूरा जीवन।

दो वर्ष की अवधि में उन्होंने इतनी पुस्तके खरीद कर इकट्ठी कर लीं कि उनका अपना छोटा पुस्तकालय ही बन गया। रात-दिन पढ़ते रहते थे। बहुत कुछ जानना चाहते थे, बहुत कुछ करना चाहते थे।

5 जून 1915 को भीमराव अम्बेडकर ने कोलबिया विश्वविद्यालय से एम. ए. की परीक्षा पास की।

इसके बाद वे पी एच डी के लिए अध्ययन और लेखन मे जुट गए। उन्होंने "द नेशनल डिवाइडेंड ऑफ इंडिया—ए हिस्टोरिकल एण्ड एनेलिटिकल स्टडी" नामक विषय पर थीसिस लिखी और उसे पी. एच डी के लिए कोलंबिया विश्वविद्यालय को दे दिया।

पी. एच. डी. का काम समाप्त होते ही जून 1916 में लदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स एण्ड पॉलिटिकल साइंस में अध्ययन करने के लिए लंदन चले गए।

1917 में कोलबिया विश्वविद्यालय ने उन्हें पी.एच डी की उपाधि प्रदान की।

जून 1917 में जब वे लंदन में अर्थशास्त्र मे एम. एस. सी. की डिग्री के लिए अध्ययन कर रहे थे तब उन्हे सूचना मिली कि महाराज गायकवाड ने उनकी छात्रवृत्ति बद कर दी है और अब उन्हे अपनी लिखित शर्त के अनुसार भारत लौट आना चाहिए और 10 वर्ष तक रियासत की सेवा करनी चाहिए।

अम्बेडकर के सामने भारत लौटने के सिवाय कोई चारा न था। उन्होंने लंदन में अपनी उच्चस्तरीय पढ़ाई बंद कर दी और भारत लौट आए।

ऊँचा पद तो मिला परन्तु अपमान ने पीछा नहीं छोड़ा

बडे उदास मन से अम्बेडकर भारत लौटे। उनके आगमन से महाराज गायकवाड को बड़ी प्रसन्नता थी। वे उन्हे कोई बडा पद देना चाहते थे। अपने ही संसार मे मस्त रहने वाले महाराज यह नहीं जान पाए कि अम्बेडकर को अपनी पढ़ाई बीच में रोककर आना पड़ा है। महाराज के सलाहकारों ने उन्हें यही सूचना दी थी कि अम्बेडकर की पढ़ाई पूरी हो चुकी है अब उनकी छात्रवृत्ति बद कर दी जाए और रियासत की सेवा के लिए वापस बुला लिया जाए।

महाराज ने अपने अधिकारियों को आदेश दिया था कि अम्बेडकर को बडे सम्मानपूर्वक एक जुलूस के साथ रियासत मे लाया जाए।

परन्तु अधिकारियो को यह बात अच्छा न लगी। ऊँची जाति के गर्व में चूर वे एक महार जाति के व्यक्ति का फूल मालाओं से स्वागत भला कैसे कर सकते थे। उन्होंने मिलकर यह फैसला लिया कि महाराज की इस आज्ञा को न माना जाए।

भीमराव अम्बेडकर दूसरी मिट्टी के बने थे। उन्हें अपने कर्तव्य-पालन और जातीय अधिकारों की लड़ाई लडने के सिवाय कुछ और सूझता ही नही था। मान-अपमान की दुनिया से तो वे बहुत ऊपर उठ चुके थे।

बडौदा रेलवे स्टेशन पर उतरने के बाद उन्होंने अपना सामान उठाया और पैदल ही सीधे राजभवन जा पहुँचे।

महाराज गायकवाड़ के प्रति उनके मन मे बहुत श्रद्धा थी। उनकी पढाई बीच मे छूट गई थी। इस बात का दुख तो जरूर था। परन्तु महाराज ने उच्च जाति के अधिकारियो के विरोध के बावजूद उनकी इतनी सहायता की थी, इसके लिए उनका रोम-रोम महाराज का आभारी था।

महाराज के सामने पहुँचते ही उन्होंने झुक कर उन्हे प्रणाम किया। महाराज ने उन्हें आशीर्वाद दिया और अमेरिका तथा ब्रिटेन के बारे मे बहुत सी बाते कीं। भीमराव ने उन्हे बताया कि अमेरिका के लोग भारतीयो का आदर करते है। परन्तु ब्रिटेन के लोग बराबरी का दर्जा नहीं देते। वे भारतीयों को अपना गुलाम मानते हैं।

महाराज को अम्बेडकर से पश्चिमी दुनिया के बारे मे बहुत कुछ जानने को मिला। अम्बडेकर को महाराज का व्यवहार बहुत अच्छा लगा। महाराज ने सैन्य सचिव के पद पर भीमराव की नियुक्ति का आदेश जारी कर दिया। दो हजार रु. महीने वेतन और सभी सुविधाएं।

परन्तु उनकी रियासत में ऊँच-नीच और जातिवाद का जो ज़हर पहले से ही मौजूद था, उसके आगे वे भी विवश थे। बड़ी जाति के अधिकारियों व कर्मचारियों को भीमराव के अंदर छिपा महान इसान उतना नजर नहीं आता था जितना यह सत्य नजर आता था कि वे महार जाति के है और उनके छूने से वे अपवित्र हो

जाएगे

सैन्य सचिव के कार्यालय का चपरासी तक उन्हें छोटी जाति के कारण अपने से नीचा समझता था। वे सैन्य सचिव की कुर्सी पर बैठकर जब कोई फाइल मगवाते तो चपरासी दूर से ही उनकी मेज पर फैंक कर चला जाता था। जब वह फाइल रखने के लिए वापस लेने आता तब भीमराव से उसी तरह दूर से ही फाइल लेता था।

चपरासी के जाने के बाद वे अपना सिर दोनो हाथो मे थाम लेते और दूर अमेरिका मे उनका मन जा पहुँचता। वे सोचते अमेरिका ने कितनी तरक्की की है। वहाँ के लोग जाति-पाति के भेद-भाव से बहुत ऊपर केवल काम करते हैं और खूब तरक्की करते है। जाति के कारण आदमी के हाथों आदमी का अपमान कितनी बड़ी बुराई है। इतना महान अतीत, इतनी सुन्दर सस्कृति और यह जातीय घृणा। हमारे देश के लोगों को आखिर हो क्या गया है ? एक ओर तो हम मानवता की बातें करते हैं, मानव मूल्यो की बाते करते हैं, सारी दुनिया को एक महान जीवन शैली देने की बाते करते है, दूसरी ओर अपने ही भाइयों के साथ इतना अपमानजनक व्यवहार करते हैं कि उनसे छू जाएँ तो अपने आपको अपवित्र मानने लगते हैं। कितना बडा ढोग, कितना बड़ा छलावा। अब समझ में आता है, हमने तरक्की क्यों नहीं की। अब समझ मे आता है, हम गुलाम क्यों हैं ? यह जातीय घृणा लोगो के दिलो से नहीं निकाली गई तो यह देश नष्ट हो जाएगा। जो कौमें अपने ही एक भाग को पराया समझने लग जाती है, वे बच नहीं पातीं।

एक दिन उन्होंने चपरासी से पानी लाने को कहा। परन्तु चपरासी ने पानी देने से साफ इनकार कर दिया। बड़ी जाति का चपरासी छोटी जाति के सैन्य सचिव जैसे ऊँचे अधिकारी को भला पानी कैसे पिला सकता था। उसका सारा जातीय दर्प टुकड़े-टुकड़े हो जाता, वह धर्म-भ्रष्ट हो जाता।

भीमराव जानते थे कि चपरासी ऊँची जाति में जन्मा है। इसलिए वह उच्च शिक्षा प्राप्त और उच्च पद प्राप्त अम्बेडकर की तुलना मे बहुत बडा है, उसे किसी भी तर्क से झुकाया नहीं जा सकता।

उन्होने अधिक तर्क नहीं किया। कार्यालय में पानी के घडे थे, परन्तु क्योंकि वे अछूत थे, अत· घड़े से स्वयं पानी लेने का उन्हें अधिकार न था। अत· कोई चारा न देख वे कुर्सी से उठे और बाहर चले गए।

उनके बाहर जाते ही कार्यालय के सब कर्मचारी इकट्ठे हो गए। वे चपरासी को शाबाशी देने लगे। इतने बड़े अधिकारी का आदेश न मानकर उसने अपना जातीय स्वाभिमान बचा लिया था। सभी बडी जाति वालों के लिए यह गौरव की बात थी।

फिर सब राजा साहब की आलोचना करने लगे। विद्वान है तो क्या हुआ, है

तो महार जाति का उसका छुआ कोइ खा नही सकता उसकी सेवा करे तो धर्म जाता है यह तो सरासर गलत है, नीची जाति के आदमी को ऊँचे पद पर नहीं होना चाहिए।

अम्बेडकार कही से पानी पीकर अपने कार्यालय में लौटे तो कर्मचारी भागे। परन्तु उनके चेहरों पर लिखे संदेश को अम्बेडकर ने पढ़ लिया और फैसला कर लिया कि इस प्रकार रियासत की सेवा न हो सकेगी।

अपमान के इस घूंट को वे पी गए। परन्तु एक और समस्या उनके सामने आ खड़ी हुई। वे अपने परिवार को वडौदा लाना चाहते थे। परन्तु अछूत होने के कारण कोई उन्हे मकान किराए पर देने को तैयार न था। जब उन्हें कहीं जगह न मिली तो उन्होंने एक पारसी सराय में कमरा किराए पर ले लिया।

अभी कुछ ही दिन हुए थे इस कमरे में आए कि लोगो को उनकी जाति का पता लग गया। बस सारे मुहल्ले के लोग इकट्ठे हो गए और उन्हें पीटने की तैयारी करने लगे। उनकी दृष्टि में यह सबसे बड़ा अपराध था कि एक अछूत उनकी सराय मे उनके बीच आकर रहने लगे और उनका धर्म भ्रष्ट कर दे।

बहुत कहा सुनी हुई। भीमराव ने हाथ जोड़कर सब लोगो से माफी मांगी और वचन दिया कि वे तुरन्त कमरा खाली कर देंगे और इस सराय में कभी दिखाई नहीं देगे।

परन्तु जो अपमान हुआ था, उससे वे अन्दर तक दहल गए। उन्होंने राजा साहब को एक पत्र लिखा। राजा साहब ने उनकी व्यथा को समझा और दीवान से कहा कि अम्बेडकर के रहने का इंतजाम करें। दीवान ने अकेले में अम्बेडकर को समझाया, "बाबू, तुम अमरीका में और लंदन में पढे हो यह तो ठीक है, पर इस समाज को मैं क्या करूँ ? तुम से राजा साहब को बहुत हमदर्दी है, मुझे भी कम नही है, पर क्या करूँ, ये लोग सुधरने वाले नहीं। बाबू यह मामूली बात नहीं है, छुआछूत का मामला है। मैंने तुम्हारे लिए रहने का इंतजाम किया तो लोग मुझे जीने नहीं देगे। हम हर चीज से निबट सकते है, पर छुआछूत से नहीं।"

दीवान की बात सुनकर अम्बेडकर सन्न रह गए; फिर बोले—"तो फिर मैं क्या करूँ। मैं तो प्रतिज्ञा-पत्र से बँधा हूँ, नहीं तो इस्तीफा देकर चला जाता।"

दीवान धीरे से बोला, "प्रतिज्ञा-पत्र की बात भूल जाओ बाबू, मैं महाराज को सब समझा दूँगा।"

भीमराव समझ गए, दीवान को इस्तीफे से ऐतराज नही है, बल्कि वह तो यही चाहता है कि किसी तरह पीछा छूटे।

उन्होने तुरन्त त्याग-पत्र लिखा और दीवान को पकड़ा दिया।

महाराज से मिले बिना ही वे सीधे रेलवे स्टेशन चले गए और वहाँ से रेलगाडी

पकड़ कर बम्बई जा पहुँचे

प्रोफेसर अम्बेडकर : घड़ा छूने पर हंगामा

बम्बई आते ही वे अपने ईसाई मित्र कैलुस्कर से मिले। उसने सीडेनहॉम कॉलेज ऑफ कॉमर्स एण्ड इकोनॉमिक्स, मुबई मे अर्जी देने को कहा। कॉलेज मे राजनैतिक अर्थशास्त्र (Political Economy) के प्रोफेसर की जगह खाली थी। अम्बेडकर को कॉलेज मे नौकरी मिल गई। नवम्बर 1918 मे उन्होने इस कॉलेज मे राजनीति और अर्थशास्त्र पढ़ाना शुरु कर दिया।

उनके पढाने का ढंग इतना अच्छा था कि देखते ही देखते वे छात्रो के बीच लोकप्रिय हो गए। ज्यों ही उनके साथियों को पता लगा कि वे लदन और अमेरिका में पढ़ कर आए है तो उनका आदर और बढ़ गया। छात्रो के बीच उनकी बडी तारीफे होने लगीं। परन्तु लोकप्रियता के साथ-साथ अछूत जाति में पैदा होने का अभिशाप भी बराबर उनका पीछा कर रहा था।

कॉलेज में पानी पीने के लिए मिट्टी के बड़े-बडे घड़े रखे गए थे। सब लोग अपने हाथ से घडों से गिलासो में पानी लेकर पिया करते थे। एक दिन अम्बेडकर जब कक्षा से पढाकर निकले तो प्यास से उनका गला सूख रहा था। वे एक क्षण को यह भूल गए कि घड़े से पानी लेने का हक दूसरों की तरह उन्हें प्राप्त नही है। वे झट घडे के पास पहुँचे और एक गिलास मे पानी डालकर पीने लगे।

उसी समय वहाँ से एक गुजराती प्रोफेसर गुजरे। उनकी निगाह अम्बेडकर पर पड गई। उन्हे ध्यान आया अम्बेडकर तो अछूत है, इन्होंने घडे से पानी ले लिया, इन्होंने घड़ा छू लिया। यह तो अनर्थ हो गया। अछूत चाहे कितना ही विद्वान क्यो न हो जाए, पर घड़ा तो नहीं छू सकता।

वे डॉ० अम्बेडकर की ओर झपटे और गुस्से से बोले, "यह आपने क्या किया? क्या आप भूल गए कि आप अछूत है ? आपने घडा अपवित्र कर दिया, अब इसका पानी कोई नहीं पी सकता।"

डॉ० उम्बेडकर के हाथ से गिलास गिर गया। वे थोड़ा सा पानी पी पाए थे, बाकी नीचे बिखर गया। हैरान थे—इतने बड़े कॉलेज के इतने विद्वान प्रोफेसर और इतने छोटे ख्यालात !

तभी शोर सुन कर अनेक अध्यापक उस ओर दौड़ पड़े। प्रिंसिपल महोदय भी आ गए। अनेक छात्र भी पीछे आ खड़े हुए। मजमा लग गया।

डॉ० अम्बेडकर ठगे से उन तमाम चेहरों को देख रहे थे जो उन्हें इस महापाप के लिए घूर रहे थे।

यकायक अम्बेडकर बोले, "प्रिंसिपल महोदय ! आप ही इन लोगो को

समझाइए मेरा ख्याल है ये सब बहुत पढे लिखे और विद्वान प्रोफेसर है मेरे छूने से घड़ा अपवित्र नहीं हुआ है। यह बिल्कुल वैसा ही स्वच्छ और पवित्र है जैसा मेरे छूने से पहले था, विश्वास रखिए मेरे हाथ बिल्कुल साफ है।''

''इतने भोले मत बनो प्रोफेसर अम्बेडकर'' प्रिंसिपल ने उन्हें झिडका। ''माना आप विलायत में पढे है, परन्तु आपके बाप-दादा तो इस देश की अछूत जाति के ही थे। क्या आप नही जानते ?'' डॉ० अम्बेडकर की ऊपर की सांस ऊपर और नीचे की सांस नीचे रह गई। उन्होने कुछ कहने के लिए ज्यो ही मुँह खोलना चाहा, प्रिंसिपल ने चपरासी को आदेश दिया ''यह घड़ा उठाओ और इसे फोड दो।''

चपरासी ने तुरन्त आज्ञा का पालन किया।

अगले ही क्षण वह घड़ा उठाकर जमीन पर पटक दिया गया और उसके पानी की छीटें अम्बेडकर के कपड़ों पर आ गई।

अम्बेडकर बहुत देर तक उस टूटे हुए घडे को खडे-खडे देखते रहे। दुख और उदासी की अनेक रेखाएं उनके चेहरे पर खिचीं और फिर विलीन हो गई।

फिर वे मुस्कराए। मानो कह रहे हो, ''यह सब कोई नई बात नहीं है अम्बेडकर, यह तो वह अपमान-गाथा है जो हर अछूत के जीवन का अभिन्न अग है। पढ-लिख जाने मात्र से समाज तुम्हे तुम्हारा अधिकार देने वाला नहीं। इसके लिए लम्बी लड़ाई लडनी होगी। लम्बी और लगातार लडाई, बिना धैर्य खोए, बिना क्रोध किए इस त्रासदी का मुकाबला करो और चाहे कुछ भी करना पडे, अछूतो के जीवन से इस महाकलक को धो डालो। मत भूलो कि तुम्हारी माँ को छोटी सी बीमारी के कारण इसलिए मरना पड़ा कि कोई अच्छा वैद्य अछूत के घर मे आने को तैयार नहीं हुआ। पिता जब बीमार हुए तो ऊँची जाति के अफसर ने इसीलिए छुट्टी देने से इनकार कर दिया कि तुम अछूत हो, और नौकरी से इस्तीफा देकर ही तुमने पिता का इलाज कराने का अधिकार प्राप्त किया। पग-पग पर सघर्ष करना है। बहुत कुछ खोना पडेगा, अपने आपको तिल-तिल कर मिटाना पड़ेगा, तब कहीं जाकर मंजिल हाथ आएगी।''

उनका सीधा हाथ पैन पर पहुँच गया था। अन्दर के स्वाभिमान ने कहा था, इस्तीफा दो और चलो यहाँ से। परन्तु डॉ० अम्बेडकर ने पैन पर से अपना हाथ हटा लिया। संकल्प के साथ हुकार भरी, ''नही, मै इस्तीफा नहीं दूगा। मैं मुकाबला करूँगा। देखूँगा—यह समाज मुझे कितना सताता है।''

इस घटना के बाद कॉलेज मे एक ऐसा सन्नाटा छा गया जैसे कोई बहुत बडी दुर्घटना हो गई हो। डॉ० अम्बेडकर के साथ धुल-मिलकर बातें करने वाले छात्र अपने आप मे सिमटे हुए से कटे-कटे रहने लगे। अध्यापक भी डॉ० अम्बेडकर से बात नहीं करते थे। वे सब खाली समय मे अलग समूह में बैठकर ठहाके लगाते

और अम्बेडकर अकेले बैठ कर कुछ पढ़ते रहते, कुछ सोचते रहते।

कुछ दिन बाद थोड़ा बदलाव आया। आपसी बातचीत का सिलसिला बढा, छात्र भी करीब आने लगे। अम्बेडकर ने फैसला कर लिया था कि किसी चीज को हाथ नहीं लगाएंगे।

इस प्रकार उन्होंने डेढ़ वर्ष इस कॉलेज मे गुजारे। इस बीच 31 जनवरी 1920 को उन्होने 'मूकनायक' नामक एक मराठी अखबार का प्रकाशन शुरू किया। इसका उद्देश्य पिछड़ो की लड़ाई लड़ना था। इसमें अम्बेडकर ऐसे लेख लिखा करते थे जिनमें जातिवाद और छुआछूत की कठोर आलोचना की जाती थी।

मार्च 1920 को कॉलेज की नौकरी से इस्तीफा दे दिया और नवल भटेना तथा महाराज गायकवाड़ के सहयोग से अपने शोध पर अध्ययन करने के लिए लदन चले गए।

सितम्बर 1920 में उन्होंने लंदन स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स में दाखिला ले लिया और अध्ययन कार्य में जुट गए। वे 18 घटे अध्ययन और लेखन के काम में लगे रहते थे।

डॉ० अम्बेडकर ने लंदन विश्वविद्यालय से एम. एस. सी (अर्थशास्त्र) की डिग्री प्राप्त की) और रुपये की समस्या पर थीसिस लिखी। साथ ही उन्होंने कानून की पढ़ाई पूरी की।

वे तीन वर्ष तक लंदन में रहे। इस पूरी अवधि में उन्हें महाराजा गायकवाड ने आर्थिक मदद दी। उन्हें अपनी पत्नी और बेटे यशवन्त की बहुत याद आती थी। अपने प्रिय मित्र कैलुस्कर तथा नवल भटेना की भी उन्हे बहुत याद आती थी। वे इन सब लोगों को पत्र लिखकर अपनी सफलता के समाचार देते रहते थे।

फिर अप्रैल 1923 को महाराज गायकवाड़ और अपने मित्र नवल भटेना को उन्होने लिखा कि अब उनका अध्ययन का काम पूरा हो चुका है। अब वे भारत वापस आना चाहते है। भारत में रहकर वे वकालत करेंगे और अछूतों तथा दलितो के हितो के लिए सघर्ष करेंगे।

उनके पत्र से उनके मित्रों तथा परिवार वालों में खुशी की लहर दौड़ गई।

अप्रैल के महीने में जब अम्बेडकर जहाज से भारत पहुँचे तो मुंबई के बन्दरगाह पर पहुँचकर उनके मित्रों ने उनका भव्य स्वागत किया।

वकालत शुरू : पहले मुकदमे में ही अछूतों को न्याय दिलाया

भारत पहुँचने के बाद अम्बेडकर ने एक वर्ष तक सारी स्थिति को ठीक से समझा, वकालत के लिए अनुमति प्राप्त की तथा दलित उद्धार के लिए रचनात्मक आंदोलन की रूप रेखा तैयार की।

जून 1924 में उन्होंने वकालत का काम शुरू कर दिया।

अब तक भीमराव अम्बेडकर अछूतों के हितो के लिए सघर्ष करने वाले नेता के रूप में थोड़े-थोडे चर्चित होने लगे थे।

उनके पास पहला मुकदमा तीन अछूत लेकर आये। उन्होंने एक ऐसी किताब लिखी थी जिसमे अछूत प्रथा के लिए ब्राह्मणों को दोषी ठहराया गया था। पुस्तक प्रकाशित होते ही ब्राह्मण भड़क उठे। उन्होंने इन तीनों पर मानहानि का दावा ठोक दिया।

सेशन जज की अदालत में जव इस मुकदमे पर अम्बेडकर ने बचाव पक्ष के वकील के रूप में बहस की तो उसे सुनने के लिए अदालत में लोगों की भीड उमड़ पड़ी।

सामाजिक न्याय दिलाने के लिए समर्पित डॉ० अम्बेडकर रात-रात भर कानून की किताबें पढ़ते और जब बोलते तो विपक्षी वकीलों की बोलती बंद हो जाती। जज इनके तर्कों से हैरान रह जाता।

उन्होंने साबित कर दिया कि किताब में दलितों के साथ ब्राह्मणों के अत्याचारों की जो दर्द भरी कहानी लिखी गई है वह समाज का जीता जागता सच है। इसे पुस्तक के रूप मे देश व समाज के सामने लाकर तीनों अछूत लेखकों ने कोई अपराध नहीं किया है। अपराधी तो वे ब्राह्मण है जिन्होने छुआछूत और जातिवाद का विष फैला कर समाज को गुमराह किया है।

तीनों अछूत मुकदमा जीत गए। इस मुकदमे ने अम्बेडकर को दलितो के मसीहा के रूप में स्थापित कर दिया। दलित समाज ने उन्हें हाथों-हाथ उठा लिया।

विशाल महार सम्मेलन

अब डॉ० अम्बेडकर ने फैसला कर लिया कि वे सामाजिक न्याय के लिए खुला संघर्ष करेंगे। वैचारिक आंदोलन की भूमिका वे बहुत पहले बना चुके थे। मुकदमा जीतने के बाद पिछड़ो की भीड़ अपने चारों ओर उमडते देख डॉ० अम्बेडकर समझ गए कि जिस मौके का उन्हें इनजार था, वह यही है।

19-20 मार्च 1926 को उन्होंने बम्बई के निकट जिला कुलावा मे एक विशाल महार सम्मेलन का आयोजन किया।

उनके इशारे पर महार तथा अन्य पिछड़ी जातियों के सैकड़ों युवक व्यवस्था में जुट गए। पूरे महाराष्ट्र व गुजरात क्षेत्र मे पोस्टर लगाए गए, प्रचार किया गया।

सम्मेलन में एक लाख से अधिक लोग इकट्ठे हुए। "डॉ० अम्बेडकर जिंदाबाद" के नारों से विशाल पंडाल गूज रहा था। देश के इतिहास में पहली बार इतना बडा सम्मेलन केवल दलितों के चंदे से हुआ था।

अम्बेडकर जब मंच पर आए तो तालियो की गडगडाहट और नारो से पडाल गूज उठा। अम्बेडकर ने कहा, "अब समय आ गया है। कि जिन्हें समाज अछूत कहता है, जिनका बात-बात पर अपमान करता है, वे सब एक हो जाएं। तुम किसी से डरते क्यो हो, क्यों दबते हो ? तुम तो देश और समाज के आधार हो, तुम्हारी मेहनत से उगाए गए अन्न से सबका पेट भरता है।

मै कहता हूँ दबना छोडो। अपने स्वाभिमान को इकट्ठा करो और उठकर खडे हो जाओ, एक जुट हो जाओ। तुम सबसे बडी ताकत हो। परन्तु हॉ, एक बात याद रखो—कोई भी गलत काम न करो। मेहनत की खाओ। मुर्दा पशुओं का मास खाना बद कर दो। काम कोई बुरा नहीं होता, परन्तु बुरी आदतो को अपने अन्दर नही आने देना चाहिए। दृढ़ इरादा कर लो, हमें अपने आप को बदलना है। और अपने प्रति समाज का रवैया बदलना है। जो बात मुँह से निकालो वह ठोस होनी चाहिए। उसमे वजन होना चाहिए। जब अपनी बात कहो तो आवाज में दम होना चाहिए। दबी जुबान मे बोलना त्यागो। तुम्हारे साथ यदि गलत होता है, अन्याय होता है तो ऊँची आवाज में उसका विरोध करो।"

अम्बेडकर के विचार युवा वर्ग में गहराई से उतर गए। बूढ़े और कमजोर लोग तो थोड़ा डरे। उन्हे लगा कि यह अम्बेडकर हमें मरवाएगा। बडी जाति वालो से टकराएंगे, तो वे हमें और हमारे बच्चो को चैन से जीने नहीं देगे। परन्तु युवा वर्ग मे उत्साह की लहर दौड गई। युवाओ ने घोषणा की, "आज से अम्बेडकर का वाक्य हमारे लिए ब्रह्म वाक्य है। हम अपना सब कुछ न्यौछावर कर देंगे। हम अम्बेडकर के पीछे एक जुट होकर खड़े होंगे। और सामाजिक न्याय लेकर रहेगे।"

इसी सम्मेलन मे डॉ० अम्बेडकर ने सरकार से मॉग की कि वह अछूतों और पिछड़ों को सेना मे भर्ती करे। उन्होने ब्राह्मणो से निवेदन किया कि वे अछूतों को इसान समझे और छुआछूत बंद करें।

अगले दिन जनसमूह के साथ डॉ० अम्बेडकर चौदार तालाब पहुँचे। उस तालाब के पानी को छूने का अछूतो को अधिकार न था। अम्बेडकर ने नारा लगाया, "तालाब पर हमारा भी उतना ही हक है जितना दूसरो का" और उन्होने दोनो हाथो की अजलि बनाकर तालाब से पानी लेकर पी लिया। उन्होंने कहा, "अधिकार भीख में नहीं मिल सकते, उन्हें आगे बढ़कर हासिल किया जाता है।"

महारो का मनोबल बढ़ गया। तालाब से पानी पीने के बाद जुलूस की शक्ल मे अम्बेडकर आगे बढ़े और वीरेश्वर मन्दिर मे प्रवेश किया। उनके साथ सैकडों दलितों ने मन्दिर में प्रवेश किया और पूजा की।

इस सबसे ऊँची जाति के लोग चिढ़ गए। उन्हें लगा कि अछूत सीमा पार कर रहे हैं। इन्हें सबक सिखाया जाना चाहिए।

ज्यो ही जुलूस पंडाल मे पहुँचा भालों और लाठियो से उन्होंने दलितो पर हमला कर दिया। ब्राह्मणो के इशारे पर किए गए इस हमले मे बहुत लोग घायल हुए। वे निहत्थे थे। कुछ लोग बुरी तरह सहम गए।

परन्तु अम्बेडकर और उनके उत्साही साथी अड गए। अम्बेडकर ने घोषणा की, "कल हम चौदार तालाब पर कब्जा करेंगे, देखे पानी पीने के अधिकार से हमे कौन रोकता है ?"

अगले दिन ऊँची जाति के लोगों ने पूरी ताकत लगा दी। पुलिस का भी सहारा लिया, परन्तु दलितो मे इतना जोश था कि किसी के रोके न रुके। आगे बढ़ते ही गए और उन्होंने तालाब पर कब्जा कर लिया।

जॉन साइमन से मुलाकात

उन्हीं दिनो साइमन कमीशन हिन्दुस्तान आया हुआ था। अम्बेडकर ने एक स्मरण पत्र तैयार किया और अपने साथ दलितों का एक जत्था लेकर कमीशन के नेता जॉन साइमन से मिले। उन्होंने दलितो की दर्द भरी कहानी जॉन साइमन को सुनाई तो वे हैरान रह गए।

जॉन साइमन ने अम्बेडकर से वादा किया कि वे दलितों को पूरा न्याय दिलाएगे। छुआछूत खत्म की जाएगी, अछूतो व दलितों के प्रतिनिधि को मंत्रिमडल मे शामिल किया जाएगा।

गोलमेज सभा, लंदन में जॉर्ज पंचम से भेंट

अम्बेडकर ने अपने निजी प्रयासो से दोनों गोल मेज सम्मेलनों मे भाग लिया। पहले सम्मेलन में उन्होंने दलितो की ओर ब्रिटेन के सम्राट का ध्यान खींचा और दूसरे सम्मेलन में उन्होने दलितो की ओर से माग-पत्र पेश किया।

माग-पत्र मे उन्होने दलितो के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्र तथा जनसख्या के अनुसार प्रातो की विधान सभाओं तथा केन्द्र सरकार में प्रतिनिधित्व की माग की थी।

गांधी जी से समझौता

इन मागो से गांधी जी घबरा गए। इन मांगों का अर्थ था दलितों के लिए देश का बॅटवारा।

महात्मा गांधी इसके विरोध मे आमरण अनशन पर बैठ गए। पूरे देश मे तहलका मच गया। काग्रेसी नेता जवाहर लाल नेहरू, मदन मोहन मालवीय जी आदि सबने अम्बेडकर को मनाने की बहुत कोशिश की। वे चाहते थे कि अम्बेडकर गाधी जी से मिले और उनका अनशन तुड़वाएँ। गाधी जी के साथ समझौता करे।

परन्तु अम्बेडकर इसके लिए तैयार न थे। वे जानते थे कि गाधी जी की बात उन्हे माननी पड़ जाएगी और फिर दलितो को उनके अधिकार अलग से नही मिल पाएंगे।

जब गांधी जी की हालत बहुत खराब हो गई तो उनकी पत्नी कस्तूरबा गाधी अम्बेडकर के पास गई। उन्होंने अम्बेडकर को समझाया कि वे गांधी जी से मिलकर बात करे और उनकी जान बचाएं।

अब अम्बेडकर समझ गए कि गांधी जी से मिलना ही पडेगा। उनके दिल मे गाधी जी के प्रति बहुत प्यार था। परन्तु दलितो को न्याय दिलाने के लिए वे कृत संकल्प थे।

उन्होंने 10 सूत्री मांग-पत्र तैयार किया और गाधी जी के सामने रख दिया। इस मांग-पत्र मे वे सभी शर्ते शामिल की गई थीं जिन्हे मान लेने से दलित समाज देश की मुख्य धारा में शामिल हो सकता था और उसकी अगली पीढियाँ सिर उठाकर चल सकती थीं।

गाधी जी ने ये मांगे मान लीं और दोनों नेताओं के बीच ऐतिहासिक समझौता हो गया। अम्बेडकर दलितों के उद्धार में जुटे थे और देश मे स्वाधीनता का आंदोलन जोरों पर था। अम्बेडकर को बहुत काम करना पड़ता था। वे घर-परिवार के लिए तनिक भी समय नहीं निकाल पाते थे।

मई 1935 को उनकी पत्नी रमाबाई की मृत्यु हो गई। वे बीमार थीं। समाज के काम में जुटे होने के कारण वे पत्नी के इलाज के लिए अधिक दौड़-भाग नहीं कर सके।

पत्नी की मृत्यु ने उन्हें झकझोर कर रख दिया। वे अपने आपको उनकी मौत के लिए जिम्मेदार मान कर बहुत दुखी रहने लगे।

भारत की आजादी और संविधान

पत्नी की मृत्यु के बाद बहुत दिनो तक डॉ० अम्बेडकर ने कुछ नही किया। परन्तु पूरा दलित समाज उनके पीछे था और स्वाधीनता का आदोलन जोरो पर था। उनके कधों पर दो-दो जिम्मेदारियाँ थीं, आजादी की लड़ाई मे महात्मा गांधी जैसे महान नेता का साथ देना तथा दलितों व पिछड़ों को उनके अभिशाप से मुक्त कराना, उन्हे सामाजिक न्याय दिलाना।

1935 से 1947 तक का 12 वर्ष का समय अम्बेडकर के लिए विविध संघर्षो और चुनौतियो से भरा था।

इस बीच कभी वे दलितों के सगठनो का नेतृत्व करते, उन्हे राष्ट्र की मुख्य धारा में लाने के लिए भाषण देते। लेख-लिखते, किताब लिखते। कभी देश-विदेश

में आयोजित सभाओं में अपने विचार रखते। गांधी जी के साथ मिलकर आजादी की योजना पर काम करते और उन्हे बार-बार याद दिलाते कि दलितों के साथ न्याय अवश्य होना चाहिए।

इधर उच्च समाज की, ब्राह्मण धर्म की चोटें उन्हे लगातार सहन करनी पड़ रही थीं। रात-दिन व्यस्त रहना का स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पडने लगा था।

फिर भी वे थके नहीं। उन्होने दलितों को सगठित करने के लिए बडे काम किए। उनके पीछे लाखों शक्तिशाली लोगो की टोली बन गई। एक के बाद एक काम होते गए। समस्या आती गई, समाधान होते रहे।

15 अगस्त 1947 को देश आजाद हो गया। इसके साथ ही देश दो भागो मे बँट गया—हिन्दुस्तान और पाकिस्तान।

देश में साप्रदायिक तनाव पैदा हो गया। लाखों की संख्या मे हिन्दू और मुसलमानो की जानें गई। करोडों बेघरबार हुए।

भारत मे सविधान निर्माण के लिए सभा का गठन हुआ। डॉ. भीमराव अम्बेडकर को संविधान निर्माण का कार्य सौंपा गया।

बहुत मेहनत से रात-दिन लगकर उन्होंने संविधान समिति के सहयोग से भारत के लिए श्रेष्ठ सविधान का निर्माण कर लिया।

26 जनवरी 1950 को उन्होने यह संविधान भारत सरकार को सौंप दिया। इसी दिन सविधान लागू हुआ।

शारदा कबीर से मुलाकात : दूसरा विवाह

दलितों के लिए न्याय दिलाने के लिए संघर्ष करते-करते तथा भारत के संविधान निर्माण मे रात-दिन जुटे रहने के कारण अम्बेडकर थक गए और बुरी तरह बीमार पड गए। उन्हे मधुमेह के रोग ने जकड लिया।

पुत्र यशवन्त राव ने उन्हें इलाज के लिए बम्बई के मावलकर अस्पताल में दाखिल करा दिया।

वहाँ उनकी मुलाकात लेडी डॉक्टर शारदा कबीर से हुई। शारदा जी अम्बेडकर के व्यक्तित्त्व से इतनी प्रभावित हुई कि उन्होंने उन से शादी का प्रस्ताव रख दिया। शारदा जी जाति से ब्राह्मण थीं। अम्बेडकर शारदा जी की सेवा से बहुत प्रभावित हुए थे। उन्होंने हाँ कर दी और दोनों ने विवाह कर लिया। विवाह के बाद शारदा जी सविता अम्बेडकर बन गई।

हिन्दू कोड बिल : मंत्रिमण्डल से इस्तीफा

सविता जी की सेवा और स्नेह-वर्षा से डॉ० अम्बेडकर शीघ्र ही ठीक हो गए। वे उस समय नेहरू जी की सरकार मे कानून मंत्री थे।

स्वस्थ होते ही वे 'हिन्दू कोड बिल' नामक प्रस्ताव पर काम करने मे जुट गए। प्रस्ताव तैयार होते ही उन्होंने उसे संसद मे पेश कर दिया।

इस बिल की बडी आलोचना हुई। राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, श्याम प्रसाद मुखर्जी, सरदार पटेल आदि सभी वरिष्ठ नेता इस बिल का विरोध करने लगे। नेहरू जी इसके समर्थन मे थे, परन्तु अकेले वे कुछ न कर सके।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने यहाँ तक धमकी दे दी कि "यदि नेहरू सरकार ने यह बिल पास किया तो मै अपने पद से इस्तीफा दे दूँगा।"

डॉ० अम्बेडकर ने इसे अपना सरासर अपमान माना। बड़ी सोच समझ कर एक दिन वे उठे और उन्होने प्रधान मंत्री को अपना इस्तीफा सौंप दिया।

बौद्ध धर्म की दीक्षा ली

अब अम्बेडकर का मन राजनीति से भर चुका था। वे इतने उखड़ गए कि सविता जी का स्नेह भी उन्हें न बांध सका।

सविधान के अनुसार दलित व पिछड़े वर्गो को आरक्षण मिल गया था। संसद तथा विधान सभाओ मे उन्हें प्रतिनिधित्व मिल गया था। निशुल्क शिक्षा और नियुक्तियों में आरक्षण की बात मान ली गई थी। फिर भी व्यवहार मे पिछड़ो का अपमान करने की परंपरा जारी थी। ब्राह्मण आधारित हिन्दू धर्म के ठेकेदार व्यवहार मे पिछड़ो को बराबर का दर्जा देने को तैयार न थे।

अम्बेडकर ने एक दिन एक विशाल बौद्ध सम्मेलन बुलाया और उसमें उन्होंने हिन्दू धर्म छोडकर बौद्ध धर्म की विधिवत दीक्षा ले ली। उनके साथ हजारो दलितों ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। पूरे देश में दलितों पर उसका भारी प्रभाव पड़ा। बडी संध्या मे युवकों ने हिन्दू धर्म छोड़ दिया और वे बौद्ध बन गए।

दीक्षा के समय उन्होने ब्रह्मा, विष्णु और महेश को ईश्वर न मानने की घोषणा की। राम, कृष्ण आदि अवतारों को ईश्वर न मानने का संकल्प लिया। ब्रह्मणों से कोई रस्म न करवाने और देवी-देवताओं को न मानने की प्रतिज्ञा की।

संसार से वैराग्य : महानिर्वाण की कामना

बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद वे बहुत गंभीर रहने लगे। हिन्दू धर्म की विसगतियों और आडंबरों से उनका जी ऊब गया था। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे हिन्दू धर्म में पैदा हुए यह उनके हाथ में नहीं था, परन्तु अब वे हिन्दू धर्म में मरेंगे नहीं। यह उनके हाथ मे है और वे ऐसा करके दिखाएगे। अपनी धारणा के आधार पर उन्होने हिन्दू धर्म का त्याग कर दिया और बौद्ध बन गए।

अब वे बम्बई स्थिति अपने घर मे ही रहते थे। उनकी पत्नी सविता अम्बेडकर

तथा पुत्र यशवन्त उनका बहुत ख्याल रखते थे।

परन्तु उनका रोग बढता ही गया। अस्पताल जाने से उन्होने इनकार कर दिया। वे कहा करते थे, "जब एक बहुत अच्छी डॉक्टर मेरी जीवन साथी बनकर मेरी सेवा कर रही है तो मैं अस्पताल मे पड़कर क्या करूँगा ?"

अब वे बिस्तर के बदी हो गए। शरीर कमजोर होता गया और स्वभाव मे चिडचिडाहट घर करती गई।

एक दिन उनका मन बम्बई से उछट गया। पत्नी सविता अम्बेडकर तथा पुत्र यशवन्त राव के साथ वे अपने दिल्ली निवास 26, अली पुर रोड आ गए।

सविता जी रात दिन उनकी सेवा मे लगी रहती थीं। बडे-बडे नेता, उनके स्वास्थ्य के बारे मे जानकारी लेने के लिए आते-जाते रहते थे।

6 दिसम्बर 1956 को प्रात काल महामानव अम्बेडकर ने अचानक अपना शरीर त्याग दिया। दलितों को सामाजिक न्याय दिलाने वाले, भारतीय समाज से अछूत प्रथा को समाप्त कराने वाले महाविद्वान अम्बेडकर की शव यात्रा में इतने लोग शामिल हुए, लगता था जैसे पूरी दिल्ली ही उमड आई हो।

के. कामराज

(15 जुलाई, 1903 से 2 अक्टूबर, 1975)

तमिलनाडु में नारियल के व्यापारी कुमारस्वामी और उनकी पत्नी शिवकामी संतान न होने से बहुत दुखी थे। कुमारस्वामी की माता पार्वती अम्माल अपनी बहू शिवकामी को लेकर देवी कामाक्षी के मन्दिर जाकर पूजा करवाती थी और देवी से अपनी बहू के पुत्रवती होने का वरदान माँगती थी।

कई वर्ष बीत जाने पर भी उनके कोई संतान नहीं हुई। कुमारस्वामी भी नियमित अपनी पत्नी के साथ कामाक्षी देवी की आराधना में जुट गए। कामाक्षी देवी उनकी इष्ट देवी थीं। उन्होंने घर पर ही देवी की प्रतिमा स्थापित कर ली और सुबह-शाम विधिपूर्वक देवी का ध्यान करके उनसे पुत्र-प्राप्ति का वर माँगने लगे।

अनेक वर्ष बाद देवी प्रसन्न हुई और शिवकामी माँ बन गई। 15 जुलाई, 1903 को उन्होंने एक पुत्र को जन्म दिया। बच्चे का नाम रखा गया कामाक्षी। शिवकामी प्यार से अपने बेटे को 'राजा' कहा करती थीं। कुछ दिनों में 'कामाक्षी' नाम बदल कर 'कामराज' हो गया।

कामराज जब दो वर्ष के हुए तो उनकी माँ ने एक बेटी को जन्म दिया। उसका नाम रखा गया नागम्माल।

कामराज बचपन में बहुत शर्मीले थे। वे बहुत संकोची और मृदुभाषी थे। जब वे दूसरे बच्चों के साथ खेलने के लिए बाहर निकलते थे तो प्राय. देखते रहते थे। दूसरे बच्चो के साथ धमा-चौकडी और शरारतों में शामिल नहीं होते थे। छोटे से बच्चे को इतना गंभीर देखकर सबको बडा अजीब लगा करता था। बचपन की गंभीरता आगे चलकर उनके व्यक्तित्व का हिस्सा बन गई।

पाँच वर्ष की आयु में कामराज स्कूल गए। उनके अध्यापक का नाम वेलायुद्म था। वे बड़े कठोर थे। बच्चों की जमकर पिटाई करना वे अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। उनके पास एक बेत रखा रहता था। छोटी सी गलती पर ही

वे बेत उठा लेते और पिटाई कर डालते थे कामराज को अनेक बार उस शिक्षक ने बेत से पीटा अब कामराज का मन स्कूल जाने को नही होता था। रोज-रोज की पिटाई से वे दुखी हो गए थे। एक दिन उन्होने रो-रोकर अपनी कहानी अपने माता-पिता को सुनाई। बच्चे की दर्दभरी कहानी सुनकर माँ शिवकामी रोने लगीं। पिता कुमारस्वामी भडक उठे। कोमल बच्चे के शरीर पर पडे बेतो के निशान देखकर वे सिहर उठे थे।

वे तुरन्त स्कूल गए और कामराज का नाम कटवा दिया। इसके बाद उन्होंने कामराज को 'नयनार विद्यालय' नामक प्राथमिक पाठशाला मे भेज दिया। वहाँ कामराज ने तमिल भाषा के पढ़ने-लिखने का अभ्यास किया।

इसके बाद कामराज को पी डी अरीसी नामक स्कूल में दाखिल कराया गया। यहाँ बच्चों को निःशुल्क शिक्षा मिलती थी। शिक्षा के बदले हर घर से प्रतिदिन एक मुट्ठी अनाज स्कूल को दान किया जाता था।

पिता की मृत्यु का आघात

कामराज के पिता कुमारस्वामी व्यापार के काम मे व्यस्त थे। वे अपने बेटे और बेटी को बहुत प्यार करते थे। उनका स्वप्न था कि उनके दोनों बच्चों को किसी तरह की कोई कमी न रहे। कामराज को वे पढ़ा-लिखा कर बड़ा आदमी बनाना चाहते थे। बेटी का विवाह बहुत धूम-धाम से किसी अच्छे घराने मे करने के ख्वाब देखा करते थे। कुमारस्वामी नये व्यापार को जमाने में लगे थे कि उनके पिता का देहान्त हो गया। पिता की मौत का सदमा उनके दिल पर ऐसा बैठा कि कुछ माह बाद ही उन्हे छाती में बेचैनी हुई और उन्होंने दम तोड़ दिया।

पिता की मृत्यु के समय कामराज दसवीं कक्षा में पढ़ते थे। पिता की मृत्यु ने उन्हें तोड दिया। बुरी तरह बिलखते हुए कामराज अपनी रोती हुई माँ से लिपट गए। माँ अपने पति को खो कर तो दुखी थी ही, इस बात से वह और भी अधिक संतप्त थी कि उसके बच्चे अनाथ हो गए।

तब कामराज की दादी ने बड़ी मुश्किल से सांत्वना देकर उन्हे शांत किया। पिता की मृत्यु से घर मे जो वातावरण बना, उससे पहले तो कामराज को बहुत पीडा हुई। वे बार-बार रो पड़ते थे। सभाले नहीं संभल पा रहे थे, परन्तु धीरे-धीरे अधीरता का स्थान गभीरता ने ले लिया। शायद ईश्वरीय शक्ति ने उन्हें अहसास दिलाया कि अब जीवन इतना असान नहीं है। अब जो चुनौतियाँ वक्त लेकर आया है, उनसे निबटने के लिए धैर्य धारण करना होगा। संघर्ष और मेहनत ही एक मात्र रास्ता है। इस अहसास से कामराज गभीर हो गए।

पिता की चिता के समक्ष उन्होने प्रतिज्ञा की—"मैं आपकी इच्छाओं को

अवश्य पूरा करुगा। मैं जानता हूँ आप मुझे बड़ा आदमी बनाने का स्वप्न देखा करते थे। मैं बड़ा आदमी बन पाऊँगा या नहीं, यह तो मैं नहीं कह सकता, पर हॉ इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मै मेहनत और लगन से अपनी हर जिम्मेदारी पूरी करुँगा।"

कामराज ने यह प्रतिज्ञा अपने पिता से की थी, अत· लोगो को इस बारे मे कुछ भी नही मालूम था। परन्तु पिता की मृत्यु के बाद जिस लगन और निष्ठा से कामराज ने काम सभाला उससे सब जल्दी ही समझ गए कि पिता की मृत्यु के बाद कामराज मे भारी बदलाव आ गया है। पिता की मृत्यु ने जहाँ कामराज को गंभीर बना दिया, वहीं पढाई के प्रति उनके उत्साह में कमी आ गई। कामराज के मन मे एक ही बात घूमती रहती थी, वे अपनी माँ और दादी की ऑखों के ऑसू कैसे पोंछें, अपनी छोटी बहन के मन से पिता के चले जाने का दुख केसे निकालें। घर में जो मायूसी छा गई है उससे परिवार के सदस्यों को कैसे उबारे।

वे स्कूल जाते तो खोए-खोए रहते। साथी पूछते—"कामराज तुम उदास क्यो रहते हो ? क्या तुम्हें पिता के न रहने का दुख बहुत सता रहा है या कोई और बात है ?"

कामराज केवल मुस्करा देते थे। अपने गभीर और चुप रहने का राज वे किसी को बताते नहीं थे। अध्यापक कुछ दिन तो उन्हें सहयोग देते रहे। वे जानते थे कि कामराज के पिता की मृत्यु हो गई है, अत· उनका गुमसुम रहना स्वाभाविक है। परन्तु जब अधिक समय बीत गया तो वे समझ गए कि कामराज का अब पढ़ने मे मन नहीं लग रहा है। कामराज जैसे लड़के को तो और अधिक मेहनत से पढ़ना चाहिए। जिस बच्चे के कंधे पर जिम्मेदारी आ जाती है वह अपना बचपन छोड़कर जल्दी बड़ा हो जाता है और अच्छी तरह पढ़-लिख कर पिता के दायित्व को अपने कधों पर लेने के लिए अपने आपको तैयार करने लगता है।

उन्होंने कामराज के घर खबर भेजी। कामराज से जब मॉ ने पूछा—"बेटा तुम मन लगाकर क्यों नहीं पढ़ते हो ? तुम्हारे अध्यापक तुम्हारी शिकायत करते है", तो कामराज ने कहा—"मॉं, पढाई मे मेरा मन नही लगता। मैं बहुत चाहता हूँ कि पढ़ाई कर लूँ। पहले की तरह कक्षा में दूसरों से आगे निकल जाऊँ परन्तु मैं वैसा कर नहीं पाता। मेरा मन बुझ गया है। मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता, मैं क्या करूँ ?"

पुत्र की बात सुनकर माँ को लगा कि कामराज अब पढ़ना नहीं चाहता। उन्होंने उसे अपने मामा के साथ व्यापार मे हाथ बॅटाने की सलाह दी। इस काम के लिये कामराज तैयार हो गए।

उन्होने स्कूल की पढाई छोडने और मामा के साथ व्यापार का काम देखने का

मना बना लिया। कामराज के मामा की विरदुपट्टी मे कपड़े की दुकान थी उनका नाम करुपैया नाडार था। वे अपने और अपनी बहन के परिवार में अब एकमात्र पुरुष रह गए थे, जिनके भरोसे दोनो परिवारों का गुजारा होना था और सामाजिक सरक्षण मिलना था।

कामराज मामा के साथ व्यापार मे हाथ बँटाने लगे। वे नियमित दुकान पर बैठते और ग्राहको के साथ प्यार से व्यवहार करते। भानजे को इस प्रकार व्यापार में रुचि लेते देख मामा को बहुत अच्छा लगा। उनके मन मे आशा की एक किरण जागी। बहन और उसके बच्चों के भविष्य के प्रति वे थोड़े आश्वस्त लगने लगे।

सबसे बाद में प्रसाद लिया

कामराज बहुत सतोषी और धैर्यवान थे। वे इस बात में विश्वास रखते थे कि पहले दूसरों की आवश्यकता की पूर्ति हो जाए, इसके बाद वे अपना हिस्सा ले। उपनिषद्कालीन मानवीय संस्कृति के संस्कार उनके मन मे सहज रूप से मौजूद थे।

विनायक चतुर्दशी के अवसर पर उनके विद्यालय मे पूजा-समारोह हुआ। पूजा के बाद प्रसाद वितरण की परपरा है। हर घर से दो पैसे का चंदा इकट्ठा करके समारोह का आयोजन किया गया था। पूजा के बाद तले हुए चावलो को प्रसाद रूप में बाँटा गया। प्रसाद वितरण शुरू होते ही भीड़ उमड पड़ी। कामराज शांति से एक ओर खड़े रहे। जब सब लोग प्रसाद लेकर चले गए तब वे आगे आए। तब तक प्रसाद खत्म हो चुका था। उन्हें बहुत थोड़े से चावल मिल पाए।

प्रसाद लेकर जब वे घर पहुँचे तो उनकी दादी ने पूछा—"बेटा तुम इतना कम प्रसाद लेकर क्यों आए हो ? सब बच्चे तो दोने भर-भर कर लाए हैं, तुम्हारा दोना खाली क्यों हैं ?"

कामराज शांति से बोले—"मैं सबसे बाद में प्रसाद लाया हूँ। दूसरे लोग पहले ले आए, इसलिए उनके दोने भरे हुए हैं, मेरी बारी आई तो प्रसाद खत्म हो चुका था।"

"अच्छा तो यह बात है।" दादी जी मुस्कराई।

"तू बिल्कुल अपने पिता पर गया है। वह भी ऐसे ही किया करता था। पहले दूसरो को ले लेने दो। हमें क्या जल्दी है, बच जाएगा तो ले लेंगे, नही तो बिना लिए ही चले आएंगे।"

कामराज समझ गए, दादी जी नाराज हो गई हैं। दादी जी के नाराज होने का ढग भी निराला था। वे जब नाराज होतीं तो बड़े प्यार से उलाहने दिया करती थीं, कोई तीसरा सुनता तो यही समझता कि वे गुणों का बखान कर रही हैं, परन्तु कामराज दादी जी की आदत को जानते थे। इसलिए जब वे उलाहने देतीं तो चुप

हो जाया करते थे

कामराज के व्यवहार की यह शालीनता समय के साथ विकसित होती गई। जब वे बड़े हुए और राजनीति के माध्यम से देश को नेतृत्व देने के लिए खडे हुए तो वे अलग ही दिखाई पडा करते थे। उनके मानवीय गुण उनकी अलग पहचान कराते थे। सन्तो जैसा स्वभाव, उच्च कोटि की मानवता, दया, करुणा, ममता, सहानुभूति और सहयोग की भावना से भरा उनका व्यक्तित्व उन्हे दिव्य पुरुष की श्रेणी में खडा करता था। वे एक ऐसे राष्ट्र-नायक के रूप मे देश के सामने आए कि उन पर हर मामले मे विश्वास किया जा सकता था, उन्हे कोई भी दायित्व दिया जा सकता था।

राजनीति में प्रवेश

अपने छात्र जीवन मे ही कामराज के संवेदनशील मन मे देश-भक्ति के अकुर उग आए थे। देश पर, अग्रेजी राज्य की काली छाया को तो उन्होने होश संभालते ही पहचान लिया था। चारो ओर राष्ट्रीय गतिविधियो ने उन्हे प्रेरित किया ओर उनके मन में देशभक्ति का जज्बा पैदा हो गया।

वे महात्मा गाधी के बारे में सुनकर उनसे बहुत प्रभावित हो गए थे। 1921 मे कामराज केवल 18 वर्ष के थे। सिर से पिता का साया उठ जाने के कारण मन दुखी रहा करता था और जीवन निस्सार लगने लगा था। पढाई छूट गई थी और वे मामा के साथ काम में हाथ बटाने लगे थे।

पढने की वडी इच्छी थी। यदि पिता की मृत्यु न हुई होती तो शायद उनका मन न उखड़ता। पिता की मृत्यु ने उन्हें कम आयु मे ही सोचने पर विवश कर दिया। मन संतापों से भर गया। इसीलिए पढ़ाई जारी नहीं रख पाए।

स्वदेशी आंदोलन उन दिनो जोरो पर था। उत्तर भारत, पजाब, बंगाल तथा महाराष्ट्र मे राष्ट्रीय चेतना जोरों पर थी। छात्रो ने कॉलेज छोड़ दिए थे। अनेक नवयुवक बदूकों के सहारे 'खून का बदला खून' के नारे के साथ आतताई अग्रेज अफसरों को सबक सिखाने का फैसला लेकर क्रांतिकारी दलों में शामिल हो गए थे।

ऐसे मे कामराज का सवेदनशील मन इन गतिविधियो की अनदेखी कैसे कर देता। उनके मन में देशभक्ति की उमग जाग उठी। उन्होने काग्रेस की बैठकों और कार्यक्रमो मे हिस्सा लेना आरभ कर दिया। उन्होंने फैसला कर लिया कि अब वे मामा के साथ व्यापार में हाथ बटाऍगे और साथ ही देश के लिए काम करना शुरू कर देगे।

1919 मे हुई जलियॉवाला बाग की घटना उनके जहन में बैठी हुई थी। इस घटना ने उनके मन में अंग्रेजो के प्रति घृणा पैदा कर दी थी। अंग्रेजों को भारत पर शासन करने का हक नहीं है, यह बात उनके मन मे पक्की हो गई थी।

वे कांग्रेस के स्वयसेवक बन गए और कांग्रेसी नेताओ के विचार सुनने के लिए कार्यक्रमा मे जाने लगे।

कामराज की माँ और मामा जानते थे कि लडका बहुत समझदार है और धुन का पक्का है। अंग्रेजो के प्रति उसके मन में घृणा का अकुर उत्पन्न हो गया है तो कोई कारण नही कि वह अब इसे सहन कर पाएगा। उन्होने कामराज को रोकने का प्रयास किया। वे जानते थे कि अंग्रेजो से बैर मोल लेना मुसीबत को आमन्त्रित करना है। दक्षिण में सत्यमूर्ति नामक कांग्रेसी नेता बहुत लोकप्रिय थे। कामराज सत्यमूर्ति के सपर्क मे आए। सत्यमूर्ति के विचार क्रातिकारी थे। वे देश की युवाशक्ति को जगाकर उसे राष्ट्रीय आंदोलन से जोडने में लगे थे। कामराज को उन्होने देखा तो उन्हें विश्वास हो गया कि यह लडका राष्ट्रीय आंदोलन से जुड जाए तो एक दिन पूरे दक्षिण भारत को अपने साथ खडा कर सकता है।

कामराज पर सत्यमूर्ति के जादुई व्यक्तित्व का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे कांग्रेस को अधिक समय देने लगे। दुकान पर बैठने का जो सिलसिला उन्होंने बनाया था, वह कई बार टूट गया। मामा का माथा ठनका, उन्होने अपनी बहन शिवकामी को बताया कि कामराज अब व्यापार मे कम और कांग्रेस मे अधिक रुचि ले रहा है। देश में गांधी जी के पीछे चलने की हवा बह रही है। युवा लडके स्कूल-कॉलेज छोडकर गाधी जी के इशारे पर असहयोग आंदोलन मे उतरने लगे है। कामराज को यदि इसी समय नही रोका गया तो यह लडका बहक जाएगा और गाधी जी के असहयोग आंदोलन मे उतर कर आगे निकल जाएगा। इसे पुलिस पकड लेगी ओर जेल में डाल दिया जाएगा।

कामराज की माँ यह बात सुनकर काँप उठी। विधवा माँ अपने इकलौते बेटे को इस तरह अपने हाथ से कैसे जाने दे सकती थी। माँ के मन में यह भी भय था कि अंग्रेजो के हाथ पड़ गया तो वे इसे मार डालेंगे। अतः उन्होने अपने भाई से ही कोई कदम उठाने को कहा।

भाई ने कदम उठा लिया। कामराज के बडे मामा त्रिवेंद्रम मे लकडी का व्यापार करते थे। छोटे मामा ने उन्हे त्रिवेंद्रम भेज दिया। बड़े मामा ने उन्हें लकडी के व्यापार से जोड़ने की पूरी कोशिश की। कामराज ने शुरू मे तो उनके साथ काम मे विशेष रुचि ली, परन्तु धीरे-धीरे उनके सम्बन्ध बाहरी दुनिया से बढ़ने लगे। बाहर का ससार वहाँ भी राष्ट्रीय चेतना से सराबोर था। युवाओ मे गाधी जी के विचारो के प्रति आदर था और अंग्रेजी राज के प्रति आक्रोश था।

सामाजिक आंदोलन में विजयी

राजनीतिक आंदोलन के साथ-साथ त्रिवेंद्रम मे सामाजिक चेतना भी उभार पर

थी। त्रिवेंद्रम के पास वैकोम मे उस समय इझवा तथा थीवा जातियों के समर्थन मे आंदोलन उठ खड़ा हुआ। ट्रावनकोर के महाराजा ने एक विशाल मंदिर का निर्माण कराया और उसके चारो ओर दूर-दूर तक इन जातियों के लोगो के रास्ते बद करा दिए। इनका कुसूर यह था कि ये नीची जाति के गरीब और भूमिहीन लोग थे। जो ऊँची जातियों का मैला ढोकर तथा सफाई का काम कर अपना गुजारा करते थे। महाराजा ट्रावनकोर को ब्राह्मणो ने सलाह दी कि इन गंदे लोगो की परछाई पड़ी तो मन्दिर ही अपवित्र हो जाएगा। अतः उन्होने ब्राह्मणों की सलाह मानते हुए इन जातियो के रास्ते बंद करा दिए।

महात्मा गांधी हरिजन उद्धार मे लगे थे। हरिजनो तथा मैला ढोने वाली जातियों पर होने वाले अत्याचारो के विरुद्ध गांधी जी के नेतृत्व मे कांग्रेस सक्रिय हो उठी थी। स्थानीय कांग्रेस नेता तथा सामाजिक कार्यकर्त्ता सक्रिय हो गए। महाराजा ट्रावनकोर के इस अमानवीय फैसले के विरुद्ध जोरदार आदोलन शुरू हो गया।

कामराज की आयु उस समय 20 वर्ष से कम थी। जब उन्हे पूरी बात का पता चला तो उनके खून में उबाल आ गया। सदा शात रहने वाले कामराज भड़क उठे। वे आगे बढ़कर सत्याग्रह आदोलन मे शामिल हो गए।

महाराज ने आदोलन का दमन करने के लिए सत्याग्रहियो को पकड़-पकड़ कर जेल में डलवा दिया। कामराज की आयु को देखते हुए उन्हे गिरफ्तार नहीं किया, परन्तु पुलिस के हाथो उन्हे कष्ट सहने पड़े, पर कामराज अटल थे। उन्होंने सत्याग्रह जारी रखा।

एक दिन महाराजा को अपनी भूल का अहसास हो गया। उन्होने सत्याग्रहियों को जेल से मुक्त कर दिया तथा थीवा व इझवा जाति के लोगों के रास्ते खोल दिए। सत्याग्रह समाप्त हो गया। यह कामराज की पहली महत्वपूर्ण जीत थी। इसने कामराज का मनोबल बढ़ा दिया। अब कामराज ने दृढ निश्चय कर लिया कि वे अपने कर्त्तव्य-पथ से कभी हटेंगे नही।

देश कुर्बानी चाहता है। देश का समाज इतना पिछड़ा हुआ है कि वह अपनी शक्ति को एक दूसरे के खिलाफ इस्तेमाल करके एक-दूसरे को नीचा दिखकर खुश है। हर आदमी ईर्ष्या, ऊँच-नीच, छुआछूत आदि भावनाओ का गुलाम है। जिस देश के लोग ऐसे कूपमंडूक हे, वह देश कैसे आजाद होगा ? देश की आजादी के लिए लडने के साथ-साथ सामाजिक ढांचे को न्याय की जमीन पर खड़ा करने के लिए भारी संघर्ष करना होगा। गरीबी और छोटी जातियाँ जहाँ घृणा की दृष्टि से देखी जाती हों, मेहनत-मजदूरी को जहॉ हेय समझा जाता हो, मनुष्यो के साथ जहाँ जानवरों से भी बदतर सलूक किया जाता हो, वह देश तरक्की कैसे कर सकता है?

कामराज न देश के लिए अपना पूरा जीवन देने का फैसला कर लिया। विधवा मा के प्रति उनका दायित्व था। पिता को दिए गए वचन को पूरा करने का अहसास था, अतः उन्होने घर तो नहीं छोड़ा, परन्तु परिवार को सहयोग देते हुए देश की सेवा में लग जाने का उन्होंने सकल्प ले लिया।

सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष

आजादी के लिए लड़ाई जारी थी। महात्मा गाधी का आंदोलन जोरो पर था। देश के लाखो युवक गांधी जी के पद-चिह्नो पर चलकर देश की आजादी के लिए देश के विभिन्न भागों में संघर्ष कर रहे थे। कामराज इस लडाई से अब सीधे जुड़ गए। परन्तु उसी समय एक अन्य समस्या की ओर उनका ध्यान गया। पूरे देश मे जातीय घृणा और छुआछूत के विरुद्ध आंदोलन उठ खडा हुआ था। देश के अनेक आध्यात्मिक गुरु, समाजसेवी और राजनीतिक नेता समाज के इस कोढ के विरुद्ध एकजुट थे। कामराज पूरी ताकत से इस अभियान मे जुटे। जहाँ-जहाँ दलितों और अछूतों पर सवर्ण जातियों के अत्याचारों की उन्हें खबर मिलती, वे वहीं जा धमकते और अपने अकाट्य तर्को से सवर्ण जाति के लोगो को यह बात समझाने का प्रयास करते कि इस देश में कोई भी अछूत और नीच नहीं है। सभी इस धरती की सतान है। सब भाई-भाई है। आपस के भेद-भावो ने इस देश में विदेशियो और विधर्मियो को आमत्रित किया। देश बटा, टूटा और गुलाम हुआ। एक हजार वर्ष का इतिहास चीख-चीखकर कह रहा है कि हिन्दू समाज में पनपती ऊँच-नीच की भावना ने देशवासियों को आपस में लड़ाकर नष्ट किया है, बाहर के लोगों को इस देश पर कब्जा जमाने का मौका दिया है। यह अमानवीय सोच खत्म होनी चाहिए। यह घृणा समाप्त होनी चाहिए।

कामराज के विचारो का लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ता था। अनेक लोग उनसे प्रभावित होकर अपने व्यवहार में बदलाव की शपथ लेते थे और देश व्यापी सामाजिक आदोलन मे उनके हाथ मजबूत करने के लिए आगे आते थे।

इसके साथ ही मद्यनिषेध, खादी के प्रचार, साम्प्रदायिक एकता अभियान आदि मुद्दो को उन्होने अपने कार्यक्रमों मे शामिल किया।

नमक सत्याग्रह में जेल गए

1930 में महात्मा गांधी ने सविनय अवज्ञा आदोलन आरंभ किया। पिछले 10 वर्षो से असहयोग आंदोलन जारी था। कुछ कारणों से वह बीच-बीच मे स्थगित अवश्य हुआ था, परन्तु देश मे राजनीतिक चेतना लगातार फैलती जा रही थी। अग्रेज सरकार को एक और झटका देने के उद्देश्य से महात्मा गाधी ने हुकूमत के

बनाए कानूनों का विरोध करने का फैसला कर दिया।

साबरमती आश्रम से दांडी तक पैदल मार्च कर लोगों मे चेतना जगाने तथा दाडी पहुँचकर अपने हाथ से नमक बनाने का काम कर नमक कानून तोड़ने का उन्होने फैसला ले लिया। कामराज इस बात से बहुत दुखी थे कि पिछडी जातियो के लोग एक ओर तो शोषण के शिकार है, गरीबी से अभिशप्त है और दूसरी ओर नशीले पदार्थों का सेवन करके वे अपने स्वास्थ्य को और परिवार की आर्थिक दशा को चौपट किए जा रहे हैं। वह कौम भला कैसे तरक्की कर सकती है जो हीनता की भावना का शिकार होकर आत्मघाती प्रवृत्तियों की ओर लुढ़कती जा रही हो।

इस सत्य को ध्यान मे रखते हुए उन्होंने जातीय घृणा के विरुद्ध अभियान छेड़ने के साथ-साथ नशाबदी को अपना प्रमुख निशाना बनाया। काग्रेस के नशाबंदी आंदोलन मे कामराज अपनी आयु से बड़े नेताओं से भी आगे नजर आते थे। नशा विरोधी अभियान, जातिवाद व छुआछूत के विरुद्ध लडाई के प्रति अंग्रेजों के दिलों में भी सहानुभूति थी। कामराज इस क्षेत्र मे बहुत आगे थे। इससे ब्रिटिश हुकूमत उन पर अधिक हाथ नही डालती थी, परन्तु क्योंकि वे भारत में ब्रिटिश सामाज्य के कट्टर विरोधी थे, अतः सरकार की हिट लिस्ट में उनका नाम था।

नमक सत्याग्रह में यद्यपि वे गांधी जी के साथ नहीं थे, परन्तु गांधी जी के निर्देशानुसार उन्होंने तमिलनाडु में राजा जी के साथ नमक कानून तोड़ने के लिए तिरुचि से तंजावूर तक विशाल जुलूस का नेतृत्व किया। राजा जी और कामराज गिरफ्तार कर लिए गए। उन्हें दो वर्ष की सजा हुई।

जेल में पहुँचने के बाद कामराज के तेवरों मे कोई फर्क नही आया। वे ब्रिटिश हुकूमत की गलत नीतियो का सदा विरोध करते रहे।

कामराज की गिरफ्तारी से दादी को आघात

कामराज की दादी श्रीमती पार्वती अम्माल को जब यह पता लगा कि उनका पौत्र नमक सत्याग्रह में गिरफ्तार हो गया है, तो वे घबरा गई। उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। वे बिस्तर पर ऐसी पड़ीं कि फिर उठ न सकीं। उन्होने दोरायस्वामी नाडार को यह काम सौंपा कि किसी प्रकार ब्रिटिश हुकूमत से मिलकर कामराज को जेल से छुडवाएँ।

दोरायस्वामी जानते थे कि जेल से मुक्ति संभव नही है। कामराज राजनीतिक अपराधी है। सरकारी कानून के उल्लंघन का उन पर आरोप है। ऐसे में सरकार तब तक उन्हें रिहा नहीं कर सकती, जब तक सजा की अवधि पूरी नहीं हो जाती। कुछ दिन के लिए पैरोल पर अवश्य छोड़ा जा सकता है, वह भी इस शर्त पर, कामराज लिखकर दे दें कि भविष्य मे वे राष्ट्रीय आंदोलन में भाग नहीं लेगे। दोरायस्वामी

कामराज को अच्छी तरह जानते थे उन्हें दृढ़ विश्वास था कि किसी भी हालत मे वे ऐसा कुछ लिखकर दने वाले नही।

यही हुआ। दोरायस्वामी ने मद्रास सरकार से राजाज्ञा प्राप्त कर ली। सरकार 15 दिन के लिए उन्हे पैरोल पर रिहा करने को तैयार थी। जब कामराज को यह पता लगा कि उन्हें पैरोल पर रिहा कराने के लिए परिवारजनों ने प्रयास किया है तो वे धर्मसकट में पड गए—एक तरफ बीमार दादी के जीवन की अंतिम घड़ियाँ और दूसरी ओर राष्ट्र के प्रति उनकी प्रतिबद्धता।

कामराज ने फैसला ले लिया। वे दादी के प्रति अपनी कमजोरी को जीत लेगे और राष्ट्र के प्रति अपनी वफादारी निभाएँगे। उन्होने पैरोल पर जाने से इन्कार कर दिया। लेकिन कुछ दिन बाद गांधी-इरविन समझौता हो गया और सभी कैदी रिहा कर दिए गए। कामराज भी रिहा हो गए।

रिहा होने के बाद वे सीधे अपनी दादी के पास पहुँचे। परन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी थी। पोते को देखने की इच्छा आँखो में लिए दादी उस समय जीवन और मृत्यु से संघर्ष कर रही थीं। उन्होंने कामराज को सही सलामत देखा तो उनकी आँखों में एक चमक उभर आई। पोते का हाथ अपने बूढ़े और कमजोर हाथो में लिए वे बहुत देर तक सहलाती रही। उस समय उनकी आँखो से आँसू ढुलक रहे थे।

दादी की ऐसी दशा देखकर कामराज भावुक हो आए। उनकी आँखे छलक आईं। कामराज बोले—"मुझे क्षमा करना दादी जी। यह मत समझना कि आपका पोता कठोर हो गया है। उसके मन मे आपके प्रति प्यार कम हो गया है, इसीलिए पैरोल पर मिलने नहीं आया। आपका पोता अब देश की खातिर अपने आपको दाव पर लगा बैठा है। इस बात पर गर्व करना। मुझे इससे बहुत बल मिलेगा।"

दादी का हाथ आशीर्वाद के लिए उठा। जो चमक उनके चेहरे पर दिखाई दी थी, उसे देखकर लगा कि सचमुच वे अपने पोते पर गर्व का अहसास कर रही थीं।

परन्तु दादी अधिक जीवित नहीं रह सकती थीं। वृद्धावस्था और पोते को जेल के आघात ने उन्हे अंदर तक तोड़ दिया था। पोते से मुलाकात के बाद भी उनमें पहले वाली शक्ति नहीं लौट सकी और उन्होने शरीर छोड़ दिया।

पूरा विरुधुनगर कामराज की दादी के अंतिम संस्कार के समय उमड पड़ा था। सबके जुबान पर एक ही बात थी। दादी के लाड़ले कामराज ने देश की खातिर अपनी दादी के जीवन तक की परवाह नहीं की। पैरोल पर आने से इन्कार करके उन्होंने ब्रिटिश हुकूमत को दिखा दिया कि भारतीय युवा वर्ग अब देश की आजादी के लिए बड़ी से बड़ी कीमत चुकाने का फैसला कर चुका है। कोई भी कमजोरी उसे झुका नहीं सकती।

मैं नेता नहीं, देश का नागरिक हूँ

कामराज जेल से छूटे और अपने क्षेत्र के लोगो से मिले तो लोगो ने उन्हे हाथो-हाथ उठा लिया। लोग उनके विचार जानना चाहते थे। कामराज को भाषण देने की बजाय काम करने मे अधिक रुचि थी। वे भाषणबाजी से प्राय. बचा करते थे। परन्तु इस बार लोगों ने उन्हें घेर लिया। उनके सम्मान मे एक सभा आयोजित की गई। मच से अनेक लोगों ने उनके काम करने के ढग और जेल-जीवन मे उनके शालीन व्यवहार की प्रशंसा की। अंतत. उन्हे बोलना ही पड़ा। उन्होंने कहा—

"मुझे इन बातों में कोई दिलचस्पी नही है कि मैं नेता समझा जाऊँ और जेल से लौटने पर मेरा अभिनन्दन किया जाए। मुझे दिलचस्पी केवल एक बात मे है—हम जब-जब इकट्ठे हों तो अपने दिलों में झाँके ओर पता लगाएँ हमारे दिलो मे अपने उन भाइयो के प्रति कोई घृणा या उपेक्षा का भाव तो नहीं है जो किसी कारण से गरीबी के चंगुल में पड़ गए है और जिनकी जाति समाज में छोटी समझी जाती है, जो अछूत और दलित कहे जाते हैं। मेरा मन रो पड़ता है, जब मै यह देखता हूँ कि कुछ लोग अपने आपको बड़ी जाति का कहकर घमंड से इतरा कर चलते हैं और दूसरे को छोटी जाति का मानकर उसका अपमान करते हैं। हिन्दू धर्म का, भारतीय समाज का इससे बड़ा नुकसान कोई और नहीं हो सकता कि हम जाति-भेद के कारण एक साथ खड़े न हो सके और आपम में टकराएँ। यदि आप चाहते है कि मैं आपके बीच, आपके साथ मिलकर देश के लिए काम करूँ, तो आप यह भेद-भाव बद कर दे। देश की खातिर मै पूरा जीवन जेलों में बिताने को तैयार हूँ, बड़ी से बडी यातना भी झेलने को तैयार हूँ यदि मुझे यह विश्वास हो जाए कि मेरे देश के लोगों ने जातीय घृणा समाप्त कर दी है।"

जैसे ही कामराज का भाषण पूरा हुआ, उनके जय-जयकार से पंडाल गूंज उठा। राजनीतिक मंच पर काम करते हुए भी समाज की चिन्ता कामराज को शेष नेताओं से अलग खड़ा करती थी।

उनका विश्वास था कि भारत की सबसे बड़ी कमजोरी जातीय घृणा है। यह छोटी सी कमी भारतीय समाज को घुन की तरह अदर ही अंदर खत्म कर रही है। यदि हम इस कमजोरी पर काबू न पा सके तो पूरा देश बर्बाद हो जाएगा।

गिरफ्तार होते-होते बचे

1931 में महात्मा गांधी को गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए बुलाया गया। भारत की ओर से अनेक नेता इसमें भाग लेने के लिए लंदन पहुंचे थे। महात्मा गांधी भी लदन गए। उस समय भारत का वायसराय लार्ड विलिंगडन था। वह एक क्रूर शासक था। भारतीय जनता और नेताओं के प्रति उसके दिल में कोई

जगह नहीं थी उसने भारतीय नेताओं खासकर गाधी जी के बारे में जो रिपोर्ट लदन में पेश की थी, उसके कारण और गाधी जी के अड़ियल रुख के कारण ब्रिटिश सरकार और गांधी जी के बीच कोई समझौता न हो सका। गांधी जी को सबसे बड़ा आश्चर्य इस बात से हुआ कि जिन मुद्दो पर सरकार पहले सहमति व्यक्त कर चुकी थी, वे भी ठुकरा दिए गए। सरकार अपनी बात से मुकर गई, इसीलिए गाधी जी ने इकतरफा शर्तो पर कोई भी समझौता मानने से इन्कार कर दिया।

जैसे ही महात्मा गांधी भारत लौटे, उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। उनके साथ लगभग सभी प्रमुख नेताओ को पकड़कर जेल मे डाल दिया गया।

गाधी जी का निर्देश था कि गिरफ्तारी से यथासंभव बचने का प्रयत्न किया जाए। राष्ट्रीय नेताओं को तो गिरफ्तारी देनी ही थी, परन्तु क्षेत्रीय नेताओ को पुलिस की आँख में धूल झोंकते हुए सक्रिय रहना जरूरी था।

परन्तु वायसराय बहुत कठोर व्यक्ति था। उसने दमन चक्र तेज कर दिया और वह गाधी जी के साथ-साथ उनके सभी अनुयाइयो को जेल मे डालकर यह साबित करने का मौका तलाशने लगा कि भारत में वही होता है जो ब्रिटिश हुकूमत चाहती है। वायसराय की खिलाफत का नतीजा है जेल।

कामराज ने यथासभव ऐसे कामों से बचने की कोशिश की जिससे बहाना तलाश कर सरकार उन्हें गिरफ्तार करे। वे बहुत सावधानी से बोल रहे थे, बहुत सावधानी से बर्ताव कर रहे थे।

परन्तु एक दिन पुलिस दल उन्हे गिरफ्तार करने आ पहुँचा। पूछने पर पुलिस ने बताया, "आप बाहर रहे तो कानून और व्यवस्था खराब करेगे, इसीलिए आपको गिरफ्तार करना जरूरी है।"

रिवाल्वर और बम

सुरक्षा की दृष्टि से पुलिस ने कामराज को जेल मे डाला हुआ था, उसी समय उनके खिलाफ एक और मामला उठा दिया गया। अरुणाचलम नामक एक युवा कार्यकर्त्ता को पुलिस ने रिवाल्वर सहित गिरफ्तार किया। पुलिस ने उन पर आरोप लगाया कि अरुणाचलम को रिवाल्वर खरीदने के लिए धन कामराज ने दिया था।

परन्तु इस मामले में पुलिस कोई सबूत नहीं जुटा सकी। क्रातिकारी युवक अरुणाचलम की स्वीकृति के बिना पुलिस उन पर हाथ नही डाल सकती थी, उसने अपना मुँह नही खोला और पुलिस मनमानी नहीं कर पाई।

परन्तु पुलिस चुप रहने को तैयार नहीं थी। कामराज को किसी न किसी मुकदमे में फँसाकर वह जेल मे सड़ा देने पर आमादा थी। पुलिस को एक बहाना

हाथ आ गया। विरुध नगर के डाकघर और श्री विल्लिपुट्टर थाने में कुछ देसी बम बरामद हुए। पुलिस ने कामराज और उनके कांग्रेसी साथियों को बम रखने के लिए जिम्मेदार ठहराकर उन पर मुकदमा चला दिया।

कामराज के प्रिय मित्र मद्रास के प्रसिद्ध बैरिस्टर जार्ज जोसेफ ने कामराज का मुकदमा लड़ा और उन पर लगाए गए आरोपों को बेबुनियाद साबित किया। इस प्रकार कामराज पुलिस की सजिश का शिकार होते-होते बच गए।

सत्ता की लड़ाई से कामराज दुखी

गांधी-इरविन समझौते के बाद गांधी जी अपना आंदोलन वापस ले चुके थे। ब्रिटिश हुकूमत ने प्रस्ताव रखा था कि कांग्रेस 'रिफॉर्म्स एक्ट' के अंतर्गत चुनावों में शामिल हों, जिससे भारत मे प्रशासनिक सुधारों का रास्ता खुल सके और भारत के राजनीतिक दलों को सत्ता में भागीदारी का अवसर प्रदान किया जा सके। गांधी जी ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। कुछ सहमति- असहमति के बीच आखिरकार कांग्रेस ने इस पर स्वीकृति की मुहर लगा दी।

1936 में सत्यमूर्ति तमिलनाडु कांग्रेस के अध्यक्ष चुन लिए गए। कामराज और सत्यमूर्ति के बीच शिष्य ओर गुरु का रिश्ता कायम हो चुका था। कामराज सत्यमूर्ति का बहुत आदर करते थे। उन्होंने उनसे बहुत कुछ सीखा था, अतः वे उन्हें अपना राजनीतिक गुरु मानते थे।

चुनाव के बाद सत्यमूर्ति केंद्रीय विधान सभा के लिए प्रत्याशी बनाए गए। कांग्रेस के संगठन का भार कामराज के कंधों पर आ गया। कामराज तमिलनाडु कांग्रेस कमेटी के मंत्री चुन लिए गए।

सत्यमूर्ति को विश्वविद्यालय निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव लड़ना था। चुनाव के लिए तैयारियाँ चल रही थीं कि एक और स्थिति सामने आ गई। आंध्र प्रदेश के कांग्रेसी नेता टी. प्रकाश सत्यमूर्ति को केन्द्रीय विधान सभा में जाने देना नहीं चाहते थे। अतः उन्होंने सत्यमूर्ति के विरोध में चुनाव लड़ने का फैसला कर लिया। इस स्थिति को टालने के लिए श्री राजगोपालाचारी को सत्यमूर्ति के स्थान पर प्रत्याशी बनाया गया। श्री राजगोपालाचारी की खिलाफत के लिए टी. प्रकाशम मैदान में नही आए। एक युवा वकील को प्रत्याशी बनाया गया जो राजाजी से चुनाव हार गया।

प्रांतीय कांग्रेस मे संतुलन बनाए रखने की दृष्टि से कामराज ने यह सुझाव मान तो लिया था, परन्तु वे समझ गए थे कि सत्ता के लिए गुटबंदी की जो राजनीति शुरू हो गई है, उसके नतीजे अच्छे नहीं होंगे।

कामराज युवा नेता थे, परन्तु राजनीति और समाज पर उनकी पकड़ मजबूत थी। राजनीतिक दांव-पेचों को वे अच्छी तरह समझते थे। राजाजी ने जब अपना

मंत्रिमंडल बनाया तो उसमे सत्यमूर्ति का कही नाम नही था। कामराज को इससे बहुत दुख हुआ। राजाजी जैसे देशभक्त नेता से सत्यमूर्ति के प्रति सौतेले व्यवहार की उम्मीद नही थी।

तमिलनाडु मे सत्यमूर्ति को राजनीति से अलग करने की चाले चली जाने लगी। उनके लिए मद्रास विश्वविद्यालय के कुलपति पद के पद का प्रस्ताव आया। कामराज ने उन्हे रोक दिया। कामराज बोले—"आज मेरा मन बहुत दुखी है। मै सोच भी नही सकता था कि आजादी की लडाई लड़ते-लड़ते हम स्वार्थो की लड़ाई में लिप्त हो जाएगे।"

"कुलपति का यह प्रस्ताव आपको मद्रास की राजनीति से अलग करने की एक साजिश है, आप इसे अस्वीकार कर दीजिए।"

सत्यमूर्ति ने प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। कामराज की सलाह मानकर सत्यमूर्ति राजनीति की मुख्यधारा से हटाए जाने की साजिश का शिकार होते-होते बच गए।

कामराज–सत्यमूर्ति संयुक्त अभियान

अब कामराम ने सत्यमूर्ति को सलाह दी कि वे राजनीतिक क्षुद्रता और सामाजिक विषमता के विरुद्ध अभियान छेडे। देश की सबसे बड़ी समस्या यही है कि बड़े-बड़े लोग भी छोटी-छोटी चीजों मे उलझ कर देश को कमजोर करने में लग जाते हैं। सत्ता के लिए लालच रखना तो सदा ही एक अपराध है। आज जबकि देश गुलाम है, ऐसे मे यह लालच एक इतनी बड़ी कमजोरी है, जिसका फायदा उठाकर शत्रु हम पर अपनी पकड़ और मजबूत कर सकता है।

सत्यमूर्ति और कामराज ठोस कामों में जुट गए। गुरु और शिष्य ने मूल्यों की राजनीति और सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए अपनी पूरी ऊर्जा झोंक दी।

उनके प्रयासों से तमिलनाडु में कांग्रेस सगठन की जड़ें बहुत गहरी हो गई। कामराज ने सत्यमूर्ति को राष्ट्रीय नेता के रूप में उभारने मे अपनी पूरी शक्ति लगा दी। सत्यमूर्ति कामराज के अन्दर छिपे कुशल सगठनकर्त्ता के गुणों को पहचानते थे। उन्होंने कामराज को खुली छूट दे दी। कामराज ने युवाओं को कांग्रेस से जोड़ने तथा कांग्रेस को सामाजिक बुराइयो के खिलाफ एकजुट करने में बेजोड़ सफलता प्राप्त की।

सत्यमूर्ति का विश्वास था कि संसदीय मार्ग से धीरे-धीरे हम आजादी की ओर बढ़ सकते है। कामराज सत्यमूर्ति के इस विचार से सहमत नही थे। परन्तु वे जानते थे कि कांग्रेस के अधिकतर नेता इसी विचार में विश्वास रखते हैं, अत: उन्होने इस विचार का विरोध नहीं किया, क्योंकि उन परिस्थितियों में वैचारिक विरोध ब्रिटिश हुकूमत को आजादी टालने का एक और बहाना दे सकता था।

अध्यक्ष पद से इन्कार

1940 मे विरुध नगर पालिका की परिषद में काग्रेस का बहुमत था। कामराज उस समय जेल मे थे। परिषद के सदस्यों ने उनकी अनुपस्थिति मे ही परिषद के अध्यक्ष पद के लए उनके नाम का प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव पास हो गया और कामराज परिषद के अध्यक्ष चुन लिए गए।

परन्तु जब वे जेल से रिहा हुए और उनसे परिषद की अध्यक्षता करने को कहा गया तो उन्होने पद ग्रहण करने से इन्कार करते हुए कहा—"आप लोगों ने मुझे अध्यक्ष चुना, इसके लिए मे आपका आभार मानता हूँ, परन्तु मैं एक बात स्पष्ट करना चाहता हूं—मै पद ग्रहण नहीं करुँगा। मै राजनीति मे इसलिए नहीं आया हूँ कि पद प्राप्त करुँ और सम्मान और प्रशसा हासिल कर खुशियाँ मनाऊँ। मेरा जीवन तो एक ऐसी यात्रा है, जिसमें कोई विराम नहीं है। मेरी सूची मे दो प्रमुख काम है, जिनके लिए मैं अपना पूरा जीवन लगा देना चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि अपने जीवन-काल मे ही इन दोनों कामों को पूरा होते देखूँ। पहला काम है देश की आजादी के लिए सघर्ष करना, जेल जाना, सजाएँ भुगतना और जो भी बन पडे कीमत चुकाना। दूसरा काम है दलितो और पिछडो के कष्टो को समाप्त करना। हो सकता है दूसरा काम आजादी लिए बिना पूरा न हो सके परन्तु यह सच है कि आजादी के बाद यह अवश्य पूरा होगा। आजादी के बाद हम एक ऐसा संविधान बनाएँगे कि आने वाली सरकारे जातीय घृणा मिटाने में अपनी पूरी शक्ति लगाएँ और यह अभिशाप हमेशा-हमेशा के लिए समाप्त हो जाए। इसलिए कहता हूँ, मैं पद ग्रहण नहीं करुँगा, मेरा जीवन तैयारियों के लिए है, तैयारियो का सुख भोगने के लिए नहीं।"

विरुध नगर के लोग कामराज के विचार सुनकर दंग रह गए। जो कामराज से मन ही मन ईर्ष्या कर रहे थे, वे शर्म से गड गए।

गांधी जी का व्यक्तिगत सत्याग्रह

1941 में महात्मा गांधी ने अपना सत्याग्रह रोक दिया। 1939 में विश्व युद्ध आरंभ हो चुका था। महात्मा गांधी इस युद्ध से भारत को अलग रखना चाहते थे। गांधी जी अहिंसावादी थे। भारत विश्व युद्ध में कहीं भी शामिल नहीं था। भारत से किसी को शत्रुता नहीं थी और न ही किसी देश की भारत से, फिर भारत युद्ध मे क्यो उतरे ?

परन्तु अंग्रेजों का तर्क था कि भारत ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा है, अतः उसका फर्ज है कि ब्रिटेन की ओर से विश्व युद्ध में उतरे। अंग्रेजों ने भारत में सेनिको की भर्ती खोल दी। भारतीय सैनिको को सरकारी आदेश से युद्ध में भेजा

जाने लगा

ब्रिटिश सरकार की इस नीति का विरोध करने के लिए महात्मा गांधी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू कर दिया। गांधी जी के निकटतम सहयोगी इस सत्याग्रह में स्वेच्छा से गांधी जी के साथ आ गए। श्री राजगोपालाचारी तथा सत्यमूर्ति आदि नेता गांधी जी के इस सत्याग्रह में शामिल हो गए। उन्होंने आपसी मतभेद भुला दिए। कामराज भी गांधी जी के साथ सत्याग्रह मे भाग लेना चाहते थे, परन्तु कांग्रेस की जो नीति बनी उसके अनुसार कामराज को तमिलनाडु में कांग्रेस का काम-काज देखने की जिम्मेदारी सौंपी गई। कामराज तटस्थ रहने वालो में से नही थे। उन्होंने तमिलनाडु मे आंदोलन के संचालन की अनुमति प्राप्त कर ली और पूरे तमिलनाडु में सत्याग्रह को तेज करने के लिए जुट गए। गांधी जी, राजगोपालाचारी तथा सत्यमूर्ति गिरफ्तार कर लिए गए। जिन-जिन नेताओं ने निजी सत्याग्रह में गांधी जी का समर्थन किया वे सभी गिरफ्तार कर जेलो में डाल दिए गए।

ऐसी स्थिति मे कामराज ने बडी सूझ-बूझ से काम लिया। वे गुप्त बैठकें करके लोगो से यह अपील करते थे कि वे युद्ध कोष में कोई योगदान न दे। युवकों से उनका आग्रह था कि किसी भी हालत मे युद्ध के लिए खोली गई सैनिक भर्ती मे शामिल न हों।

कामराज को अपने कार्य में बडी सफलता मिली। देश के अन्य प्रांतो के नेताओ से भी कामराज ने संबंध बनाए हुए थे। देश को युद्ध से दूर रखने संबंधी रणनीति के निर्माण में तथा उसे लागू करने के लिए वे आपस मे सहयोग किया करते थे।

ब्रिटिश सरकार भारत को लालच दे रही थी कि युद्ध में जीतने के बाद वह भारत को आजाद कर देगी। आपत्ति काल मे भारतीय युवक ब्रिटेन की मदद करें। भारतीय नेता जनता को ब्रिटेन की सहायता के लिए उकसाएँ तो भारत के सहयोग से ब्रिटेन को युद्ध जीतने में आसानी होगी।

परन्तु अंग्रेजों की नीयत मे छिपी कुटिलता अब पूरी तरह उजागर हो चुकी थी। अतः उन्हें भारत से उतना सहयोग नहीं मिल पाया, जितनी कि उन्हे उम्मीद थी।

भारत छोड़ो आंदोलन : अपना काम पूरा करने के बाद गिरफ्तारी दी

8 अगस्त, 1942 को बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में कांग्रेस तथा देश के नेता श्री मोहनदास करमचन्द गांधी ने भारत छोड़ो आंदोलन का प्रस्ताव पास करवाकर आंदोलन की घोषणा कर दी।

सरकार को पहले से ही इस बैठक मे कांग्रेस की ओर से किसी बड़ी घोषणा

की उम्मीद थी। अत. उसने चप्पे-चप्पे पर पुलिस का बंदोबस्त कर दिया था।

ज्यों ही महात्मा गांधी ने 'करो या मरो' के नारे के साथ जोश में उद्घोष किया "अंग्रेजो भारत छोड़ो," उपस्थित जन-समुदाय में यह नारा गूंज उठा। पूरे देश में इसकी अनुगूंज हुई और बच्चा-बच्चा अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ हरकत मे आ गया।

सम्मेलन मे उपस्थित नेताओ को मालूम था कि उनकी गिरफ्तारी सुनिश्चित है। अतिम लड़ाई की घोषणा के बाद गिरफ्तारी न होने का तो प्रश्न ही नही था। इतना ही नहीं, सभी प्रमुख नेताओं ने फैसला कर लिया था कि अब चाहे उनकी जान चली जाए, परन्तु वे देश की आजादी के मामले मे कोई समझौता नही करेगे। इसके लिए वे अपना सर्वस्व लुटा देने को तैयार होकर आए थे, परन्तु फिर भी सबके सामने अपने-अपने क्षेत्रों मे व्यापक रूप से इस सदेश को पहुँचाना तथा जनता को पूरी तरह जाग्रत कर उसे इस आदोलन से सीधे जोड़ने का लक्ष्य था, जिसे पूरा करना सख्त पुलिस बंदोबस्त के बीच कठिन था।

कामराज का लक्ष्य था आदोलन का सदेश जन-जन तक पहुँचाते हुए अपने क्षेत्र विरुध नगर पहुँचना और फिर काम पूरा हो जाने के बाद गिरफ्तारी देना।

बम्बई से मद्रास तक हर रेलवे स्टेशन पर भारी पुलिस तैनात थी। पुलिस के पास कामराज तथा अन्य सभी नेताओ के वारंट पहले से ही मौजूद थे। हत्थे चढ़ते ही गिरफ्तारी तय थी।

पहले उन्होंने आंध्र प्रदेश होते हुए मद्रास पहुँचने की योजना बनाई, परन्तु जब उन्हें पता लगा कि आदकोणम प्लेटफार्म पर बम्बई से लौटने वाले कांग्रेसियों को गिरफ्तार करने के लिए पहले से ही पुलिस मौजूद है तो उन्होंने अपनी योजना बदल दी।

पुलिस की नजर से बचकर वे वेष बदलकर स्टेशन से निकल आए और बस से रानीपेट पहुँचे। रानीपेट मे वे कांग्रेसी कार्यकर्ता कल्याण रामा अय्यर के घर जाकर छिप गए। श्री अय्यर ने कामराज को बड़ी सावधानी से अपने घर से निकाला और चावल के व्यापारी मोहम्मद सुलेमान के पास सुरक्षित पहुँचा दिया। मोहम्मद सुलेमान देशभक्त था। स्वाधीनता सेनानियों का सहयोग करना वह अपना फर्ज समझता था। उसके बगीचे मे एक छोटी सी कोठी थी। सुलेमान ने कामराज को इस कोठी मे छिपा दिया।

एक रात को अचानक एक सब इस्पेक्टर कामराज का पीछा करता हुआ उस बगीचे मे आ पहुँचा। कामराज ने पुलिस वाले को देख लिया और वे एक कमरे में छिप गए।

कल्याणरामा अय्यर को पता लग गया कि एक पुलिस सब इंस्पेक्टर कामराज

की टोह लेने के लिए बगीचे में घुस आया है तो वे भागते हुए वहा पहुचे . उन्होंने सब-इस्पेक्टर से बगीचे मे आने का कारण पूछा। पुलिस वाले ने बताया कि वह सुपरिटेंडेंट के ठहरने के लिए सुलेमान की कोठी देखने आया है तो अय्यर घबरा गए, परन्तु तभी सुलेमान ने समझदारी से काम लेते हुए सब इंस्पेक्टर को बताया कि उनकी कोठी बहुत छोटी है। यदि इससे काम चल जाए तो उसे कोई ऐतराज नही है।

सौभाग्य से सब इस्पेक्टर को वह कोठी बहुत छोटी लगी और वह वहाँ से चला गया। कामराज का सुराग सब इस्पेक्टर को नहीं मिल पाया।

वहाँ से रात मे ही कल्याणरामा अय्यर और कामराज एक टैक्सी द्वारा वाड़ियाम बाड़ी चले गए। वहाँ पहुँचकर उन्होने तजावूर के लिए गाड़ी पकडी।

विल्लुपुरम रेलवे स्टेशन पर गाड़ी रुकी तो वहाँ पुलिस का भारी पहरा था। बड़ी मुश्किल से वे दोनों पुलिस की निगाहों से बचे, और अगले दिन सवेरे तंजावूर पहुँच गए। तजावूर में वे एक कांग्रेसी नेता नारायणस्वामी के घर जा पहुँचे। तजावूर मे उन्होने स्थानीय कांग्रेसी नेताओ से मुलाकात कर उन्हें दल का संदेश दिया। फिर रेल द्वारा वे त्रिची जा पहुचे।

त्रिची रेलवे स्टेशन पर जैसे ही गाडी रुकी, उनकी निगाह पुलिस के दस्ते पर पडी। प्लेटफार्म पर भारी सख्या मे पुलिस तैनात थी। कामराज समझ गए कि अब गिरफ्तारी निश्चित है, परन्तु अभी पार्टी का काम शेष था। वे चाहते थे कि किसी प्रकार यह काम भी पूरा हो जाए। उन्होंने हिम्मत से काम लिया। उन्होंने गँवारों का वेष बनाया और प्लेटफार्म पर न उतर कर ट्रेन के दूसरी ओर उतर गए। सिर पर तौलिया लपेटे घुटनो से ऊपर तक धोती बाधे ठेठ देहातियो के वेष में वे एक हॉटल मे ठहरे और फिर वहाँ से एम. एम रंगास्वामी नामक कांग्रेसी के घर जा पहुँचे। वहाँ उन्होने कांग्रेसजनों को पार्टी का सदेश दिया और फिर कार से मुदुरै चले गए।

मुदरै में उन्होने कांग्रेस जनों से मिलकर अगली रणनीति का खुलासा किया। यहाँ से कल्याणरामा अय्यर रानीपेट लौट गए और कामराज कुमारस्वामी राजा के साथ अगले मिशन को पूरा करने के लिए चले गए।

ज्यो ही कल्याणरामा अय्यर रानीपेट पहुँचे, पुलिस ने उन्हें भारत सुरक्षा अधिनियम के अंतर्गत गिरफ्तार कर लिया।

कुमारस्वामी राजा के साथ अपना काम निबटाने के बाद कामराज ने चैन की साँस ली। अब वे अपना हर काम पूरा कर चुके थे।

वहाँ से वे निर्भय होकर विरुध नगर लौटे। वहाँ पहुँचते ही उन्हे पता लगा कि पुलिस दल वारंट के साथ उनकी प्रतीक्षा कर रहा है। उन्हे तनिक भी हैरानी नहीं

हुई। वे स्वय ही पुलिस अफसर के पास जा पहुँचे और बोले—"लीजिए, अव आप मुझे गिरफ्तार कर लीजिए। मैने अपना सारा काम पूरा कर लिया है।"

पुलिस अफसर मुस्कराया और उसने उन्हें हथकडी पहना दी।

समर्पित होते हुए भी सत्ता से बाहर

कामराज अपना पूरा जीवन देश और समाज की सेवा में लगा चुके थे। उनकी माँ शिवकामी विधवा हो चुकी थीं और बहन की शादी हो जाने के बाद वह भी अपने घर चली गई थी। माँ को पूरी तरह अपने भाई के सहारे रहना पड़ा था। घर के हालात इतने कष्टकर थे, फिर भी कामराज ने पीछे मुडकर नही देखा। बड़े उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने छोटे उद्देश्य की अनदेखी कर दी थी।

1942 के भारत छोडो आदोलन मे उन्हें तीन वर्ष की सजा हुई थी। तीन वर्ष तक वे जेल में रहे। जेल में वे भारत के भावी स्वरूप पर विचार करते रहे। यह बात तो स्पष्ट हो चुकी थी कि ब्रिटेन भारत को लम्बे समय तक गुलाम बनाए नहीं रह सकता। विश्व युद्ध चरम पर था। जर्मनी के डिक्टेटर हिटलर ने ब्रिटेन और फ्रास को रौद डाला था। अंग्रेजी साम्राज्यवाद की हवा निकल चुकी थी। अब दूसरे देशों पर अपनी पकड बनाए रखना उसके बूते से बाहर होने लगा था। भारत के गर्मदलीय नेता सुभाषचंद्र बोस जर्मनी पहुँच चुके थे। जर्मनी, इटली और जापान ब्रिटेन के शत्रु देश थे। इन देशों की मदद से सुभाष भारत पर आक्रमण कर उसे अग्रेजी शासन से मुक्त कराने की योजना पर काम कर रहे थे।

'भारत छोड़ो' आदोलन के साथ ही भारत ने स्वाधीनता का बिगुल बजा दिया था। यद्यपि हुकूमत ने सब नेताओ को पकड़ कर जेल में डाल दिया था परन्तु जनता अब सरकार से जूझने का मन बना चुकी थी।

ऐसे समय मे मुस्लिम लीग अपनी अलग खिचडी पका रही थी। वह मुस्लिम बहुल क्षेत्रो को भड़का कर देश के बंटवारे का माहौल बना चुकी थी। जब सब कांग्रेसी नेता जेलो में बंद थे, मुस्लिम लीग को ब्रिटिश हुकूमत के करीब आने और सौदेबाजी करने का अच्छा अवसर मिल गया। मुस्लिम लीग के नेता मोहम्मद अली जिन्ना ने इस स्थिति का पूरा फायदा उठाया।

कामराज इस बात से बहुत चिन्तित थे। महात्मा गांधी तो यह घोषणा कर चुके थे कि बटवारा यदि हुआ तो उनकी लाश पर होगा। कामराज बंटवारे के पूरी तरह विरुद्ध थे, परन्तु ऐसा कोई सूत्र हाथ नहीं आ पा रहा था कि मुस्लिम लीग को विश्वास में लेकर उसे काग्रेस के साथ आदोलन मे शामिल किया जा सके।

तीन वर्ष तक जेल में रहने के बाद 1945 मे सारे काग्रेसी नेता रिहा कर दिए गए। यह वह समय था, जब मित्र देशों के हाथो जर्मनी की करारी हार हो चुकी

थी हिटलर ने आत्महत्या कर ली थी जापान के हिरोशिमा और नागासाकी नामक नगरो पर एटम बम गिराकर अमेरिका उसकी सैनिक शक्ति की कमर तोड़ चुका था। सोवियत संघ के साथ मित्र देशों की जीत के बाद विश्व युद्ध समाप्त हो चुका था।

इन तीन वर्षो मे देश तथा दुनिया में बहुत बडा परिवर्तन आ चुका था। तमिलनाडु की राजनीति मे भी भारी बदलाव आ गया था। कामराज और सत्यमूर्ति के समर्थको तथा कांग्रेस से मतभेद हो जाने के कारण 1942 में राजा जी कांग्रेस से इस्तीफा दे चुके थे। 1943 में सत्यमूर्ति का निधन हो चुका था।

सत्यमूर्ति की मृत्यु से कामराज को बहुत दुख पहुँचा। वे जमीन से जुड़े एक ऐसे नेता थे, जिनके दिल में गरीब जनता तथा दलितों के लिए प्यार था। वे मूल्यो की राजनीति के पक्षधर थे। इतिहास राजा जी को इस गुनाह के लिए कभी माफ नही करेगा कि उन्होंने सत्यमूर्ति जैसे महा मानवतावादी नेता के साथ गुटबाजी की राजनीति की और उन्हे बहुत कष्ट पहुँचाया।

राजाजी ने तो कांग्रेस छोड़ दी थी, परन्तु उनके समर्थक अभी भी मैदान में डटे थे। कामराज जब जेल से छूटकर आए तो राजा जी के समर्थक उनसे मिलने आए। उन्होने प्रस्ताव रखा कि वे राजाजी के साथ मिलकर काम करे तो लम्बे समय से नेतृत्वविहीन प्रांत का आत्मविश्वास बढेगा और कांग्रेस मजबूत होगी।

कामराज रचनात्मक कामो मे विश्वास रखते थे। कांग्रेस की मजबूती और जन-एकता की खातिर वे कुछ भी करने और कुछ भी सह जाने को सदा तैयार रहते थे। राजा जी से असतुष्ट होते हुए भी वे उनके साथ मिलकर काम करने को तैयार हो गए।

राजा जी के समर्थकों ने उन्हें फिर से सक्रिय राजनीति में आने पर विवश किया और एक बार फिर असहयोग और चालाकी की राजनीति शुरू हो गई। कामराज जब पार्टी के काम से विरुध नगर मे व्यस्त थे, उन्हे सूचना मिली कि राजाजी को तमिलनाडु कांग्रेस कमेटी मे शामिल कर लिया गया है। कामराज को इस खबर से बहुत बड़ा धक्का लगा। तमिलनाडु कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष उस समय कामराज थे फिर उनकी सहमति के बिना राजा जी कांग्रेस कमेटी मे कैसे ले लिए गए?

बाद में उनको पता लगा कि अखिल भारतीय कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना अब्दुल कलाम आजाद ने उन्हें समिति मे शामिल करवाया है।

अब कामराज अड़ गए। उन्होंने राजा जी के चुनाव को चुनौती दे दी। बात महात्मा गांधी तक पहुंच गई। कांग्रेस में हंगामा हो गया।

ऐसे में सरदार पटेल बीच मे आए और उन्होने कामराज को समझा-बुझाकर

राजाजी के साथ उनकी सुलह करा दी।

1946 में महात्मा गांधी हिन्दी प्रचार समिति के रजत जयती के अवसर पर मद्रास आए। राजाजी ने अपने मुख्यमत्री काल मे मदुरै तथा पलानी के मन्दिरो मे हरिजनों का प्रवेश कराया था। गाधी जी इन मन्दिरों को देखने गए। राजाजी के मुख्यमत्री काल मे हरिजनों को दिए गए विशेषाधिकारो के लिए उन्होने राजाजी की प्रशसा की।

एक टिप्पणी मे गाधी जी ने विजयवाड़ा में कहा—"राजाजी तमिलनाडु के मुख्यमंत्री पद के लिए सबसे उपयुक्त व्यक्ति हैं।"

कामराज को यह टिप्पणी बेहद अपमानजनक लगी। उन्हे लगा कि गाधी जी ने स्थिति को ठीक से समझे बिना ही ऐसी बात कह डाली है। उन्होने झट तमिलनाडु कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया।

कामराज के इस्तीफे के बाद तमिलनाडु कांग्रेस में भूचाल आ गया। अब तक कामराज के साफ-सुथरे चरित्र और त्यागपूर्ण जीवन का परिचय पूरे क्षेत्र को मिल चुका था। राजाजी के विरुद्ध आवाजें तेज हो गई। अतत राजाजी ने महात्मा गाधी को पत्र लिखकर यह स्वीकार किया कि जनता उन्हें नहीं, कामराज को चाहती है। इसके साथ ही उन्होंने राजनीति से संन्यास लेने की घोषणा कर दी।

1946 में अंतरिम सरकार के लिए चुनाव हुए। कामराज के नेतृत्व मे मद्रास प्रेसीडेंसी मे कांग्रेस की भारी जीत हुई। कामराज स्वयं विधान सभा के लिए अरुप्पूकोट्टाई से निर्विरोध चुन लिए गए।

आजाद भारत में सामाजिक न्याय के प्रयास

अंतरिम सरकार में श्री जवाहरलाल नेहरू प्रधानमत्री बने। इस सरकार के गठन के साथ ही भारत को स्वाधीनता देने की दिशा में गतिविधियॉ तेज हो गई।

आजादी से पहले ही पाकिस्तान के निर्माण की अटकलें तेज हो गई और लोग पलायन करने लगे। पलायन के साथ ही साम्प्रदायिक तनाव बढता गया और साप्रदायिक हिसा भडक उठी। इसी तनाव के बीच 14 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान की आजादी की घोषणा हुई और 15 अगस्त, 1947 को भारत की आजादी घोपित की गई।

आजादी के बाद सबसे महत्वपूर्ण काम था देश को एक ऐसा संविधान देने का जो दलितों का दमन समाप्त करे, उन्हें विशेषाधिकार दिलाए, जिससे वे अमानवीय अत्याचारों से उबरकर राष्ट्र की मुख्य धारा में स्वतत्र नागरिक बनकर खड़े हों ओर अपने जीवन स्तर को ऊपर उठाने के अवसर प्राप्त करें।

कामराज ने महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू तथा डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आदि

नेताओं पर इस बात के लिए दबाब बनाया कि संविधान में दलितों व पिछड़ों को विशेष सुविधाए मिलें।

उनका प्रयास सफल हुआ। भीमराव अम्बेडकर पहले ही महात्मा गाधी को विश्वास मे ले चुके थे। प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू और संविधान सभा के अध्यक्ष श्री राजेन्द्रप्रसाद कामराज के विचारों से पूरी तरह सहमत थे।

1950 मे देश को एक ऐसा संविधान मिल गया, जिसमे पिछडी जातियों के लिए आरक्षण तथा शिक्षा व रोजगार आदि में विशेष प्रकार की सुविधाओ का प्रावधान था। कामराज का मन प्रसन्नता से खिल उठा। देश के लिए जिस उद्देश्य से उन्होने पूरा जीवन लगाया था, वह पूरा हुआ।

कांग्रेस अध्यक्ष पद से इस्तीफा

कामराज 1940 से 1952 तक तमिलनाडु कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष रहे। भारत का संविधान बनने के बाद 1952 में जब स्वतंत्र भारत में पहली बार चुनाव हुए तो कामराज संसद सदस्य बन गए। ससद मे पहुँचते ही उन्होंने अध्यक्ष पद छोड़ दिया। अपने इस्तीफे का कारण उन्होंने यह बताया कि संसद में पहुंचने के बाद उन्हें अब प्राय· दिल्ली में रहना पड़ेगा और अपने चुनाव क्षेत्र के लिए काम करना पडेगा, ऐसे मे वे पार्टी के सगठनात्मक कार्यो को ठीक से नही देख पाएंगे।

परन्तु सच यह नही था। कामराज मे इतनी क्षमता थी कि वे एक साथ अनेक काम निबटा सकते थे। उनकी दृढ़ इच्छा शक्ति और सम्पूर्ण समर्पण के सामने कोई भी काम आसान हो जाया करता था। अकेले कामराज ने अपने जीवन में अनेक मोर्चो पर एक साथ काम किया।

1952 में तमिलनाडु विधान सभा में कांग्रेस पार्टी की हार ने कामराज को सोचने पर विवश किया। 375 विधान सभा सीटों में से कांग्रेस को केवल 152 सीटे मिली थीं। शेष सीटे संयुक्त मोर्चे के हिस्से में आई जो कम्युनिस्ट पार्टी, सोशलिस्ट पार्टी, किसान मजदूर प्रजा, कृपक लोक, तमिलनाडु टाइगर और कामनवील नामक छ· राजनीतिक दलों से मिलकर बना था। इस मोर्चे का नाम 'यूनाइटेड डेमोक्रेटिक फ्रंट' था और उसके नेता थे श्री टी. प्रकाशम। श्री प्रकाशम मंत्रिमंडल बनाने को तैयार थे, परन्तु मद्रास के नए राज्यपाल श्रीप्रकाश स्वाधीन भारत के प्रथम चुनाव के बाद तमिलनाडु मे पहली गैर कांग्रेसी सरकार के पक्ष में नहीं थे। श्री टी. टी कृष्णमाचारी ने सलाह दी कि श्री सी राजगोपालाचारी को यदि राजनीतिक संन्यास से वापस राजनीति में बुलाकर उन्हें प्रांत के मुख्यमत्री का दायित्व सौंपा जाए तो विपक्ष का विरोध भी हल्का पड जाएगा और कांग्रेस मे भी सहमति बन जाएगी। श्री सी. राजगोपालाचारी भारत के प्रथम गवर्नर जनरल केन्द्रीय मत्री तथा बंगाल

के राज्यपाल रह चुके थे। इतने महत्त्वपूर्ण पदो पर रहने के कारण उनका देश भर मे नाम था और प्रांत की जनता भी उनकी इज्जत करती थी।

राजाजी ने सन्यास तोड़ दिया और राज्य के मुख्यमत्री का पद स्वीकार कर लिया। राजाजी ने कूटनीति से काम लिया। टायगर पार्टी के संस्थापक नेता श्रीमणिकवेलू तमिलनाडु के उभरते हुए अत्यधिक शक्तिशाली नेता थे, राजाजी ने उन्हे भी अपने मत्रिमंडल मे शामिल कर लिया। इस प्रकार राजाजी की सरकार स्थायी व मजबूत हो गई। राजाजी के इस कदम के कारण विरोधी दलों का संयुक्त मोर्चा भी टूट गया और कांग्रेस के अच्छे भविष्य का मार्ग भी खुल गया।

इन परिस्थितियो मे कामराज प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष बने रहना नही चाहते थे। उनका तर्क था कि अब कांग्रेस कमेटी का अध्यक्ष कोई ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो राजाजी के साथ ताल-मेल बैठा सके।

परन्तु राजाजी पुराने खिलाड़ी थे। वे तो अपने विरोधियो के साथ भी ताल-मेल बैठाना जानते थे। वे जानते थे कि कामराज कांग्रेस के महाशक्तिशाली नेता बन चुके है। कामराज को शामिल किए बिना उनकी लोकप्रियता का महल धीरे-धीरे ढहना शुरू हो जाएगा और इससे कांग्रेस तथा उनकी सरकार दोनों को भविष्य में कठिनाइयो का सामना करना पड़ेगा।

वे स्वयं कामराज के पास पहुँचे और उनसे बोले—"कामराज ! जो बीत गया, उसे भूल जाओ। मैं बड़े विश्वास और अधिकार के साथ तुम्हारे पास आया हूँ। तुम्हारा जीवन कांग्रेस और देश के लिए समर्पित है। मै तुम्हारे बिना काम नही कर सकता। तुम इस्तीफा वापस ले लो।" कामराज मान गए। अब तमिलनाडु की राजनीति ने नया मोड़ ले लिया।

मद्रास के मुख्यमंत्री बने

राजाजी सी. राजगोपालाचारी कामराज के सहयोग से मद्रास प्रेसीडेंसी के मुख्यमत्री तो बन गए, परन्तु उनके विकास और नियत्रण कार्यक्रमों की उष्णता ने अनेक द्रविणों को नाराज कर दिया। राजाजी को त्यागपत्र देना पडा।

अब बारी थी कामराज की। पूरे क्षेत्र में ऐसा कोई व्यक्ति कांग्रेस के पास नही था जो राजा जी के स्थान को भर सके। कामराज के नाम पर पूरी कांग्रेस एक थी। जबकि कामराज सत्ता की राजनीति मे प्रवेश तक नहीं करना चाहते थे। उन्हें पार्टी सगठन, नीति-निर्धारण, सामाजिक कार्यों तथा दलितो व पिछडो के लिए काम करने में ही रुचि थी।

कामराज दिल्ली गए और प्रधानमंत्री तथा कांग्रेस अध्यक्ष श्री जवाहरलाल नेहरू और गोविन्दबल्लभ पत से मिले। दोनो नेताओं ने उन्हें मुख्यमंत्री पद

स्वीकार करने की सलाह दी।

13 अप्रैल, 1957 को श्री कामराज ने मुख्यमंत्री पद की शपथ ले ली। उन्होने अपने मन्त्रिमंडल में अनेक ऐसे जन प्रतिनिधियों को शामिल किया जो अपने-अपने क्षेत्र मे बेजोड थे। उनकी कार्य-कुशलता और सूझ-बूझ से तमिलनाडु में खुशहाली आ गई। उन्होंने कक्कन नामक हरिजन नेता तथा लौर दम्माल साइमन नामक ईसाई महिला को भी अपने मन्त्रिमडल में शामिल किया। समाज के सभी वर्गों को अपने मंत्रिमडल मे शामिल करके उन्होने प्रशासन की कार्य-कुशलता में वृद्धि की तथा दबे-पिछडे लोगो मे आत्मविश्वास और स्वाभिमान की नई ज्योति जलाई।

कामराज के सामने सबसे बड़ी समस्या रामनाथपुरम जिले मे पैदा हुई। थैवर व हरिजन जाति के बीच सघर्ष छिड गया। थैवर के आदमियों पर हरिजन ईसाई इमेन्युअल की हत्या का आरोप था। पुलिस जब शक्तिशाली थैवर नेता मुथुरामलिंगा को गिरफ्तार करने को झामुवल गॉव पहुँची तो भीड ने पुलिस पर हमला कर दिया। पुलिस को गोली चलानी पड़ी जिससे पांच व्यक्ति मारे गए। सरकार ने जॉच बिठा दी। जॉच की रिपोर्ट आई तो इसमे पुलिस द्वारा गोली चलाने की क्रिया को सही ठहराया गया था। थैवर जाति के लोग और विपक्षी दल सरकारी जाँच से संतुष्ट नही हुए।

कामराज समझ गए कि विवाद की जड़ झगड़ा नहीं अपितु क्षेत्र का पिछडापन है। उन्होने तुरन्त क्षेत्र के विकास की योजना लागू कर दी। कृषि तथा उद्योगों के विकास के साथ-साथ मकान बनवाने की भी व्यवस्था कर दी गई।

लोग शांत हो गए और विकास के कार्यो मे लग गए।

कामराज योजना

1962 मे जब तीसरी बार आम चुनाव हुए तो कांग्रेस को विधान सभा मे पहले से भी 13 सीटे कम मिली। द्रविड़ मुनेत्र कड़गम के नेता सी. एन. अन्नादुरै ने भारतीय संघ से अलगाव की लहर फैलाई और जनता अलगाववाद के बहकावे में आकर उनके पीछे खड़ी हो गई। राष्ट्रवादी कांग्रेस को हार का मुँह देखना पड़ा।

यही वह समय था, जब चीन ने भारत पर हमला किया था। विपक्षी दल प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू की आलोचना कर रहे थे। ऐसे ही समय कांग्रेस शासित प्रांतो मे दलीय गुटबन्दी पैदा हो गई और प्रशासन पर कांग्रेस की पकड़ कमजोर होने लगी। दक्षिण भारत में विरोधी दल सांप्रदायिकता और प्रांतीयता की भावना भडका कर जनता को गुमराह करने लगे। कामराज चिंतित हो उठे। वे कांग्रेस और देश दोनों के प्रति पूरी तरह समर्पित थे। वे दोनों में से किसी का नुकसान नहीं सह सकते थे। परन्तु उनकी ऑखों के सामने दोनों का नुकसान हो

रहा था और वे कुछ नहीं कर पा रहे थे।

एक वर्ष तक कामराज ने स्थिति पर काबू पाने के अनेक प्रयास किए, परन्तु स्थिति में सुधार नही हुआ। कामराज ने फैसला कर लिया कि वे सीधे नेहरूजी से बात करेंगे।

जुलाई 1963 मे प० जवाहर लाल नेहरू हैदराबाद आए। कामराज ने प्रस्ताव रखा कि सभी कांग्रेसी मुख्यमंत्री और केन्द्रीय मंत्री अपने पदो से इस्तीफा देकर पार्टी का काम देखें। पार्टी विखराव की ओर जा रही है, उसे कुशल नेतृत्व की जरूरत है।

नेहरू जी ने श्री कामराज के इस सुझाव को कांग्रेस कार्यसमिति के समक्ष रखा। सबने इस विचार की प्रशसा की और कामराज के आदर्श को ध्यान में रखते हुए इसे 'कामराज योजना' नाम दिया गया। नेहरू जी इस योजना के अंतर्गत सबसे पहले इस्तीफा देना चाहते थे। परन्तु कार्यसमिति ने उन्हें ऐसा करने से रोक लिया। देश को उनके नेतृत्व की आवश्यकता थी।

सभी केन्द्रीय मन्त्रियों तथा कांग्रेसी मुख्यमंत्रियो ने अपने-अपने इस्तीफे सौंप दिए। नेहरू जी ने छ. केन्द्रीय मंत्रियों के इस्तीफे स्वीकार किए। ये छ: मंत्री थे—मोरारजी देसाई, एस. के. पाटिल, जगजीवन राम, लालबहादुर शास्त्री, श्रीमाली तथा गोपाला रेड्डी। इन सबको पार्टी संगठन का दायित्व सौंपा गया। कामराज की इस योजना से कांग्रेस गुटबंदी में बटकर टूटने से बच गई और जनता से उसके संबंध प्रगाढ़ हो गए।

अखिल भारतीय कांग्रेस के अध्यक्ष

दक्षिण के पाँच नेता कांग्रेस में राष्ट्रीय स्तर पर बडी ताकत के रूप में उभर कर आए। इनका गुट 'सिडीकेट' नाम से पुकारा जाने लगा। ये पॉच नेता थे—आंध्र के नेता संजीव रेड्डी, मैसूर के मुख्यमंत्री निजलिगप्पा, बंगाल कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष अतुल्य घोष, एस. के. पाटिल और कामराज।

अक्टूबर 1963 में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक में ये नेता तिरुपति में एकत्रित हुए। इस बैठक मे दो मुद्दे केंद्रीय थे—कांग्रेस की अध्यक्षता और नेहरू जी के उत्तराधिकारी का चयन।

नेहरू जी ने दोनो समस्याओं का समाधान दे दिया। कांग्रेस अध्यक्षता श्री कामराज को दे दी गई और लालबहादुरशास्त्री नेहरू जी के उत्तराधिकारी चुने गए।

यद्यपि कांग्रेस अध्यक्षता के लिए अतुल्य घोष का नाम सामने आया था और नेहरू जी के उत्तराधिकारी के लिए मोरारजी देसाई का। परन्तु इन दोनो नामो पर सर्वसम्मति नहीं बन पाई। कामराज और लालबहादुर शास्त्री के नाम जब प्रस्तावित

किए गए तो किसी ने आपत्ति नहीं की।

कामराज की सगठन-क्षमता बेजोड़ थी। पिछले चालीस वर्ष के सेवाकाल मे वे अपनी इस क्षमता का हर स्तर पर परिचय दे चुके थे।

भुवनेश्वर कांग्रेस अधिवेशन में कामराज ने कांग्रेस की अध्यक्षता की और नेहरू जी तथा गाधी जी दोनों महान नेताओं के विचारो का आदर करते हुए कांग्रेस की मूल नीति की घोषणा की। यह नीति थी—'अहिसक साधनों से लोकतात्रिक समाजवाद' की स्थापना।

लालबहादुर शास्त्री को प्रधानमंत्री बनाया

17 मई, 1964 को भारत के प्रथम प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु के बाद देश में मौत का सन्नाटा छा गया। अपने विशाल व्यक्तित्व से समूचे देश को संरक्षण प्रदान करने वाले पं० नेहरू की मृत्यु के बाद देश मे एक भी नेता ऐसा नजर नहीं आ रहा था जो उनका स्थान ले सके। अनेक नाम उछाले गए—जगजीवन राम, गुलजारी लाल नंदा, लालबहादुर शास्त्री, मोरारजी देसाई और इन्दिरा गांधी।

कांग्रेस संसदीय दल के नेता का चुनाव विवाद का विषय बनने लगा। कामराज नहीं चाहते थे कि विरोधी पार्टियों को इस बात की भनक भी लगे कि नेतृत्व के प्रश्न पर काग्रेस मे अंदरूनी मतभेद है।

कामराज ने खाना-सोना त्याग दिया। रात-दिन दौड़-धूप कर उन्होंने मुख्यमंत्रियो, काग्रेस नेताओं तथा कार्यकर्त्ताओं से विचार-विमर्श किया और एक नाम पर सर्वसम्मति तैयार करने का आग्रह किया। यह नाम था—श्री लालबहादुर शास्त्री। श्री कामराज के अथक प्रयासो से शेष सभी नाम नेपथ्य में चले गए और श्री लालबहादुर शास्त्री सर्वसम्मति से ससदीय दल के नेता चुन लिए गए। उन्होने सभी कांग्रेसी व गैर कांग्रेसी नेताओं की उपस्थिति में प्रधानमत्री पद की शपथ ली और अंधेरा छँट गया। नेतृत्व के नाम पर काग्रेस एक बार फिर बँटने से बच गई।

इन्दिरा जी का चयन

1965 में भारत को पाकिस्तान से युद्ध में उलझना पडा और केवल 18 माह तक शासन करने के बाद प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री का जीवन दाव पर लग गया। भारतीय सेनाओ ने पाकिस्तान को रौंद डाला, तब सयुक्त राष्ट्र संघ की आड़ में अमेरिका ने भारत को युद्ध विराम के लिए विवश कर दिया और रूसी प्रधानमंत्री कोसीगन ने भारत के प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री को बातचीत के लिए मास्को बुलाया।

दोनों देशों के बीच समझौता हुआ और श्री लालबहादुर शास्त्री की मास्को में

ही हृदय आघात से मृत्यु हो गई

अठारह महीने बाद फिर नेतृत्व का सकट देश के सामने आ खड़ा हुआ। अबकी बार श्री मोरारजी देसाई प्रधानमन्त्री पद के प्रबल दावेदार के रूप में खुलकर सामने आ गए। परन्तु उन्हें ससदीय दल का नेता चुनने मे दो बाधाएँ थी—एक तो कांग्रेस मे उनके नाम पर सर्वसम्मति नहीं थी, दूसरे वे एक ऐसे व्यक्ति के रूप मे सामने आ रहे थे, जिसके दिल मे प्रधानमन्त्री बनने की इच्छा बड़ी तेज थी। कामराज एक दूरदर्शी नेता थे। उनका मानना था कि पद की लालसा रखने वाले व्यक्ति को देश के प्रधानमन्त्री का पद देने से इस पद की गरिमा ही समाप्त हो जाएगी और यह आदर्श टूटा तो देश मे गुटबदी और फूट के बीज पड़ जाएँगे। प्रधानमन्त्री केवल अपने दल तथा ससद का ही नहीं अपितु पूरे देश का नेता होता है। उसे परम उदार और त्यागी होना चाहिए। पद की लालसा तो इस मामले मे जहर की तरह है। इस पर टिप्पणी करते हुए उन्होने कहा—"भारत के प्रधानमंत्री का पद ऐसा है जो न तो ऐसे व्यक्ति को मिलना चाहिए जो उसे झपटकर लेना चाहता हो और न ही ऐसे व्यक्ति को, जो इसे प्राप्त करने के लिए दिन-रात स्वप्न देखा करता है। यह पद तो उस व्यक्ति को मिलना चाहिए जो इसकी अधिक कामना नहीं रखता।"

कामराज को मोरारजी देसाई का उतावलापन अच्छा नहीं लगा। उन्होंने ऐसे व्यक्ति की खोज शुरू कर दी, जिसके मन में पद को झपटने की लालसा न हो और जो इस पद की मर्यादा के अनुकूल हो।

उन्हें ऐसा व्यक्ति मिल गया। यह थीं श्री जवाहरलाल नेहरू की बेटी श्रीमती इन्दिरा गाधी। श्री कामराज ने इन्दिरा जी के नाम का प्रस्ताव किया। पार्टी का बहुत बड़ा भाग श्रीमती गांधी को निर्विरोध चुनना चाहता था, परन्तु मोरारजी भाई नहीं माने। कुछ पुराने नेता उनकी पीठ थपथपा रहे थे। वे प्रत्याशी के रूप में आगे आ गए। चुनाव हुआ और श्री देसाई को केवल 169 मत मिले और वे श्रीमती गाधी से चुनाव हार गए।

श्रीमती इन्दिरा गांधी भारत की प्रधानमंत्री बन गई। कामराज का यह चयन इतना महत्त्वपूर्ण था कि इसके लिए पूरा देश उनका ऋणी रहेगा। अत्यधिक जटिल परिस्थितियों में श्रीमती गांधी ने देश का लम्बे समय तक नेतृत्व किया।

धरती से उठकर आसमान तक पहुँचे

कामराज ने अपना राजनीतिक जीवन गांधी जी के आदर्शों से प्रभावित होकर एक साधारण कार्यकर्त्ता से शुरू किया था। अपने निरन्तर संघर्ष और परिश्रम से मूल्यों के प्रति सच्ची निष्ठा और विशुद्ध राष्ट्र भक्ति से वे लगातार ऊपर उठते

गए

पाँच दशक से अधिक वर्षो तक उन्होंने लगातार देश की सेवा की और अपने आपको दाव पर लगाकर पार्टी तथा देश को दिशा दी। उनका पूरा जीवन केवल देने के लिए था। उन्होंने न दल से कभी कुछ लिया, न देश से। जितना हो सका उन्होंने दिया।

वे इतने ऊँचे आदर्श इसीलिए बन पाए, क्योकि उनके मन में लोभ, लालच, पद, लिप्सा आदि के लिए कोई स्थान नहीं था। वे जान गए थे कि देश को ऐसे लोगो के सख्त जरूरत है जो अपने जीवन को एक ऐसे आदर्श के रूप में प्रस्तुत कर सके जो कोटि-कोटि दिशा भ्रमित और विद्रोही भारतवासियो को ठोस आधार दे सके और उनकी बिखरी हुए शक्तियों को समेटते हुए उन्हे राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया से सीधा जोड़ सके।

इस धारणा को उन्होंने आजीवन नहीं छोडा। दल के विघटन से लेकर राष्ट्र के विघटन तक को उन्होंने अपनी पीठ लगाकर रोका और अपने ऊपर चोटें सहीं।

यह सोचकर हृदय कॉप जाता है कि स्वाधीनता सग्राम के नाजुक दौर में और आजादी के बाद राष्ट्र-निर्माण की भीषण चुनौतियो का मुकाबला करते समय यदि कामराज जैसे महाकर्मठ, महात्यागी और महाधैर्यवान नेता इस देश में पैदा न हुए होते तो देश का क्या हाल हुआ होता।

आधुनिक भारत के निर्माता की श्रेणी मे के. कामराज नामक पुस्तिका मे श्री आर. पार्थसारथी ने लिखा है—"एक साधारण स्वयंसेवक ओर कार्यकर्त्ता से उठकर कामराज सर्वोच्च पद पर केवल परिस्थितियों के सहारे नहीं पहुँचे. वरन् इसके पीछे उनकी निष्कपट सेवा तथा बलिदान की भावना थी। उनकी विनम्रता, उनका सौजन्य, उनके निष्कपट विचार, उनका उज्जवल चरित्र, उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा, नि:स्वार्थता और राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना ही वे प्रमुख विशेषताएँ थीं, जिन्होंने उन्हें शिखर पर पहुँचाया और जनता के बीच लोकप्रिय बनाकर उसका सहज स्नेह दिलाया।"

जीवन की साँझ और महाप्रयाण

1975 तक रात-दिन देश और समाज की सेवा करते-करते पार्टी की विसंगतियों को संगति प्रदान करते-करते भारत के महान नेता के० कामराज थकान महसूस करने लगे थे।

अपनी लोकप्रियता और ख्याति के शिखर पर पहुँचने के बाद वे भीष्मपितामह की तरह आदरणीय हो गए थे। उनकी सलाह के बिना देश मे कोई बड़ा फैसला नहीं लिया जाता था। देश की प्रधानमत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी पिता की तरह

उनका आदर करती थीं और कोई भी कदम उठाने से पहले उनसे मशवरा अवश्य किया करती थीं।

जून 1975 में श्रीमती गांधी ने आपातकाल की घोषणा की। यद्यपि यह घोषणा श्री कामराज की भावनाओं का सीधा अपमान नहीं थी, फिर भी उनके मन को अन्दर ही अन्दर चोट पहुँची। वे नहीं चाहते थे कि कांग्रेस को देश पर अपनी पकड़ बनाने के लिए कोई अलोकतांत्रिक कदम उठाना पड़े। कांग्रेस-अध्यक्ष की हैसियत से वे अहिंसामूलक लोकतांत्रिक समाजवाद को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित कर चुके थे। उनके मन में कहीं कुछ ऐसा चुभा जो वे स्वय ठीक से नहीं समझ पा रहे थे। सब कुछ ठीक होते हुए भी बार-बार उन्हे लग रहा था कि कुछ भी ठीक नही है।

वे तमिलनाडु के विस्तृत दौरे पर निकल गए। अपनी इस यात्रा के दौरान वे लाखों लोगों से मिले। उन्होंने बहुत कुछ कहा और बहुत कुछ सुना। उनके अन्दर एक अविरल मंथन शुरू हो गया था।

वे सोच रहे थे—क्या दलितों और पिछड़ो की समस्याओ का सही समाधान हो गया है ? क्या लोकतांत्रिक समाजवाद का पथ प्रशस्त हो गया है ? क्या नेहरू और गांधी के मूल्य देश ने स्वीकार कर लिए है ? क्या देश के विकास की दिशा ठीक है ?

इन प्रश्नमूलक विचारों के उत्तर तलाशते-तलाशते वे बेहद थकान का अनुभव करने लगे। डाक्टरों की सलाह पर वे मद्रास मे ठहर गए। आराम और चिकित्सा की व्यवस्था ठीक कर दी गई। वे राहत महसूस करने लगे। 2 अक्टूबर, 1975 को जब नगर मे गांधी जयंती की धूम थी, उन्होंने सादा भोजन किया और फिर चुपचाप विश्राम करने चले गए। यह उनका अंतिम विश्राम था। उन्होंने शांतिपूर्वक अपना शरीर छोड़ दिया।

बाबू जगजीवन राम

(5 अप्रैल, 1908 से 6 जुलाई, 1986)

बाबू जगजीवन राम एक ऐसे राष्ट्रीय नेता थे जिन्होने महात्मा गांधी के नेतृत्व में अग्रेजी शासन तथा सवर्णो के दलितों पर अत्याचारो के विरुद्ध एक साथ संघर्ष किया।

वे भारतीय हिन्दू समाज की अंदरूनी बुराइयो के खिलाफ तो लड़े, परन्तु हिन्दू समाज की एकता और मजबूती के लिए सदा प्रयत्नशील रहे। दलितों को उकसाकर सवर्णो के विरुद्ध खुला सघर्ष छेड़ने और समाज में जातीय घृणा का जवाब जातीय वैमन्य से देने के वे विरुद्ध थे। वे अल्पसंख्यको के हितैषी थे और उनके हित के लिए सदा काम करते रहे। यही कारण है कि वे समूचे भारत के एकछत्र नेता के रूप में सदा याद किए जाते है।

बाबू जगजीवन राम का जन्म 5 अप्रैल 1908 को रविवार प्रातः चार बजे, बिहार राज्य के आरा जिले के चंदवा नामक गांव मे हुआ था।

उनके पिता का नाम श्री शोभी राम था। वे पढे-लिखे किसान थे। उनके पास लगभग 20 एकड जमीन थी, जिसमे हर तरह की फसले उगाई जाती थीं। श्री शोभी राम जी अपने आस-पास के क्षेत्र में दूर-दूर तक जाने जाते थे। लोग उनका सम्मान करते थे। उन्होंने शिवनारायण सम्प्रदाय के ग्रथो का गहन अध्ययन किया था और इस सम्प्रदाय के सच्चे अनुयायी वन गए थे। अहिंसा उनके जीवन का सदा आदर्श रही।

जगजीवन राम जी की माता का नाम श्रीमती बसंती देवी था। वे एक सीधी-सादी घरेलू महिला थी। धर्म में उन्हें गहरी रुचि थी। परिवार के सदस्यों को पूरा प्यार देने, उनकी अच्छी तरह देखभाल करने और बड़ो की सेवा करने में उन्हें बहुत आनंद आता था।

श्री शोभी राम जी की आठ संताने थीं—पॉच बेटियां और तीन बेटे। बाबू जगजीवन राम सबसे छोटे थे, सबसे बड़े थे श्री सन्त लाल।

महात्मा ने कहा : यह बालक गरीबों का उद्धार करेगा

जगजीवन राम जब केवल 8 माह के थे, उनकी माता उन्हें गोद में लेकर घर की चौपाल पर बैठ गई। कुछ और स्त्रियाँ भी उनके पास आ बैठी। आसमान साफ था। ठंडी सुहावनी हवा चल रही थी। बालक जगजीवन माँ की गोद मे किलकारी मार कर खेल रहा था।

उसी समय वहाँ एक भगवा वस्त्रधारी महात्मा आ पहुँचे। उनके एक हाथ में त्रिशूल था और दूसरे मे कमडल। गले मे अनेक प्रकार की मालाएं और सफेद लम्बी दाढ़ी।

बच्चे को खेलता देख वे ठिठक गए और बोले, "माई, तेरा यह बेटा मृदुभाषी और असाधारण गुणों को धारण करने वाला बनेगा। यह करोड़ों दुखियों को दुखों से मुक्ति दिलाएगा। इसके प्रयासो से देश मे खुशहाली आएगी। इस बालक के चेहरे पर चन्द्रमा की शीतलता और मस्तिष्क मे चद्रवृत्त स्थाई रूप से दिखाई पड़ रहा है। जिसका अर्थ यह है कि यह बड़ा होकर परमार्थ के कार्य करेगा और यश कमाएगा।"

माँ चुपचाप सुनती रहीं। उन्होंने कुछ नहीं कहा। महात्मा वहाँ से चला गया तो माँ ने बालक जगजीवन को छाती से चिपटा लिया और घर के अन्दर चली गई।

थोड़ी देर बाद आसमान में बादल घिर आए और बरसात होने लगी।

जगजीवन राम जी का परिवार शिव नारायणी सम्प्रदाय से इतना प्रभावित था कि घर में हर रस्म के समय भजन-कीर्तन कराया जाता था।

प्राथमिक शिक्षा : पिता का साया सिर से हट गया

1914 मे बसंत पंचमी के दिन बालक जगजीवन राम का दाखिला प० कपिल मुनि तिवारी की बैठक मे स्थित पाठशाला मे कराया गया। जगजीवन राम इस समय 6 वर्ष के थे। इस अवसर पर घर मे गीत गाए गए और भजन-कीर्तन का आयोजन किया गया।

तिवारी जी एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। वे बड़े उदार और सहयोगी थे। बच्चों को बहुत प्यार करते थे और मेहनत से पढ़ाते थे।

बालक जगजीवन राम ने पाठशाला में आते ही पं० कपिल मुनि तिवारी का मन मोह लिया। वे बहुत बातें करते थे तथा खूब प्रश्न पूछते थे। तिवारी जी को यह बात अच्छी लगती थी।

लेकिन बहुत बड़ा दुर्भाग्य यह हुआ कि जगजीवन राम जी के पिता अचानक बीमार पड़ गए। बहुत इलाज कराने पर भी ठीक न हो सके। वे प्यार से जगजीवन राम को 'बाबू' कहा करते थे। इसीलिए उनके नाम के आगे 'बाबू' शब्द जुड़ गया।

जून का महीना था। पिता ने 12 दिन से कुछ नहीं खाया था। वे बड़ी मुश्किल

से बोल पा रहे थे जगजीवन राम को उन्होंने अपने पास बुलाया और उनके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले बाबू, मैंने तुम्हारे बड़े भाई को तो अंग्रेजी पढ़ाइ परन्तु तुम्हारे लिए तो मै कुछ न सकता। अभी तो तुम बहुत छोटे हो, लगता है मेरे पास समय बहुत कम है। मै तुम्हे आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हे जीवन मे बहुत सफलता मिले। तुम बहुत बडे आदमी बनो...बहुत मेहनत से पढना और छोटे लोगों का साथ देना।" कहते-कहते पिता शिवनारायणी की स्तुति करने लगे और कुछ ही देर मे ब्रह्मलीन हो गए।

घर में हाहाकार मच गया। माँ का रोते-रोते बुरा हाल हो गया। सब बच्चे फूट-फूट कर रो रहे थे। मुहल्ला-पड़ोस के सब लोग इकट्ठे हो गए।

शोभी राम जी के प्रति सबके दिल मे प्यार था। सबने मिलकर उनका दाह संस्कार किया। छः वर्ष की आयु मे ही बालक जगजीवन के सिर से पिता का साया उठ गया।

जगजीवन राम उदास रहने लगे। उन्हे पिता की बहुत याद आती थी। जब वे घर जाते तो माँ को पिता की याद मे रोते पाते। उन्हे बहुत दुख होता था। वे स्वयं भी रोने लगते थे। उनकी समझ मे नही आता था कि क्या करें, माँ का दुख कैसे दूर करें ? भगवान इतना निठुर क्यों है, बच्चो से उनके पिता और पत्नी से उसके पति को क्यों छीन लेता है ?

प० कपिल मुनि तिवारी ने जगजीवन राम को गोद में बैठाकर बहुत सान्त्वना दी। जगजीवन राम चमार जाति के थे, वे दलित थे। और देश मे उस समय छुआछूत का बोलबाला था। परन्तु तिवारी जी ब्राह्मण होते हुए भी छुआछूत नहीं मानते थे। वे जगजीवन राम को बहुत प्यार करते थे।

पिता की मृत्यु के बाद एक बार इतनी तेज वर्षा हुई कि गंगा और सोन नदी दोनों में एक साथ बाढ़ आ गई। चंदवा गांव के बरसाती नाले में इतना पानी आ गया कि निचले क्षेत्र मे बने मकान ढह गए। जगजीवन राम का मकान भी निचले क्षेत्र में था। वह भी ढह गया। तब तिवारी जी ने जगजीवन राम और उनके पूरे परिवार को छ. माह तक अपने घर में रखा। उनका मकान बहुत ऊँचाई पर था। उन्होंने परिवार के साथ तनिक भी छुआछूत नही बरती।

मुझे पिटवाया कैसे; सिर फोड़ दूँगा

जगजीवन राम बहुत स्वाभिमानी थे। उन्हे गुस्सा भी बहुत आता था। माँ के लाडले थे। पिता का अभाव बालक को न अखरे इसलिए माँ बहुत प्यार करती थी। इससे वे कुछ जिद्दी हो गया था।

पाठशाला में वे तिवारी जी के इतने निकट थे कि जब भी किसी बच्चे को पीटना होता, तिवारी जी जगजीवन राम से ही छड़ी मँगवाया करते थे। जगजीवन

राम की कक्षा का एक लड़का सकल दीप इस बात से चिढ़ गया। उसने जगजीवन राम से बदला लेने की ठान ली। एक दिन उसने कपिल मुनि तिवारी से जगजीवन राम की झूठी शिकायत लगा दी। तिवारी जी ने जगजीवन राम की पिटाई कर दी।

अब तो जगजीवन का क्रोध कब्जे से बाहर हो गया। उन्होंने एक मोटा डंडा उठाया और बगीचे मे एक पेड पर चढ़कर बैठ गए।

माँ परेशान हो उठी। रात हो गई और जगजीवन राम नही मिले। तब कपिल मुनि तिवारी अनेक लोगो को साथ लेकर उन्हें ढूढ़ने निकले। बगीचे में लालटेन से देख रहे थे तो पेड पर बैठे जगजीवन राम दिख गए। जब उनसे तिवारी जी ने नीचे उतरने को कहा तो बोले, "मैं नहीं उतरूगा। मेरे हाथ मे मोटा डंडा है। सकल दीप ने आप से झूठी शिकायत लगाकर मुझे पिटवाया है। अब मैं कभी पाठशाला नही जाऊंगा। जो कोई मुझे पाठशाला भेजेगा, मैं उसका सिर फोड दूँगा।"

सात वर्षीय बालक जगजीवन राम की नाक पर इतना गुस्सा देख तिवारी जी हँस पडे। फिर उन्होने वादा किया कि अब कभी नहीं पीटेंगे। तब जगजीवन राम पेड़ से उतरे और सबके साथ घर लौटे।

छात्रवृत्ति लौटा दी

प्राथमिक शिक्षा गाव में ही प्राप्त करने के बाद जगजीवन आगे की शिक्षा के लिए आरा चले गए। आरा नगर के महाजनी स्कूल में उन्होने दाखिला ले लिया।

स्कूल में अच्छे अक लाने और अछूत बालक होने के कारण उन्हे जब छात्रवृत्ति मिली तो उन्होंने प्रधानाचार्य से कहा, "मुझे छात्रवृत्ति की आवश्यकता नहीं है। मै अछूत जरूर हू परन्तु गरीब नही हूँ। मेरे हिस्से की छात्रवृत्ति आप उच्च जाति के किसी गरीब बच्चे को दे दें और हो सके तो उसकी फीस भी माफ करे दें।"

अपमान का प्रतीक घड़ा तोड़ डाला

जगजीवन राम बचपन से ही स्वाभिमानी थे। वे जातीय घृणा और छुआछूत की प्रथा के कट्टर विरोधी थे। जब वे आरा हाई स्कूल मे पढ़ते थे तब वहाँ 'हिन्दू घड़ा' और 'मुसलमान घडा' नाम के दो अलग-अलग घड़े रखे जाते थे। हिन्दू और मुसलमान लड़के अपने-अपने घड़ों से पानी पिया करते थे।

एक दिन जगजीवन राम ने हिन्दू घड़े से पानी निकाला और पीने लगे। ऊँची जाति के एक लड़के ने उन्हें देख लिया और प्रधानाचार्य से शिकायत कर दी।

प्रधानाचार्य ने उन्हें अपने कार्यालय में बुलाया और पूछा, "तुमने हिन्दू घडे से पानी क्यों पिया ?"

जगजीवन राम जी तपाक से बोले, "क्योंकि मैं हिन्दू हूँ"

अछूत बच्चे के मुंह से इतना सीधा उत्तर सुनकर प्रधानाचार्य चुप रह गए। उन्होने जगजीवन राम को कक्षा में भेज दिया।

अगले दिन जब जगजीवन राम स्कूल में पहुँचे तो उन्होने देखा पानी पीने के लिए तीसरा घड़ा और रखा दिया गया है और उस पर लिखा है, 'अछूत घडा।'

जगजीवन राम को यह बहुत अपमानजनक लगा। इसका अर्थ तो यह हुआ कि अछूत अलग है और हिन्दू अलग। उस समय तो वे कक्षा मे चले गए।

जब कक्षा शुरू हो गई तो चुपचाप कक्षा से निकले और निशाना बनाकर एक ढेला 'अछूत घड़े' मे दे मारा। घडा टूट गया और पानी फैल गया।

प्रधानाचार्य को पता लगा कि किसी ने वह घड़ा तोड़ दिया है तो उन्होंने एक और अछूत घड़ा रखवा दिया। जगजीवन राम ने चुपके से उसे भी तोड दिया।

अगले दिन जब वे स्कूल पहुँचे तो उन्होने तीसरी बार वहाँ अछूत घड़ा रखा देखा।

अब तो उन्होंने बगावत करने की ठान ली। छात्रो और अध्यापको के देखते-देखते वे आगे बढ़े और "यह अमानवीय है" कहते हुए लात मार कर उन्होंने घड़ा तोड डाला।

अछूत बच्चे को इतने क्रोध से घड़ा तोडते जिन्होंने देखा, वे सकते में आ गए। तुरन्त प्रधानाचार्य से शिकायत कर दी गई।

प्रधानाचार्य बाहर निकल आए। यह देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि घडा तोडने के बाद जगजीवन राम अब भी तने हुए वहीं खडे थे। उन्होंने सजा के डर से भागने की कोशिश नहीं की थी।

प्रधानाचार्य धीरे-धीरे उनकी ओर बढ़े तो उन्हें लगा कि वे अब उन्हे पीटेंगे। जगजीवन राम पिटाई खाने के लिए तैयार हो गए। उन्होंने फैसला कर लिया था कि वे इस अमानवीय व्यवस्था का विरोध करेंगे चाहे इसके लिए कुछ भी सहना पड़े।

परन्तु प्रधानाचार्य ने जगजीवन राम के पास पहुँचकर कहा, "शाबाश बेटे... मै तुम्हारी हिम्मत की कद्र करता हूँ। अब से इस स्कूल में कोई अछूत घड़ा नहीं रखा जाएगा।" जगजीवन राम अपनी जीत पर गद्-गद् हो गए।

मालवीय जी की सिफारिश पर बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय गए

बाबू जगजीवन राम जब दसवीं कक्षा मे थे, प्रसिद्ध समाज सुधारक महामना मदन मोहन मालवीय जी आरा आए। उनके स्वागत में मंच पर जाकर जगजीवन राम ने अभिनन्दन पत्र पढा। मालवीय जी ने इस होनहार बालक की सराहना की और बोले, "मै तुमसे बहुत खुश हूँ, हाई स्कूल के बाद इटर में बनारस विश्वविद्यालय में दाखिला लेना। मै तुम्हें छात्रवृत्ति दिलाऊँगा।"

जगजीवन राम ने कहा, "मै छात्रवृत्ति नही लूँगा। परन्तु पढ़ने के लिए बनारस जरूर आऊँगा।" मालवीय जी को जब यह पता लगा कि जगजीवन राम दलित

समाज से हैं तो उन्होंने उन्हें एक बार फिर गले से लगाया और उनके साहस और निष्ठा की बड़ी प्रशंसा की।

1926 में आरा हाई स्कूल से प्रथम श्रेणी में मैट्रिक पास कर जगजीवन राम बनारस विश्वविद्यालय चले गए।

मैस मे छुआछूत का विरोध

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय मे जगजीवन राम होस्टल मे रहते थे। जब वे मैस में खाना खाने गए तो ऊँची जाति के छात्रों ने उन्हे साथ बिठाने का विरोध किया। मैस ने व्यवस्था दी, "क्योंकि तुम छोटी जाति के हो, अत: अपना खाना स्वय बनाओ और अपने बर्तन स्वय साफ करो।"

जगजीवन राम को बहुत बुरा लगा। उन्होने वार्डन से कहा, "मैं विद्यालय का छात्र हूँ। मै अपना भोजन अलग नहीं बनाऊँगा न अपने जूठे बर्तन साफ करूँगा। मै सबके साथ बैठकर भोजन करूँगा। यह मेरा अधिकार है।"

वार्डन विवश था। छुआछूत का बोलबाला था। बड़ी जाति के लडके छोटी जाति के लडके के साथ कैसे खा सकते थे ? बड़ी जाति का कर्मचारी एक दलित बच्चे के जूठे बर्तन कैसे साफ कर सकता था ?

मैस कर्मचारियो ने हड़ताल कर दी। अगले दिन खाना ही नही बना।

जगजीवन राम को होस्टल छोड़ना पड़ा। उन्होंने अस्सी घाट पर पेशगी किराया देकर एक कमरा ले लिया और वही रहने लगे। माँ भी उनके साथ आकर वही रहने लगीं।

एक दिन जगजीवन राम ने बाल कटवाने के लिए नाई को बुला लिया। नाई बाल काटने लगा। बाल काटते-काटते अचानक वह जगजीवन राम की जाति पूछ बैठा। जैसे ही उसे पता लगा कि वे चमार है तो उसने बाल काटना बीच मे ही बद कर दिया और बोला, "हम बड़ी जातिवालो के बाल काटते हैं, नीची जाति के लोगों के बाल काटेंगे तो बडी जाति वाले नाराज हो जाएंगे। इसलिए मैं तुम्हारे बाल नही काट सकता। यह तुम्हारी गलती है, तुम ने बाल कटवाने से पहले जाति क्यों नहीं बताई।"

इतना अपमान और उपेक्षा से भरा था हिन्दू समाज मे दलितों का जीवन। हर कोई नीची नजर से देखता और बेइज्जत करता था। अपने आपको मानव मूल्यो का धारण और उच्च आदर्शो का प्रतीक मानने वाला हिन्दू समाज इतना पतित हो गया था कि वह अपने ही एक अग को अपने से अलग मानकर उसका अपमान करता था।

जगजीवन राम को विद्यार्थी जीवन में पग-पग पर यह पीड़ा सहनी पडी।

1928 में बनारस विश्वविद्यालय से विज्ञान में इंटर की परीक्षा पास कर वे

कलकत्ता आ गए कलकत्ता मे उनके बडे भाई सत लाल जी सरकारी नौकरी मे थे

उन्होने कलकत्ता के विद्यासागर कालेज में बी. एस. सी. में दाखिला ले लिया। बी. एस. सी. करते समय उनके मन मे संकल्प जागा कि समाज मे फैली कुरीतियो से योजनाबद्ध ढग से लड़ना होगा। जाति प्रथा और छुआछूत हिन्दू धर्म का अभिशाप है। इसे दूर करना होगा।

उन्होने वेद, उपनिषद आदि धर्मग्रंथो का अध्ययन करना शुरू कर दिया। वे जानना चाहते थे कि जातियाँ किस प्रकार बनी और छुआछूत कैसे पैदा हुई।

जनवरी 1929 मे उन्होने कलकत्ता के विलिगडन स्क्वेयर में मजदूरो व दलितो की एक सभा का आयोजन किया। इसमें बिहार, बगाल तथा उ. प्र. के दलितों ने बडी संख्या में भाग लिया।

सभा का आयोजन बहुत सफल रहा। उन्होंने अपने पहले समाज सुधार भाषण में साबित कर दिया कि छुआछूत हिन्दू धर्म पर एक कलंक है। इसे मिटाना सभी पढे-लिखे हिन्दुओं की जिम्मेदारी है। बाबू जगजीवन राम के विचार समाचार पत्रो में छपे। विश्वविद्यालय के कुलपति ने जगजीवन राम की सराहना की। अगस्त 1929 में उन्होंने अखिल भारतीय रविदास सभा की स्थापना की। इसके प्रमुख उद्देश्य थे—दलितों का संगठन करना, दलितो को शिक्षा दिलाना, नशाबंदी का प्रचार करना आदि।

उनके इस प्रयास से दलित सगठित होने लगे। बाबूजी अछूतों के लिए दलित शब्द का प्रयोग करते थे।

31 दिसम्बर 1929 को लाहौर में रावी नदी के तट पर कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन की अध्यक्षता युवा नेता पं० जवाहर लाल नेहरू ने की। 31 दिसम्बर को आधी रात के समय कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया। नव वर्ष के पहले ही दिन 1 जनवरी 1930 को भारत की स्वतंत्रता का ध्वज फहरा दिया गया।

बाबू जगजीवन राम उस समय कलकत्ता में पढ रहे थे और दलित-आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार कर रहे थे। इसी वर्ष वे कांग्रेस में शामिल हो गए। महात्मा गांधी असहयोग आंदोलन के साथ-साथ छुआ-छूत के विरुद्ध अभियान चला रहे थे। वे दलित बस्तियों में ठहरते थे। दलितों के यहाँ खाना खाते थे। पानी पीते थे और उन्हें छुआ-छूत मिटाने के लिए तथा आजादी की लड़ाई लड़ने के लिए एक जुट होने को कहते थे।

महात्मा गाधी के प्रयासों का जगजीवन राम पर बहुत प्रभाव पड़ा। उनके मन मे बापू के प्रति श्रद्धा उमड़ पड़ी। गांधी जी ने सवर्ण होते हुए भी अछूतोद्धार के कार्य मे अपनी पूरी ऊर्जा झोंक दी थी।

उन्ही दिनो भीमराव अम्बेडकर अछूतो और दलितो के लिए पृथक निर्वाचन प्रणाली की बात उठा चुके थे अम्बेडकर एक प्रभावशाली नेता थे दलित समाज उन्हे अपना मसीहा मानने लगा था। उन्हें छुआछूत प्रथा के कारण हिन्दू धर्म से ही घृणा होने लगी थी। अत उन्होने अछूतों को सवर्ण हिन्दुओ से अलग करने के प्रयास भी शुरू कर दिए थे।

गांधी जी जानते थे कि अम्बेडकर की यह नीति देश की अखडता के लिए चुनौती बन सकती है। सवर्ण हिन्दुओं के पीढियो पुराने अत्याचारो से दलित तग आ चुके थे, अग्रेज भारतीय समाज को बाटने का एक और बहाना तलाश रहे थे। अतः गांधी जी ने अम्बेडकर की नीतियों का विरोध करना शुरू कर दिया।

1931 मे बी. एस सी. की डिग्री लेकर बाबू जगजीवन राम अपने गांव चंदवा आ गए। इस समय तक उनके बड़े भाई श्री सतलाल भी सेवा-निवृत्त होकर चंदवा पहुँच चुके थे। माँ ने बेटे की सफलता पर पूरे गाव में मिठाइयां बॉटीं। गाव के लोगों ने बाबू जगजीवन राम को उच्च शिक्षा पाने के लिए बधाई दी।

जगजीवन राम की माँ वसंती देवी चाहती थी कि उनका बेटा सरकारी नौकरी मे कोई ऊँचा पद प्राप्त करे और ऊँची कुर्सी पर बैठे। परन्तु जगजीवन राम के मन में दो संघर्षो के बीज एक साथ पड चुके थे—दलित जाति के उद्धार के लिए संघर्ष तथा स्वाधीनता प्राप्ति के लिए ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ संघर्ष। वे काग्रेस मे शामिल हो चुके थे और गांधी जी के साथ मिलकर दोनों सघर्षो के नाम अपना पूरा जीवन लिख देने का निश्चय कर चुके थे। माँ के दिल को चोट न पहुँचे, माँ की आशाएं एक साथ टूटने से माँ बीमार न पड जाए, इस डर से वे चुप थे।

उन्हीं दिनों पटना मे अंजुमन इस्लामिया सभागार मे एक विशाल छुआछूत विरोधी सभा का आयोजन हुआ। इसमे डॉ० राजेन्द्र प्रसाद को मुख्य अतिथि के रूप मे आमंत्रित किया गया था। जगजीवन राम जी वक्ता के रूप में आमंत्रित थे।

इस सभा मे जगजीवन राम जी ने कहा, "महात्मा गांधी के दिशा निर्देश और उनके नेतृत्व की छाया मे ब्रिटिश शासन को उखाड़ फेंकना हमारे जीवन का लक्ष्य है। पूर्ण स्वाधीनता के लिए लडाई छिड़ चुकी है। आंदोलन के नेता महात्मा गाधी को गिरफ्तार कर सरकार ने यर्वदा जेल मे डाल दिया है। ऐसे में मोहम्मद अली जिन्ना मुसलमानों को अलग देश बनाने के लिए उकसा रहे हैं। डॉ० बी. आर. अम्बेडकर ने अछूतो के लिए पृथक निर्वाचन मंडल की मांग की है। ईसाई धर्म के पोप और प्रचारक अछूतों को अनेक तरह के प्रलोभन देकर उन्हें ईसाई बनाने मे लगे हैं। बौद्ध धर्म के प्रचारक अछूतो को बौद्ध बनाकर हिन्दू धर्म को कमजोर करना चाहते है। मै धर्म के इन ठेकेदारो को साफ-साफ बता देना चाहता हूँ कि अछूत हिन्दू हैं और हिन्दू ही रहेंगे। हम हिन्दू पैदा हुए हैं और हिन्दू धर्म का पालन करते हुए ही मरेगे। राष्ट्र की रचना हम से हुई है। हमारी रचना राष्ट्र

से नहीं हुई। राष्ट्र हम से बडा है। राष्ट्र के महान नेता महात्मा गांधी ने यह प्रतिज्ञा की है कि छुआछूत को समाप्त करेंगे। मै आज सब लोगों के समक्ष यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि गाधी जी के छुआछूत समाप्त करने के प्रस्ताव को पूरे देश मे लागू करने के लिए यदि मुझे अपने जीवन की बलि देनी पड़े तो भी मैं पीछे नही रहूँगा। मै कल से ही मध्य और दक्षिण भारत के दौरे पर निकल रहा हूँ। हमे धर्म परिवर्तन और छुआछूत दोनो के खिलाफ लडना है। आइये, हम प्रण लें कि इस देश को आजादी दिलाने के साथ-साथ इसे अखंडित बनाए रखने के लिए अपना सर्वस्व दाव पर लगा देंगे।''

बाबू जगजीवन राम जब माइक से पीछे हटे तो तालियों की गडगडाहट के साथ विशाल जन-समूह ने उनका स्वागत किया।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने जगजीवन राम को गले से लगा लिया। उस दिन सब समझ गए कि युवा नेता जगजीवन राम के अन्दर देश का एक महान नेता छिपा है।

माँ मुझे आशीर्वाद दे, भारत माता की सेवा करूँ

फिर एक दिन जगजीवन राम पूरी हिम्मत जुटाकर अपनी मॉ के पास पहुँचे और उनके चरण छूने के बाद बोले—''मॉ मुझे आशीर्वाद दे.. मै करोड़ो अछूतों को उनके अधिकार दिलाने के लिए, गरीबो और मजदूरों की लड़ाई लडने के लिए तथा देश को आजाद कराने के लिए अपना जीवन समर्पित करना चाहता हूँ।''

माँ ने चौंककर बेटे के चेहरे पर देखा। उनकी आँखे नम थीं, पर मस्तक गर्व से उन्नत था।

उन्होने पुत्र को छाती से लगाया और फिर सफलता का आशीर्वाद दिया।

स्वाधीनता संग्राम और दलितों के लिए एक साथ संघर्ष

मॉ की अनुमति प्राप्त कर जगजीवन राम अपने जीवन के एक- मात्र मिशन से सीधे जुड़ गए। वह था—स्वाधीनता के लिए तथा दलितों के अधिकारो के लिए एक साथ सघर्ष।

उन्होने पूरे देश मे घूम-घूमकर सभाएँ की। ब्राह्मणों तथा अन्य सवर्ण जाति के लोगों से निवेदन किया कि वे अपने भाईयो का तिरस्कार करना छोड़ दें और उन्हे छोटे भाई की तरह प्यार दें। अंग्रेजी राज को समाप्त करने के लिए आंदोलन तेज हो चुका है। अग्रेज चाहते हैं कि देश के लोगों को आपसी समस्याओं में उलझा कर उन्हें कमजोर बनाए रखे और हिन्दुस्तान न छोडें। ऐसे मे हम आपसी मतभेद भुलाकर कधे से कंधा मिलकर एक जुट होकर खड़े हो जाएँ और अग्रेजी शासन को भारत से उखाड फैके।

दूसरी ओर उन्होंने अछूतों और दलितो को समझाया कि वे हिन्दू धर्म छोडने

या अलग निर्वाचन आदि माँगों के झाँसे में न आएँ। इस सबसे देश कमजोर होगा। दलितों को उनके अधिकार मिलेंगे। स्वतंत्र भारत में कोई अछूत नहीं होगा। सब भाई-भाई की तरह रहेंगे और उन्नति करेंगे।

उनकी वाणी में जोश था, इरादों में दृढ़ता थी। वे जब बोलते थे तो लोगों की भीड़ उन्हें सुनने के लिए उमड़ पड़ती थी।

1935 में उनकी पत्नी का देहान्त हो गया। इसी वर्ष उन्होंने कानपुर के समाजसेवी डॉ० बीरबल की पुत्री इन्द्राणी देवी से दूसरा विवाह कर लिया।

31 दिसम्बर, 1935 में जगजीवन राम ने हिन्दु महासभा की 17वीं बैठक में लखनऊ में भाग लिया। इसकी अध्यक्षता मदनमोहन मालवीय जी ने की थी। इस सभा में भाषण करते हुए मालवीय जी भावुक हो गए। उन्होंने हरिजनों से कहा—"हरिजन हिन्दू धर्म न छोड़ें, मैं उनके चरणों की धूल अपने माथे पर लगाऊँगा।"

बाबू जगजीवन राम ने दलितों को विश्वास दिलाया कि जातिवाद और छुआछूत कुछ दिन के मेहमान हैं, इन्हें इस देश की धरती से शीघ्र विदा कर दिया जाएगा।

बाबू जगजीवन राम अखिल भारतीय दलित वर्ग लीग के अध्यक्ष चुन लिए गए थे। उनका उद्देश्य था एक दलित नेता की हैसियत से दलितों को उनके हक दिलवाना। सार्वजनिक स्थानों, मन्दिरों, भोजनालयों, धर्मशालाओं में उन्हें प्रवेश दिलाना। कुएँ से पानी भरने और पाठशालाओं में पढ़ने की खुली छूट दिलवाना। दलित वर्ग लीग की ओर से अगस्त 1936 में बाबू जगजीवन राम ने लखनऊ में एक बहुत बड़ी सभा का आयोजन किया। इस सभा का उद्‌घाटन महात्मा गांधी ने किया। बाबू जगजीवन राम ने इसकी अध्यक्षता की। इस अवसर पर बोलते हुए महात्मा गाधी ने कहा—"अंग्रेजों की साजिश है कि वे भारत के लोगों को धर्म, जाति और भाषा के नाम पर बाँट दें। वे हरिजनों को इससे अलग करना चाहते हैं, मुसलमानों को भी अलग होने के लिए उकसा रहे हैं। उनकी बाँटो और राज करो की नीति से सावधान रहना है। स्वाधीनता की लड़ाई सभी भारतवासियों की लड़ाई है।"

बाबू जगजीवन राम ने महात्मा गांधी को विश्वास दिलाया कि आजादी की लड़ाई में पूरा दलित समाज उनके साथ है।

1937 में जगजीवन राम ने खेतिहर मजदूर सभा का गठन किया। खेतों पर मजदूरी करने वाले मजदूरों को शोषण से बचाने तथा उनके हितों की रक्षा करने का दायित्व इस संगठन ने संभाला।

17 जुलाई, 1938 को बाबूजी की पत्नी इन्द्राणी देवी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम रखा गया—सुरेश कुमार। उस समय बाबूजी हरिजन सेवक संघ

के बिहार प्रांत के सचिव थे और वहाँ से केवल 75 रु. मासिक वेतन लेते थे।

10 दिसम्बर, 1940 को बाबू जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रही के रूप में आरा शहर मे बड़ी जनसभा में भाषण दिया। भाषण पूरी तरह ब्रिटिश सरकार के खिलाफ था। उन्हें गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया।

10 अक्टूबर, 1941 को वे सैन्ट्रल जेल हजारीबाग से रिहा हुए और देश व समाज के काम मे जुट गए।

इस समय द्वितीय विश्व युद्ध पूरे जोरों पर था। अंग्रेज आजादी के नाम पर भारतीय नेताओं को गुमराह कर रहे थे। महात्मा गांधी को कई बार आजादी देने का विश्वास दिलाया और कई बार उसे तोड़ दिया। इससे कांग्रेस मे गुस्सा भड़क उठा।

भारत छोड़ो आंदोलन में गिरफ्तारी

7 अगस्त, 1942 को कांग्रेस महासमिति की मुम्बई मे बैठक हुई। देश भर के सभी प्रतिनिधि इसमें शामिल हुए। इस अवसर पर भारत छोड़ो आंदोलन प्रस्ताव तैयार किया गया।

8 अगस्त, 1942 को कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पारित कर दिया। गांधी जी ने कहा 'अंग्रेजो भारत छोडो।'

सरकार का दमन-चक्र शुरू हो गया। 9 अगस्त को महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, मौलाना अबुल कलाम आजाद, सरदार वल्लभभाई पटेल, आसफ अली आदि नेता गिरफ्तार कर लिए गए।

बाबू जगजीवन राम को बिहार प्रांत में जन-जागरण का दायित्व सौंपा गया था। वे मुम्बई से चलकर बिहार आ गए और उन्होने बड़ी तेज गति से बिहार में सभाएँ करके जन-जागरण अभियान चालू कर दिया। हर दिन जत्थे के जत्थे 'भारत छोड़ो आंदोलन' में गिरफ्तारी देने के लिए आगे आने लगे।

19 अगस्त, 1942 को बाबू जगजीवन राम जन-जागरण करते हुए गिरफ्तार कर लिए गए।

बाबूजी 15 महीने तक जेल में रहे। अस्वस्थ होने के कारण 5 अक्टूबर, 1943 को सरकार ने उन्हे रिहा कर दिया।

31 मार्च, 1945 को उनकी पत्नी इन्द्राणी देवी ने अपनी दूसरी संतान मीरा को जन्म दिया।

इधर लार्ड वैवेल भारत के वायसराय बने और ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एटली तथा भारत के नए वायसराय लार्ड वैवेल ने मिलकर प्रांतीय चुनावों की घोषणा की। चुनाव हुए। अखिल भारतीय दलित वर्ग संघ ने कांग्रेस की ओर से 151 सीटों पर चुनाव लड़ा और अनुसूचित जातियों के प्रत्याशियों ने 123 सीटें जीतीं। बाबू

जगजीवन राम निर्विरोध चुने गए। बाबू जगजीवन राम की दलित समाज पर पूरी तरह पकड़ होने का प्रमाण मिल गया।

देश को एक और विभाजन से बचाया

बाबू जगजीवन राम ने देश के लिए जितने महत्त्वपूर्ण कार्य किए, उन्हे गिना नहीं जा सकता, परन्तु 1942 और 1947 के बीच अंग्रेजों ने दलितों और पिछडो के नाम पर एक और विभाजन की जो कोशिश की थी, उसे नाकामयाब करने का एकमात्र श्रेय बाबू जगजीवन राम को है।

डॉ० भीमराव अम्बेडकर पिछड़ों और अछूतों पर सवर्णों के जुल्मों से इतने आहत हो चुके थे कि उन्होने उनके लिए अलग देश बनाने की बात उठा दी थी। मुस्लिम लीग मुसलमानों के लिए पाकिस्तान की माँग रखकर अंग्रेजों के हाथों मे देश के विभाजन का हथियार थमा चुकी थी। ऐसे में पिछडी जातियों के सामूहिक प्रयास से और नेतृत्व की मदद तथा अंग्रेजो की विभाजन-लालसा के कारण निश्चय ही एक और विभाजन हो गया होता।

बाबू जगजीवन राम ने इस विभाजन को रोकने का दायित्व अपने कंधो पर लिया और पूरा जोर लगाकर उसे रोक लिया। 1930 में कांग्रेस में आने के बाद से ही उन्होंने दलितों और पिछड़ों का रुझान अपनी ओर कर लिया था। वे देश की आजादी के साथ-साथ दलितों के अधिकारों की लड़ाई भी लड़ रहे थे। उनकी उपेक्षा करके ब्रिटिश हुकूमत कोई फैसला नहीं ले सकती थी।

भारत को आजादी देने का सिलसिला जब शुरू हो गया तो देश की अंदरूनी स्थितियो को सुलझाने की दृष्टि से इंग्लैण्ड से केबिनेट मिशन भारत आया। दलितो व पिछेड़ों के अनेक नेताओ की ओर से इंग्लैण्ड पर दबाव था कि उनके लिए अलग अधिकार दिए जाएँ।

8 अप्रैल, 1946 को बाबू जगजीवन राम जी ने स्पष्ट कहा—"हमें पृथक राष्ट्र की माँग अमान्य है। परन्तु हम इतना अवश्य चाहते हैं कि हरिजनो व दलितों के साथ न्याय किया जाना चाहिए। हरिजन हिन्दू हैं और वे हिन्दू ही रहेगे। हिन्दुस्तान का कोई दलित पृथक राष्ट्र नहीं चाहता, जो ऐसा कहते हैं वे निहित स्वार्थों की राजनीति कर रहे है। हिन्दुस्तान उन्हें माफ नहीं करेगा।"

अंतरिम सरकार में श्रम मंत्री

2 सितम्बर, 1946 को भारत में अंतरिम मंत्रिमण्डल का गठन हुआ। बाबू जगजीवन राम पिछड़ों और मजदूरों के हितों की लड़ाई लड़ते-लड़ते अब तक इतने लोकप्रिय हो चुके थे कि प्रधानमत्री प० जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें श्रम मंत्री बनाया। उन दिनों मजदूर वर्ग की समस्याएँ बड़ी विषम थी। अंग्रेजों और उच्चवर्गीय भारतीयों ने मजदूर वर्ग का भारी शोषण किया था। उनकी आर्थिक दशा खराब

थी शिक्षा की व्यवस्था ठीक नहीं थी। जीवन-स्तर निम्न था। ऐसे में उनके दर्द को समझने और उनकी समस्याओं को हल करने के लिए जिस सूझ-बूझ और समर्पण भाव से काम करने की आवश्यकता थी, वह सब बाबू जगजीवन राम जी में मौजूद था।

पूरे देश मे केवल बारह चुनींदा व्यक्तियों को इस मंत्रिमंडल मे शामिल किया गया था। दलितो के नेता बाबू जगजीवन राम का इस सरकार में शामिल होना दलितो के लिए गौरव की बात थी। भारत के सारे दलितो ने वायसराय के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा—"यह दलितों की प्रगति और दासता की समाप्ति के लिए गहन चिंतन पर आधारित साहसिक व क्रांतिकारी कदम है। हम वायसराय लार्ड वैवेल को इसके लिए धन्यवाद देते हैं।"

अंतरिम सरकार के गठन के साथ ही भारतीय संविधान के निर्माण के लिए एक संविधान सभा का गठन किया गया। बाबू जगजीवन राम को इस सभा की अनेक समितियों के संचालन का दायित्व सौंपा गया।

बाबू जगजीवन राम ने केन्द्रीय संसद तथा प्रांतीय विधायिकाओं में जनसंख्या के अनुपात में दलितों के प्रतिनिधित्व के लिए आरक्षण के सुझाव रखे। गांधी जी ने इन सुझावों को स्वीकार किया और आश्वासन दिया कि आजादी के बाद भारतीय संविधान मे इन्हें शामिल किया जाएगा।

आजादी का जश्न : आर्थिक आजादी का संकल्प

15 अगस्त, 1947 को भारत आजाद हुआ। एक दिन पहले पाकिस्तान बन चुका था। देश के विभाजन का दुख इतना गहरा था कि पूरी एक सदी लम्बे स्वाधीनता संग्राम के बाद मिली आजादी की खुशी अपनी मिठास खो चुकी थी।

विभाजन के कारण भड़की हिंसा के बीच आजादी का जश्न मनाया गया। लम्बे समय से जेलो की यात्रा करते-करते मुसीबतें और कष्ट सहते-सहते थक चुके भारतीय नेता गले मिले। एक-दूसरे को उन्होंने बधाइयाँ दीं और आजाद देश में नव निर्माण के संकल्प लिए। बाबू जगजीवन ने अपने जीवन मे दो लडाईयाँ एक साथ लड़ने का संकल्प लिया था। भारत की आजादी और दलितों का उद्धार।

एक संकल्प तो पूरा हुआ। दूसरे की नींव रखी जा चुकी थी, अभी उसको आकार देना बाकी था। इस दिन जगजीवन राम जी ने दूसरा संकल्प दोहराते हुए कहा—"अब देश आजाद है। हमारा एक सदी पुराना स्वप्न पूरा हुआ। इस अवसर पर मै उन समस्त देश-प्रेमियों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ, जिन्होंने इस लम्बी लड़ाई मे जेलों में यातनाएँ झेलीं और प्राणों की बलि दी। उनमें से अनेक आज हमारे बीच नहीं हैं, परन्तु यह आजादी उन्हीं के संघर्षों का प्रतिफल है।"

अब हमारे सामने एक दूसरी लड़ाई बाकी है; वह है आर्थिक आजादी की

लड़ाई। राजनीतिक आजादी तो मिल गई, अभी आर्थिक आजादी प्राप्त करना बाकी है। इस आजादी मे भारत के मेहनतकश वर्गो, दलित व पिछड़े वर्गो का हित शामिल है। समूचे देश की प्रगति का भविष्य इससे जुड़ा है।"

मजदूरों के मसीहा

बाबू जगजीवन राम के तीन रूप हमे स्पष्ट देखने को मिलते है। उनका एक रूप था स्वाधीनता सेनानी का, दूसरा दलितो के हितों के लिए निरंतर संघर्ष करने वाले नेता का, तीसरा एक कुशल और सक्षम प्रशासक था।

उनका तीसरा रूप तब सामने आया जब वे स्वाधीन भारत की सरकार में मत्री बने। प० जवाहरलाल नेहरू के सबसे पहले मंत्रिमंडल में बाबू जी को श्रम मंत्रालय का दायित्व दिया गया। अंतरिम सरकार में भी वे श्रम मंत्री रह चुके थे। उन्हे श्रमिको की समस्याओ की समझ थी तथा उनके हितो का ध्यान था। बाबू जी ने श्रमिको और नियोक्ताओ के मध्य संतुलन बनाए रखने की नीति अपनाई और दोनों के बीच सतुलन स्थापित करने के सफल प्रयास किए। श्रमिकों के जीवन-स्तर को सुधारने, उनके लिए शिक्षा एव स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओ की व्यवस्था करने तथा उत्पादन की गुणवत्ता में निरतर वृद्धि करने के लिए वे सदैव प्रयत्नशील रहे।

उनकी श्रम-नीति की सबसे बडी विशेषता यह थी कि वे मजदूरों का हित सबसे पहले देखते थे और मालिकों का हित उसके बाद। उनका विचार था कि भूखे पेट, फटेहाल और बीमार मजदूर न काम के साथ न्याय कर सकता है, न मालिक के साथ। पहले उसे तन व मन से स्वस्थ होना चाहिए, तभी वह अपना श्रम-कौशल दिखा पाएगा। शोषण और बेगार जैसी सामंती नीतियॉ मानवता विरोधी हैं। इनसे श्रम-शक्ति का भी ह्रास होता है, श्रम सस्कृति को गहरा आघात लगता है।

अपनी इसी नीति के तहत उन्होने गॉव से लेकर महानगर तक के मजदूरो के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की तथा कारखानो, और बड़े संस्थानो के मुनाफे में उनकी भागीदारी को भी प्रोत्साहन दिया। शोषण से मुक्ति के लिए श्रमिक संगठनो के गठन पर बल दिया। ट्रेड यूनियन एक्ट को सशोधित किया। उन्होने स्पष्ट कहा—"हम उन श्रमिकों की अनदेखी नहीं कर सकते जो इस स्थिति में नहीं हैं कि वे अपनी मॉगों और परेशानियों को मालिकों, जनता और सरकार के समक्ष रख सकें। ऐसे श्रमिकों के लिए यह सारभूत और आवश्यक है कि सरकार उनकी सहायता करने के लिए आगे आए और उनकी दशा सुधारने, जिसका सम्बन्ध उनकी मजदूरी में वृद्धि और कार्य करने की दशाओ को सुधारने से है, के लिए कार्य करे।"

डाक व्यवस्था में क्रांति

मइ 1952 में बाबूजी ने सचार मंत्रालय का कार्यकार सभाला और 1956 तक संचार मंत्री के रूप मे कीर्तिमान स्थापित किया।

13 अप्रैल, 1962 को एक बार फिर उन्हें संचार मत्रालय मिला, साथ मे परिवहन भी। डाक-तार विभाग की सेवाएँ किसी देश की सभ्यता व संस्कृति की पहचान होती है। जब देश स्वतत्र हुआ, तब केवल 23,000 डाकघर थे। गाँवों मे तो डाकघर प्राय. थे ही नहीं।

बाबू जगजीवन राम ने इस विभाग के विस्तार की नीति बनाई। उन्होंने घोषणा की कि 2000 की आबादी वाले हर गाँव में डाकघर की व्यवस्था होगी। 31 मार्च, 1953 से लेकर 31 मार्च, 1956 तक दो वर्ष की अवधि मे 5,000 नए डाकघर खोले गए।

1962 में जब बाबूजी ने फिर इस मंत्रालय का दायित्व सभाला, उस समय डाकघर कुल मिलाकर 76,839 थे। इनमे से 7,336 शहरो मे थे और 69,513 गाँवों मे। बाबू जगजीवन राम जी की दूर-दृष्टि और कार्य-कुशलता से इतनी कम अवधि में इतनी डाक सेवाओ का इतना विस्तार हो सका। इसके अतिरिक्त उन्होंने पोस्ट ऑफिस सेविंग्स बैंक की नींव रखी। जिससे गाँव के कम आय वर्ग के लोगो, खासकर स्त्रियो को बचत करने का एक आधार मिल गया। सरकार को इससे जो धन प्राप्त हुआ, उससे विभाग के विकास मे बड़ा सहयोग मिला।

31 मार्च, 1956 तक वायरलैस सेवा का पहला चरण पूरा हो गया था और देश 22 देशों के साथ जुड़ गया था। दूरभाष प्रणाली आरभ कर दी गई। 1955 तक देश मे 759 दूरभाष केन्द्र स्थापित कर दिए गए।

परिवहन विभाग में भी उन्होंने तेजी से विकास कार्य किए। हवाई सेवाओ का विकास, वेधशालाओ और राडारो की स्थापना, जहाजरानी सेवा का विस्तार तथा संबंधित कर्मचारियो की सुविधाओ की व्यवस्था करने मे बाबू जी ने अपनी कुशल प्रशासन एवं प्रबंधन नीति का परिचय दिया।

रेल मंत्री के रूप में स्वर्णिम कीर्तिमान

7 दिसम्बर, 1956 को बाबू जगजीवन राम ने रेल मंत्रालय का दायित्व संभाला। उन्होने चरणबद्ध तरीके से रेल सेवाओ के विस्तार एवं विकास के कार्यक्रम लागू किए। रेलगाडियो मे सुविधाएँ बढ़ाने, अच्छी सीटों, पंखों, शौचालयों आदि की व्यवस्था करने को उन्होंने प्राथमिकता दी। नई रेलवे लाइनें बिछाने, मालगाडियों की क्षमता बढाने तथा रेलवे मार्गो के विद्युतीकरण पर उन्होने विशेष ध्यान दिया। उनके कार्यकाल 1956 से 1962 तक 653 39 किलोमीटर नवनिर्मित छोटी लाइनो पर रेलगाड़ियाँ शुरू की गई। 1609.34 किलोमीटर लम्बी बड़ी लाइनें

तथा 402.34 किलोमीटर लम्बी छोटी लाइनें बिछाने का काम आरम्भ किया गया।

उनके कार्यकाल में 25,000 लोकोमोटिव तथा 75,000 रेल के डिब्बो और 99,000 मालगाड़ी के डिब्बों को देश के रेल यातायात में शामिल किया गया।

इसी अवधि में जगजीवन राम जी ने अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियो तथा अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियो के लोगो को रेलवे विभाग में से बडी सख्या में रोजगार प्रदान किए। पानी पिलाने के काम पर वाल्मीकि जाति के युवको को लगाकर उन्होने उन्हे सामाजिक व आर्थिक न्याय दिलाया। अछूतों के हाथो से पानी पीने मे कुछ दिन लोगों ने ऐतराज किया, बाद मे धीरे-धीरे यह स्वीकार कर लिया गया। जगजीवन राम जी का यह कदम अत्यधिक क्रातिकारी था। इस कदम से अछूत तथा दलित समाज को शेष समाज से जुड़ने और राष्ट्र की मुख्यधारा मे खड़े होने का अवसर मिला।

कृषि एवं सहकारिता क्रांति

13 मार्च, 1967 को बाबूजी खाद्य, कृषि, सामुदायिक विकास एवं सहकारिता मंत्री बने। इस समय श्रीमती इन्दिरा गाधी भारत की प्रधानमत्री थीं। अग्रेजी शासन काल में और आजादी के बाद के वर्षो मे भी अब तक देश खाद्यान्न की कमी महसूस करता रहा था। यह एक सुखद संयोग था कि सूखा पीड़ित देश मे बाबूजी के मंत्रालय सभालते ही मौसम संभल गया। जिस दिन उन्होने शपथ ग्रहण की उसी दिन बादल घुमडे और बरसात हुई।

11 अप्रैल, 1967 को उन्होने खाद्यान्न उत्पादन एवं संरक्षण को केन्द्र में रखते हुए देश की खाद्य समस्या पर लिखित प्रस्ताव रखा, जिसमें उत्पादन अनुमान तथा उत्पादन वृद्धि की योजना का विस्तार से वर्णन किया गया था। सरकार द्वारा अनाज की खरीद, भंडारण तथा कमी पड़ने पर रियायती दर पर उसके वितरण की नीति पर उन्होने अपने विचार प्रकट किए। जमाखोरी करने तथा कमी की स्थिति मे ऊँची कीमत पर अनाज बेचने वालों के खिलाफ कड़े कदम उठाने पर भी चर्चा हुई। कृषि उत्पादन को उचित मूल्य पर खरीद कर किसानो को अधिक लाभ पहुँचाने तथा उन्हे बाजार के झंझट से बचाने की योजना पर भी विचार हुआ।

हरित क्रांति की योजना तैयार की गई। उत्पादन के लिए मौजूद संसाधनों का नियोजन किया गया तथा और अधिक संसाधन जुटाने के प्रयास शुरू हो गए। 1966-67 में अधिक उपजाऊ बीजों को बोने का क्षेत्रफल 18.9 लाख हैक्टेयर था जो बाबूजी के प्रयासों से 1967-68 में बढ़कर 60.7 लाख हैक्टेयर हो गया। 1969-70 में यह बढ़कर 109 लाख हैक्टेयर हो गया।

1967-68 में अन्न के उत्पादन में 28.2 प्रतिशत वृद्धि हुई। पाँच वर्ष की

अवधि मे हरित क्राति के फलस्वरूप देश खाद्यान्न मे पूरी तरह आत्मनिर्भर हो गया 1970 71 मे बाबू जगजीवन राम ने गर्व के साथ घोषणा की कि अब अमेरिका से गेहू के आयात की आवश्यकता नहीं है

रक्षा मंत्री के रूप में बाबूजी

29 जून, 1970 को बाबू जगजीवन राम भारत के रक्षा मंत्री बने। श्रीमती इन्दिरा गांधी उस समय देश के नवनिर्माण मे जुटी थीं। 1965 मे भारत-पाकिस्तान युद्ध हो चुका था। पाकिस्तान अब भी भारत के साथ सीमा पर छेड़खानी करने मे लगा था।

दिसम्बर, 1970 में पाकिस्तान मे चुनाव हुए और आवामी लीग के अध्यक्ष श्री मुजीबर्रहमान को पूर्वी पाकिस्तान में 169 मे से 167 सीटों पर सफलता प्राप्त हुई। पश्चिमी पाकिस्तान के सैनिक शासक याहिया खाँ ने मुजीब के प्रधानमंत्री बनने तथा उनकी माँगे मानने से इनकार कर दिया और पूर्वी पाकिस्तान पर हमला कर दिया। हजारों लोग क्रूरतापूर्वक मौत के घाट उतार दिए गए।

बाबू जगजीवन राम एक दूरदर्शी नेता थे। वे समझ गए कि पूर्वी पाकिस्तान पर हमला पाकिस्तान का निजी मामला मात्र बनकर नहीं रह जाएगा। पाकिस्तान भारत से जरूर टकराएगा, उसे तो बहाना चाहिए। अत. उन्होंने प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी के साथ विचार-विमर्श कर रूस के साथ सुरक्षा-सन्धि पर जोर दिया।

9 अगस्त, 1971 को भारत और सोवियत संघ के बीच नई दिल्ली में 20 वर्षीय सन्धि पर हस्ताक्षर हो गए। सन्धि में कहा गया था कि इस अवधि मे यदि कोई देश हम में से किसी पर हमला करेगा तो हम मिलकर उसका मुकाबला करेंगे। रूस से अनेक आधुनिकतम हथियार भी खरीदे गए।

3 दिसम्बर, 1971 को पाकिस्तान ने भारत पर हमला कर दिया। बाबू जी ने सुरक्षा सेनाओं को मुँहतोड जवाब देने का आदेश दिया।

भारतीय सेनाओ ने हर मोर्चे पर पाकिस्तानी सेनाओं को भारी नुकसान पहुँचाया। ढाका के किले में 90 हजार से अधिक पाकिस्तानी सैनिक घिर गए। उन्होंने भारतीय सेना के सामने आत्मसमर्पण किया और भारत ने यह युद्ध जीत लिया। इसके साथ ही पूर्वी पाकिस्तान बंगलादेश बन गया। भारत ने उसे सबसे पहले मान्यता दी।

बाबू जगजीवन राम की दूरदर्शिता और सही वक्त पर सही फैसला लेने की क्षमता के कारण भारतीय सुरक्षा सेनाओं का मनोबल बहुत ऊँचा रहा और बडी विषम परिस्थितियों मे उन्होंने भारी विजय प्राप्त की।

आपातकाल और बाबूजी

बाबू जगजीवन राम सदा लोकप्रिय रहे। वे इतने व्यवहार-कुशल सरल और

विनम्र थे कि विपक्ष उनका पूरा आदर करता था। इन्दिरा जी ने सदैव उनके योगदान की सराहना की और उन्हें विशेष सम्मान दिया।

परन्तु 1975 मे देश में आपातकालीन स्थिति की घोषणा कर श्रीमती इन्दिरा गाधी ने लोकतंत्र की मर्यादाओं को चकनाचूर कर दिया। तब बाबूजी के सामने बहुत बडा धर्म सकट आ खडा हुआ। इन्दिरा जी के विश्वास को तोडना, उनका साथ छोड कर अलग हो जाना उनके लिए कठिन था। कांग्रेस के लिए भी यह परीक्षा की घडी थी। बाबू जी जानते थे कि यदि उन्होने विरोध मे त्यागपत्र दिया अथवा पार्टी छोडी तो पार्टी का इतना बड़ा नुकसान हो जाएगा कि उसे फिर भरा न जा सकेगा। बाबूजी अब केवल एक व्यक्ति नहीं रह गए थे, वे पार्टी बन चुके थे। वे देश के साथ एकाकार हो चुके थे।

26 जून, 1975 को समूचे देश में आपातकाल की घोषणा हुई थी और पूरे डेढ वर्ष तक विपक्षी नेताओ से जेलें भरी रहीं। बाबू जी अपनी आत्मा की आवाज के विरुद्ध यह सब सहते रहे। अतत: उनका धैर्य जवाब दे गया और उन्होने 2 फरवरी, 1977 को अपने पद तथा कांग्रेस पार्टी की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया। 42 वर्ष तक दल तथा देश की सेवा करने के बाद जब बाबूजी अपने नई दिल्ली स्थिति निवास 6 कृष्ण मेनन मार्ग पहुँचे तो उन्हे सब कुछ बडा अजीब लग रहा था।

उसी दिन शाम को उन्होने अपने निवास पर अपने समर्थको एव प्रशंसकों की भारी भीड के बीच 'काग्रेस फॉर डैमोक्रेसी' के गठन की घोषणा की। उ० प्र० के पूर्व मुख्यमत्री हेमवती नदन बहुगुणा, उडीसा की पूर्व मंत्री श्रीमती नदिनी सत्यपथी तथा वरिष्ठ कांग्रेसी सासद श्री डी एन. तिवारी आदि अनेक महत्त्वपूर्ण नेता 'काग्रेस फॉर डेमोक्रेसी' मे शामिल हो गए।

इस्तीफा देने से पहले उन्होंने इन्दिरा जी से भेंट कर उन्हें बहुत समझाया था कि वे आपातकालीन स्थिति वापस ले लें और देश में चुनाव कराएँ। परन्तु उन्होंने बाबूजी का सुझाव मानने से साफ इनकार कर दिया।

बाबूजी के पार्टी से निकलने के बाद वे अपनी जिद पर और अधिक नहीं टिक सकीं। उन्हें नये चुनाव कराने पडे।

अब उन्होने कांग्रेस के विरूद्ध जनता पार्टी के साथ मिलकर चुनाव लडे और उनकी पार्टी ने भारी विजय प्राप्त की।

1977 में बनी मोरारजी देसाई की सरकार मे वे रक्षा मंत्री बने। देश के रक्षा विभाग को सभालने के साथ-साथ अब उन्होने समता के सिद्धात पर अधिक जोर दिया। यह सिद्धांत समाज मे समरसता और समता लाने के उद्देश्य से लागू किया गया था। पिछड़ो तथा गरीबो को सामाजिक न्याय दिलाने के उद्देश्य से तथा समाज मे जाति व वर्ग से ऊपर उठकर एक ठोस बदलाव लाने की दृष्टि से यह सिद्धात लाया गया था।

जनवरी 1979 मे बाबूजी को उप प्रधानमत्री पद की शपथ दिलाई गई। प्रसिद्ध समाजवादी नेता श्री जयप्रकाश नारायण जी बाबूजी का बहुत सम्मान करते थे।

अंतिम जन्मदिन और महाप्रयाण

5 अप्रैल, 1986 को बाबूजी का 78वा जन्मदिन 'समता दिवस' के रूप में बडी धूम धाम से मनाया गया।

तब तक देश मे भारी परिवर्तन हो चुके थे। 1980 मे फिर से सत्ता में आई श्रीमती इन्दिरा गाधी को उनके ही सिख सुरक्षा गार्डो ने गोली से उडा दिया था और उनके बडे बेटे श्री राजीव गाधी भारत के प्रधानमंत्री बन चुके थे।

बाबूजी अब विपक्ष में थे। उन्हे राजनीति मे अब अधिक रुचि नहीं रह गई थी। इस अवसर पर श्री राजीव गांधी ने उन्हें जन्मदिन की बधाई दी। राष्ट्र-निर्माण में उनकी भूमिका की सराहना की और उनसे मार्ग-दर्शन करने का निवेदन किया।

बाबूजी प्रधानमत्री की विनम्रता पर गद्गद् थे। इस अवसर पर बोलते हुए वे भावुक हो गए, "मैने राष्ट्र को सदैव सर्वोपरि माना है।...मैं रहूँ न रहूँ लेकिन भारत सदा रहेगा। जहाँ राष्ट्र की एकता और अखडता का प्रश्न आता है, वहाँ न जाति, न धर्म, न भाषा और न क्षेत्र बडा है। राष्ट्र की तुलना मे ये सभी छोटे पड़ जाते हे। राष्ट्र है तो यह सब हैं। जब राष्ट्र ही नही होगा तो क्या ये सब हमारे समक्ष होंगे ? इसीलिए मै कहता हूँ कि राष्ट्र सर्वोपरि है।"

8 मई, 1986 को उनकी साँस में अचानक अवरोध पैदा हो गया और उन्हे राम मनोहर लोहिया अस्पताल मे दाखिल कराया गया। भारी चिकित्सा व्यवस्था के बावजूद वे ठीक न हो सके।

6 जुलाई को प्रात:काल ही बाबू जगजीवन राम ने अपनी अतिम साँस देश को समर्पित कर दी। सारा देश शोक में डूब गया।

डॉ० के. आर. नारायणन

(27 अक्टूबर, 1920)

भारत के दसवें राष्ट्रपति पद पर (25 जुलाई, 1997 से 25 जुलाई, 2002 तक) आसीन रहे डॉ० के. आर. नारायणन सुप्रसिद्ध पत्रकार प्रशासनिक व राजनयिक हैं। उन्होंने अपने जीवन के लगभग छः दशक राष्ट्रीय सेवा मे लगाए है। आजादी से पहले और आजादी के बाद उनका जीवन समाज-सेवा और राष्ट्र निर्माण के लिए पूरी तरह समर्पित रहा है।

श्री के आर नारायणन का जन्म 27 अक्टूबर, 1920 को केरल के कोट्टायम जिले में उझावूर नामक गॉव में हुआ था। श्री नारायणन के पिता श्री के. आर वाडियार आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के ज्ञाता थे और गॉव मे गरीबों की चिकित्सा कर कुछ आमदनी कर लेते थे परन्तु यह आमदनी इतनी कम थी कि इससे गुजारा भी बड़ी मुश्किल से हो पाता था।

प्राइमरी शिक्षा तक तो अधिक परेशानी नहीं आई। उनके पिता किसी तरह उनकी पढाई का खर्चा उठाते रहे। उनकी प्राइमरी शिक्षा कुरिचिन्तम में हुई थी। उझावूर से कुरिचिन्तम तक नारायणन को पैदल ही स्कूल जाना पड़ता था।

आगे की पढ़ाई के लिए नारायणन को कुरविलंगडु जाना पडा। पिता की आय इतनी अधिक नहीं थी कि बाहर रखकर नारायणन की पढ़ाई का बोझ उठा सकें। बड़ी मुश्किल से वे घर का खर्चा पूरा कर पा रहे थे। नारायणन की मेहनत और लगन ने पिता की कठिनाई कम कर दी। नारायणन ने प्रथम स्थान प्राप्त कर छात्रवृत्ति ले ली और आर्थिक समस्या सुलझ गई।

शिक्षा के दौरान दलित जातियों को अनेक प्रकार की कठिनाइयां का सामना करना पड़ता था। आर्थिक समस्या का मुकाबला तो मेहनत और मजदूरी से कर भी लेते थे परन्तु सामाजिक तिरस्कार की समस्या बहुत कष्टदायक थी। बाबा साहब अम्बेडकर और श्री जगजीवन राम को शिक्षा के दौरान अनेक प्रकार की सामाजिक उपेक्षाओं का सामना करना पडा था। छुआछूत और ऊँच-नीच के भेद-भाव के

कारण कक्षाओ मे और विद्यालय परिसर मे जो अपमान झेलना पड़ता था उसे सहन करना कठिन हो जाता था दक्षिण मे पेरियर रामास्वामी के सवर्णो के विरूद्ध आदोलन और बाबा साहब अम्बेडकर क सघष के कारण स्थितियाँ उतनी विषम नही रही थी अत नारायणन को अधिक कठिनाई नहीं आई।

नारायणन की एक और विशेषता थी, वे अपनी पढाई के प्रति गभीर थे तथा अपने काम से काम रखने मे विश्वास रखते थे। उन्हे बहुत मेहनत से पढने, अच्छे अक प्राप्त करने और शिक्षको की प्रशंसा का पात्र बनने की धुन थी। अत वे मान-अपमान पर अधिक ध्यान नहीं देते थे। इस आदत से उन्हे बहुत लाभ हुआ। उनका मन पूरी तरह पढाई में लगा रहा। हर कक्षा में वे प्रथम स्थान प्राप्त करते रहे और छात्रवृत्ति लेते रहे।

श्री नारायणन ने तिरुवनन्तपुरम विश्वविद्यालय से स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद लदन स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स से बी. एस. सी. की डिग्री प्राप्त की।

1943 में वे ट्रावनकोर विश्वविद्यालय में प्रवक्ता बन गए। युवा प्रवक्ता श्री के आर. नारायणन की शिक्षण शैली इतनी सरल और सटीक थी कि वे छात्रो मे बडी तेजी से लोकप्रिय होने लगे। इसी विश्वविद्यालय की स्नातकोत्तर परीक्षा मे सबसे अधिक अक पाने के कारण वे पहले ही चर्चित हो चुके थे। विश्वविद्यालय के छात्र उन्हे अपना आदर्श मानते थे। अपनी कक्षा मे जब वे पढा रहे होते थे, उस समय छात्रो का ध्यान पूरी तरह पढाई पर रहता था। श्री नारायणन की छवि हर छात्र के लिए प्रेरणा बन गई थी।

पत्रकार श्री नारायणन

श्री के आर. नारायणन बहुमुखी प्रतिभा से संपन्न थे। उन्होने अपने छात्र-जीवन मे पूरी एकाग्रता और लगन से अध्ययन किया था। वे केवल अपनी पाठ्यपुस्तको का ही अध्ययन नहीं करते थे, अपितु देश की सामाजिक तथा राजनीतिक स्थितियों की भी पूरी जानकारी रखते थे।

यह वह समय था जब महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारत छोड़ो आदोलन चलाया जा चुका था और भारत के लगभग सभी बडे नेता जेलो में बंद थे। देश में राष्ट्र-प्रेम उभार पर था। देश की जनता आजादी का फैसला ले चुकी थी। देश के नेता 'आजादी लेकर रहेंगे' का नारा बुलद कर चुके थे। अब आजादी अधिक दूर नही थी। अंग्रेज भी समझ गए थे कि अब वे एक ऐसे मोड़ पर आ खडे हुए है कि वहाँ से वापस जाने के अलावा कोई चारा नहीं है।

द्वितीय विश्व युद्ध अपने चरम पर था। जर्मनी ने यूरोप के बहुत बडे भाग पर अधिकार कर लिया था। फ्रास को हराने और ब्रिटेन को चुनौती देने के बाद जर्मनी का शासक हिटलर रूस में जा घुसा था। घमासान युद्ध जारी था।

इन परिस्थितियो मे श्री के. आर. नारायणन केरल विश्वविद्यालय में छात्रों को पढ़ा कर संतुष्ट नहीं हो सकते थे। अध्ययन और अध्यापन तो हर योग्य और विद्वान व्यक्ति को प्रिय होता है, अत- उन्हें भी प्रिय था, परन्तु उनके मन मे जो चिगारी सुलग रही थी, वह थी दलित व शोषित समाज को न्याय दिलाने की। सदियों से दलित समाज सवर्णो के अत्याचारों की मार झेलता आ रहा था। भीमराव अम्बेडकर दलित आदोलन में देश भर मे सक्रिय थे। दलितो तथा पिछड़ी जातियों में अपने अधिकारों को लेकर उथल-पुथल मची थी। समाज जाग चुका था, परन्तु स्थितियाँ अनुकूल नही थीं।

प्रभावशाली सवर्णो की ताकत का सहारा लेकर अग्रेज भारत मे अपने पैर जमाए हुए थे और बदले मे अग्रेजों से ऐसे अधिकार प्राप्त कर चुके थे, जिनके कारण उन्हें चुनौती देना कठिन हो रहा था।

ऐसे मे ब्रिटिश हुकूमत से देश को मुक्त किए बिना सवर्णों के विशेषाधिकारों पर हाथ नही डाला जा सकता था। इसीलिए भीमराव अम्बेडकर सहित सभी पिछडे समाज के नेता गाधी जी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर स्वाधीनता आंदोलन मे सक्रिय थे। बाबू जगजीवन दलितो का राजनीतिक नेतृत्व कर रहे थे और उन्हें यह बात समझाने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे कि दलितों की लड़ाई दो मोर्चों पर है--एक सवर्णो और संपन्नों के विरुद्ध, दूसरी अग्रेजी शासन के विरुद्ध। यह ध्यान रहे कि सवर्णो के विरुद्ध दलितो की लडाई का नाजायज फायदा अंग्रेज न उठा पाएँ।

श्री के. आर. नारायणन जिस समय ट्रावनकोर विश्वविद्यालय मे प्रवक्ता की हैसियत से काम कर रहे थे तभी उनका झुकाव पत्रकारिता की ओर हो गया था। वे अपने सामाजिक तथा राजनीतिक विचारों को जनता तक पहुँचाने के लिए उत्सुक थे। उन्होने मद्रास से प्रकाशित लोकप्रिय अंग्रेजी समाचार पत्र 'द हिन्दू' तथा बम्बई से प्रकाशित 'टाइम्स ऑफ इंडिया' के लिए काम करना शुरू कर दिया।

श्री के. आर नारायणन अपने विचारो मे बिल्कुल स्पष्ट थे। वे दलितों के उद्धार के लिए सक्रिय थे। दलितो तथा पिछडी जातियो को सवर्णो के अत्याचारों से मुक्ति दिलाने के लिए वे संघर्षरत थे, परन्तु दलितो के लिए अलग देश बने, यह विचार उन्हे पसंद नहीं था। बाबा साहब अम्बेडकर सवर्णो के अत्याचारों से इतने तंग आ चुके थे कि वे दलितो को उनसे पूरी तरह मुक्ति दिलाने के लिए देश के बँटवारे तक को तैयार थे। श्री० के. आर. नारायणन अंग्रेजो की चाल से परिचित थे। मुस्लिम लीग के अध्यक्ष मुहम्मद अली जिन्ना ने धर्म के आधार पर पाकिस्तान की माग उठा दी थी। अग्रेज इस मांग का फायदा उठाते हुए काग्रेस पर शिकंजा कसने लगे थे और आजादी को टालने का बहाना तलाश रहे थे।

उस समय अपनी पत्रकारिता के माध्यम से श्री० के. आर. नारायणन ने

महात्मा गाधी तथा बाबू जगजीवन राम के विचारा का समर्थन किया समाचार पत्रों मे उनक अनेक लेख पकाशित हुए। पिछड़े समाज के लिए शिक्षा तथा नाकरियो म प्राथमिकता को आधार बनाकर भी उन्होंने लेख लिखे। भारतीय समाज मे शिक्षा के अभाव में नारी-दुर्दशा पर भी उन्होने कलम चलाई। सवर्ण तथा दलित दोनों ही समाज नारी शिक्षा के मामले में बहुत पीछे थे। श्री के. आर नारायणन ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर बहुत जोर दिया। स्वदेशी की असफलताओं को भी उन्होने निशाना बनाया।

1945 में श्री के आर. नारायणन लंदन चले गए। लंदन मे उन्होने लंदन स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स मे अर्थशास्त्र तथा राजनीति शास्त्र का विशेष अध्ययन किया। इस अवधि में उन्हें 'टाटा स्कालरशिप' प्रदान की गई। इस अवधि में वे लंदन मे मुम्बई से प्रकाशित साप्ताहिक समाचार पत्र 'सोशल वैलफेयर' के लदन सवाददाता रहे। तीन वर्ष तक उन्होंने अपनी सेवाएँ इस समाचार पत्र को प्रदान की।

भारत सरकार की सेवा में

लदन में अपना अध्ययन कार्य समाप्त करने के बाद जब वे भारत लौटे तब तक देश आजाद हो चुका था। 1945 से 1948 तक वे लदन मे रहे। इस अवधि मे हिन्दुस्तान आजाद हो चुका था। पाकिस्तान बन चुका था। बँटवारे को लेकर दोनों देशों मे लाखों लोग मारे जा चुके थे। 30 जनवरी, 1948 को भारतीय स्वाधीनता सग्राम के नेता राष्ट्रपिता महात्मा गाधी की हत्या भी हो चुकी थी।

1949 मे श्री नारायणन भारतीय विदेश सेवा विभाग मे शामिल हो गए। इस समय भारत का सविधान निर्माणाधीन था। श्री जवाहर लाल नेहरू भारत के प्रधानमंत्री थे तथा डॉ० राजेन्द्रप्रसाद राष्ट्रपति थे।

विदेश विभाग की ओर से डॉ० नारायणन ने भारतीय राजदूत के रूप मे रंगून, टोकियो, केनबरा तथा हनोई में अपनी सेवाएँ दीं।

1949 से 1978 तक डॉ० के. आर. नारायणन भारतीय विदेश विभाग में विभिन्न पदो पर रहे। इस अवधि मे उन्हें चीन, तुर्की, थाइलैण्ड, अमेरिका आदि देशों मे रहने का अवसर मिला। भारतीय राजदूत के रूप में डॉ० नारायणन अत्यधिक लोकप्रिय तथा सफल रहे। अनेक भाषाओं पर उनका अधिकार था। अनेक देशो की संस्कृति और रीति-रिवाजों की उन्हें जानकारी थी। वे जहाँ-जहाँ भी गए अपनी व्यवहार कुशलता और मिलनसारता के कारण उन्होंने भारत के अच्छे संबंध स्थापित किए।

जवाहरलाल यूनीवर्सिटी के वाइसचांसलर

डॉ० के. आर. नारायणन शिक्षा एवं प्रशासन दोनो कार्यो मे दक्ष हो चुके थे।

उन्होंने तीन दशक विदेशो मे बिताए थे। उन्होने वहाँ राजनीतिक सबध स्थापित करने के साथ-साथ शिक्षा एव संस्कृतियों का भी अध्ययन किया। उनकी सभी गतिविधियों के केन्द्र मे अपना देश और अपना समाज था।

1978 में विदेश सेवा से अवकाश ग्रहण करने के बाद उन्हें देश में रहकर काम करने का अवसर मिला। जनवरी, 1979 में उन्हे दिल्ली के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय 'जवाहरलाल नेहरू यूनीवर्सिटी' का वाइस चासलर नियुक्त किया गया। अक्टूबर 1980 तक वे इस पद पर रहे।

इस अवधि मे उन्होने विश्वविद्यालय को अपने अनुभवों का लाभ पहुँचाया। छात्रों की समस्याओं को समझने तथा उन्हें हल करने का प्रयास किया। अनेक ऐसे पाठ्यक्रमों को विश्वविद्यालय मे शामिल करवाया, जिनकी आवश्यकता अनेक वर्षो से महसूस की जा रही थी और जो विद्यार्थियो के लिए अत्यधिक उपयोगी थे।

अमेरिका में भारत के राजदूत

भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी डॉ० के. आर. नारायणन को क्षमताओ और योग्यताओ से बहुत प्रभावित थीं। विभिन्न देशो के राजदूत के रूप मे वे अनेक वर्षों तक विदेशों मे भारतीय समस्याओं का समाधान खोजते रहे थे। उन्हे अमेरिका के लिए किसी सुलझे हुए राजनयिक की आवश्यकता थी। अमेरिका के साथ भारत के संबध उस समय बहुत अच्छे नहीं थे। अत· श्रीमती गाधी ने डॉ० के. आर. नारायणन को अमेरिका में भारतीय राजदूत बनाकर भेजा।

डॉ० नारायणन ने अपनी विनम्रता और व्यवहारकुशलता के बल पर दोनो देशों के सबंध सामान्य करने के प्रयास किए और उन्हें काफी सफलता मिली। उन दिनों भारत सिख आंतकवाद से जूझ रहा था। अनेक आंतकवादी सिख नेता पाकिस्तान से मदद ले रहे थे, अनेक अमेरिका मे रहकर भारत मे आतकवादियो की मदद कर रहे थे। डॉ० के. आर. नारायणन ने अमेरिका मे भारत का पक्ष रखा और अमेरिका से भारत मे आंतकवाद को मदद मिलने की स्थिति को नियंत्रण मे किया।

1974 में भारत परमाणु महाशक्ति बनने के उद्देश्य से सक्रिय कदम उठा चुका था। उस समय भी भारत की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाधी ही थीं। भारत की सुरक्षा पर मंडराते खतरों को देखते हुए श्रीमती गांधी ने परमाणु बम बनाने का निश्चय किया था, परन्तु अमेरिकी विरोध के कारण यह योजना आगे नहीं बढ़ सकी थी और अमेरिका से संबध बिगड़ गए थे। डॉ० के. आर. नारायणन ने दुनिया के सबसे बडे लोकतत्र की सुरक्षा एवं विकास की समस्याएँ अमेरिका के सामने रखी तो उसे सच्चाई समझने का मौका मिला। अमेरिका की ओर से भारत को समझने के प्रयासों का सिलसिला शुरू हुआ।

राजनीति में प्रवेश

1983 तक डा० नारायणन अमेरिका के राजदूत रहे। इसके बाद वे भारत वापस आ गए।

अब श्री नारायणन ने शेष जीवन राजनीति के माध्यम से देश तथा समाज की सेवा में बिताने का फैसला लिया।

भारत में संविधान के माध्यम से दलित तथा पिछडी जातियो को आरक्षण का लाभ मिल चुका था। इससे उनमें नवचेतना का संचार हुआ था और आगे बढकर अपने अधिकार लेने की प्रवृत्ति जागी थी।

इसके साथ आरक्षण की राजनीति भी देश मे उतर आई। पिछड़ी जातियो का वोट बैंक 52 % से अधिक होने के कारण हर राजनीतिक दल उनके मतो से सत्ता में पहुँचने के मनसूबे बनाने लगा।

डॉ० के. आर नारायणन दलितों और पिछडो के हितैषी अवश्य रहे हैं परन्तु इसके लिए सवर्णो के साथ टकराव की स्थिति पैदा करने और उससे राजनीतिक लाभ उठाने के वे सर्वथा विरोधी रहे है। बाबा साहब अम्बेडकर तथा भारत के महान नेताओ ने भारतीय सविधान का गठन ही कुछ इस प्रकार किया है कि शिक्षा एव सेवाओ में भागीदारी के द्वारा धीरे-धीरे उनका उत्थान सुनिश्चित है। सविधान में विश्वास रखते हुए तथा राजनीतिक सत्ता का उपयोग करते हुए बिना जातीय सघर्ष के पिछडी जातियों को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाया जा सकता है और देश से अततः जातिवाद को समाप्त किया जा सकता है। दलित नेताओं के राजनीति मे आने तथा उच्च पदों पर पहुँचने से दलितों में आत्मविश्वास बढ़ता है और सामाजिक, राजनीतिक तथा उत्पादन आदि सभी प्रकार के कामो मे उनकी रुचि पैदा होती है।

इसी उद्देश्य से डॉ० के. आर. नारायणन ने अमेरिका से लौटने के बाद राजनीति में प्रवेश करने का निर्णय लिया। पहला लोक सभा चुनाव उन्होंने केरल के ओटा पालम चुनाव क्षेत्र से लड़ा और वे जीत कर संसद में पहुँचे।

अपनी राजनीतिक गतिविधियों में तथा जनसपर्क के दौरान उन्होंने जनता को यही सदेश दिया कि दलित और पिछडे लोग विशेष सुविधाओ और अधिकारों के हकदार हैं। सदियों से इस देश में उपेक्षा और तिरस्कार की मार सहते-सहते वे बिल्कुल नष्ट होने की स्थिति मे पहुँच गए। भारत के महान नेता महात्मा गांधी ने दलितों का मनोबल बढाया और आश्वासन दिया कि देश में जब अपना राज आएगा तो कोई पिछडा नहीं रहेगा। सब स्वाधीन देश के समान अधिकार प्राप्त नागरिक होगे। देश आजाद हुआ। अपना संविधान बना, अपनी सरकारे बनी और दलितो की स्थिति में भारी बदलाव आया। महात्मा गाधी का स्वप्न साकार हुआ। परन्तु अभी बहुत सी समस्याएँ बाकी हैं। विकास की प्रक्रिया से अभी दलितों का

सीधा जुड़ना और सत्ता मे भागीदारी करते हुए आर्थिक स्तर को ऊपर उठाना सबसे बड़ी समस्याएँ हैं। सामाजिक समस्याओं का हल तो काफी हद तक हो चुका है जीवन स्तर को ऊपर उठाना और समतामूलक समाज बनाना, जाति व वर्गहीन समाज बनाना अभी शेष है। जब दलित शिक्षित होंगे, उनकी आमदनी बढ़ेगी, उनकी हर काम में भागीदारी होगी तो ये सब समस्याएँ भी समय के साथ सुलझ जाएगी।

दूसरी बार इसी क्षेत्र से उन्होने फिर 1989 में लोकसभा का चुनाव जीता और तीसरी बार 1991 मे। तीन बार लगातार लोकसभा की सीट एक ही चुनाव-क्षेत्र से जीतने के बाद क्षेत्र मे बहुत लोकप्रिय हो गए।

1985 मे केन्द्रीय योजना राज्य मत्री बने। 1985-86 मे वे विदेश मंत्री बने। 1986 से 1989 तक वे प्रौद्योगिकी परमाणु ऊर्जा, अतरिक्ष, इलैक्ट्रोनिक्स तथा समुद्री विकास मत्री तथा विज्ञान एव औद्योगिक अनुसधान के उपाध्यक्ष रहे।

भारत के उपराष्ट्रपति

21 अगस्त, 1992 में भारत के उपराष्ट्रपति चुने गए। जुलाई 1997 मे देश के राष्ट्रपति चुने जाने तक उन्होंने उपराष्ट्रपति पद पर काम किया। उपराष्ट्रपति के कार्यकाल में उन्होंने राज्य सभा के सभापति का दायित्व बड़ी सफलता से निभाया।

इस अवधि मे उन्हें राज्यसभा की कार्रवाइयों तथा कार्यक्रमों को संचालित करने का अवसर प्राप्त हुआ। देश के अनेक महान राजनीतिज्ञों के साथ विचार-विमर्श का मौका मिला। देश की समस्याओं को और अधिक नजदीकी से समझने तथा उन्हे हल करने के लिए किए जा रहे प्रयासो को जानने का अवसर मिला। अपने कार्यकाल के दौरान उन्होने किसी को नाराज नहीं किया। बड़ी विषम स्थितियो मे भी सदन का सफलतापूर्वक सचालन किया। उनकी योग्याताओ, अनुभवो और विनम्र स्वभाव के कारण सदस्य उनका बहुत आदर करते थे।

भारतीय प्रतिनिधिमंडलों का नेतृत्व

डॉ० नारायणन भारत को अच्छी तरह समझते थे तथा उन्हें भारतीय समस्याओ की पूरी जानकारी थी। वे पूरी तरह मानवीय और न्यायप्रिय थे। इसीलिए उन्हें सरकार ने विदेशों में अनेक प्रतिनिधि मडलों का नेतृत्व करने के लिए भेजा।

1979 में सयुक्त राष्ट्र सघ की आम सभा के सदस्य बने। अपने अनुभवो से उन्होंने संयुक्त राष्ट्र सघ में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

नवम्बर, 1985 में नामीबिया की स्वाधीनता का मामला निबटाने के लिए उन्हें सयुक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद का सदस्य बनाया गया। नामीबिया के लोगों

का स्वाधीनता दिलवाने मे मदद करने मे सबसे आगे रहे उन्होने नामीबिया के लोगो की भावनाओ को समझा और उन्हे पूरा आदर दिलाने का प्रयास किया।

1986 म हरारे में गुट निरपेक्ष देशो का सम्मेलन आयोजित किया गया। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गाधी ने इस सम्मेलन मे जाने के लिए एक प्रतिनिधि मंडल बनाया। डॉ० के आर. नारायणन इस प्रतिनिधि मडल मे शामिल किए गए। उन्होंने देश के युवा प्रधानमंत्री को अपने लम्बे अनुभवों के आधार पर विशेष सहयोग दिया।

मई 1986 में अफ्रीका की गभीर स्थिति पर विचार करने के लिए सयुक्त राष्ट्र संघ ने विशेष सत्र बुलाया। डॉ० के. आर नारायणन को इस सत्र मे शामिल किया गया। डॉ० के आर. नारायणन को विदेशी मामलो की अच्छी जानकारी थी। जीवन के तीन दशक विदेशो मे बिताने के कारण वे अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व के व्यक्ति बन गए थे। दूसरे देशो की समस्याओं का अध्ययन करने, समझने और उन्हे दूर करने मे डॉ० के. आर. नारायणन सदा विशेष रुचि लेते रहे थे। उनके इसी अनुभव का लाभ उठाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने विशेष सत्र मे उन्हे अपने साथ लेना उपयुक्त समझा।

विभिन्न संस्थाओं से संबंध

डॉ० के. आर० नारायणन का व्यक्तित्व बहुआयामी था। उन्होंने अपने देश और विदेशों में अनेक विषयो का गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया था। सीखना उनका सदा शौक रहा। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण वे विभिन्न विषयो के अच्छे जानकार बन गए थे। भारत की विभिन्न सस्थाओ ने उनके अनुभवो का लाभ उठाने के लिए उन्हे अपने साथ जोडने मे गर्व का अनुभव किया। डॉ० के आर. नारायणन तो देश की हर प्रकार से सेवा करने के लिए समर्पित थे। उन्होने सदा आगे बढ़कर अपने अनुभव बॉटे और अपने मार्ग दर्शन से संस्थाओ को लाभ पहुँचाया।

वे भारतीय सास्कृतिक संबध समिति के अध्यक्ष रहे, भारतीय लोकप्रशासन संस्थान के अध्यक्ष रहे। रामकृष्ण मिशन संस्थान कलकत्ता ने उन्हें अपना अध्यक्ष चुना तथा इंटरनेशनल अवार्ड फॉर यंग पीपुल' ने उन्हे संरक्षक पद सौंपा।

इसके अलावा वे निम्न सस्थाओं के चेयरमेन भी रहे–

द ज्यूरी ऑफ द जवाहर लाल नेहरू अवार्ड फॉर इण्टरनेशनल अंडरस्टेडिंग

द इंटरनेशनल ज्यूरी फॉर द इन्दिरा गांधी प्राइज फॉर पीस, डिसआर्मामेंट एण्ड डेवलपमेंट

राजीव गांधी सद्भावना पुरस्कार सलाहकार समिति।

द ज्यूरी फॉर इंटरनेशनल गाधी अवार्ड फॉर लिप्रौसी।

द ज्यूरी फॉर इंदिरा गांधी पर्यावरण पुरस्कार।

द ज्यूरी फॉर भीमराव अम्बेडकर अवार्ड फॉर सोशल अंडरस्टेडिंग एण्ड अपलिफ्टमेंट ऑफ वीकर सेक्शन।

द ज्यूरी फॉर बी. आर अम्बेडकर इंटरनेशनल अवार्ड फॉर सोशल चेंज

द ज्यूरी फॉर घनश्यामदास बिरला अवार्ड्स फॉर ह्यूमेनिज्म, इंडियाज हेरिटेज एण्ड कल्चर एण्ड रूरल अपलिफ्टमेंट, द ज्यूरी फॉर कम्युनल हारमनी अवार्ड्स।

लेखक डॉ० के. आर. नारायणन

अपने अनुभवों तथा जानकारियों को देश-विदेश के पाठकों तक पहुँचाने के उद्देश्य से डॉ० के. आर. नारायणन ने तीन महत्त्वपूर्ण किताबें लिखी हैं—

(1) इंडिया एण्ड अमेरिका एसेज इन अण्डरस्टेंडिंग।

(2) इमेजिज एण्ड इनसाइट्स।

(3) नॉन एलाइनमेंट इन कंटेंपोररी इंटरनेशनल रिलेशन्ज।

इसके अतिरिक्त उन्हें लेख-लिखने का बहुत शौक है। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में उन्होंने सामाजिक, राजनीतिक, साहित्यिक तथा अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व के लेख लिखे हैं। पत्रकारिता और लेखन से उनका पहले से ही विशेष लगाव रहा है। अपने अति व्यस्त राजनीतिक जीवन में से समय निकाल कर उन्होंने जो कुछ लिखा है, वह राष्ट्र और समाज के लिए एक अमूल्य धरोहर है।

सदस्यता एवं उपलब्धियाँ

डॉ० के. आर. नारायणन देश-विदेश की विभिन्न संस्थाओं के सदस्य रहे हैं तथा उन्होंने अपने जीवन में अनेक महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं।

श्री नारायणन यूनीवर्सल एकेडेमी ऑफ कल्चर्स के सदस्य है, लंदन स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स तथा जवाहरलाल नेहरू सेंटर फॉर एडवांस्ड साइंटिफिक रिसर्च बंगलोर के फैलो हैं। 1970-72 में 'नेहरू की गुटनिरपेक्षता' विषय के अध्ययन के लिए जवाहरलाल नेहरू फैलोशिप प्रदान की गई थी।

डॉ० के. आर. नारायणन ने अपने जीवन में अनेक उपाधियाँ और सम्मान प्राप्त किए हैं। टोलैडो विश्वविद्यालय अमेरिका ने उन्हें डॉक्टर ऑफ साइंस की उपाधि प्रदान की, आस्ट्रेलियन नेशनल यूनीवर्सिटी ने डॉक्टर ऑफ लॉ की उपाधि से सम्मानित किया। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, बनारस ने डॉक्ट्रेट की उपाधि से सम्मानित किया, पेरू की यूनिवर्सिटी ऑफ मारकॉस ने डॉक्ट्रेट प्रदान किया, त्रिभुवन विश्वविद्यालय, नेपाल ने उन्हें डॉक्ट्रेट ऑफ लैटर्स की उपाधि दी। विलकेंट विश्वविद्यालय टर्की ने उन्हें राजनीतिशास्त्र में डॉक्ट्रेट की उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया।

डा० के आर नारायणन दिल्ली विश्वविद्यालय नेहरू विश्वविद्यालय तथा अन्य अनेक केन्द्रीय विश्वविद्यालया के विजीटर है। वे दिल्ली विश्वविद्यालय, पजाब विश्वविद्यालय, पाडिचेरी विश्वविद्यालय, असम विश्वविद्यालय, हिल यूनीवर्सिटी एण्ड गांधी ग्राम रूरल इस्टीट्यूट के चासलर रह चुके हैं। माखनलाल चतुर्वेदी नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ जर्नलिज्म भोपाल तथा मद्रास स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स के विजीटर रह चुके है।

उन्होने भारत तथा दुनिया के अनेक देशों के विश्वविद्यालयो में उपाधि वितरण समारोहों की अध्यक्षता की है।

भारत सरकार की ओर से वे पेरू, ब्राजील, नेपाल, जर्मनी, पुर्तगाल, लग्जमबर्ग तथा टर्की की यात्रा कर चुके हैं।

उन्हे अतर्राष्ट्रीय मामले, राजनीतिक विचार, शिक्षा, दर्शन, विज्ञान एव प्रौद्योगिकी के सामाजिक उपयोग, साहित्य, ललित कलाएँ, लोक- नृत्य, शास्त्रीय सगीत तथा सैर करने आदि का वहुत शौक है। वे विभिन्न सामाजिक सांस्कृतिक तथा खेल सस्थानों के सरक्षक है।

भारत के राष्ट्रपति

श्री के आर. नारायणन पॉच वर्ष तक उपराष्ट्रपति पद पर रहने के बाद 25 जुलाई, 1997 को भारत के राष्ट्रपति चुने गए। श्री नारायणन का नाम जब राष्ट्रपति पद के लिए सामने आया तो किसी ने भी विरोध प्रकट नहीं किया। वे सर्वसम्मति से राष्ट्रपति चुन लिए गए। इससे उनकी सर्वस्वीकृति का प्रमाण मिलता है। श्री नारायणन पहले राष्ट्रपति थे जो दलित वर्ग मे आए थे। भारतीय गणतत्र के सर्वोच्च पद पर श्री नारायणन का सर्वसम्मति से चुना जाना दलित आदोलन की विजय और भारतीय जनमानस की विशालता और उदारता का प्रतीक है।

श्री नारायणन का यह स्वप्न रहा है कि भारत एक जाति, वर्ग व वर्ण रहित समाज बने। भारत के लोगों के दिलो में राष्ट्रीयता और मानवता का पूरा विकास हो और वे अन्य सभी भेद-भाव भूल जाएँ।

इसी सकल्प के साथ वे जीवन भर सघर्ष करते रहे और यही सकल्प लेकर राष्ट्रपति पद पर आसीन हुए।

उदारता एवं लोकप्रियता

श्री के. आर. नारायणन राष्ट्रपति के रूप में अत्यधिक उदार रहे। भारतीय सविधान मे राष्ट्रपति एक गरिमामय सर्वोच्च पद है। प्रधानमंत्री तथा उसका मत्रिमंडल राष्ट्रपति के आदेश व सहमति से देश पर शासन करता है, परन्तु व्यावहारिक स्तर पर सारी सत्ता प्रधानमत्री के हाथ मे ही केन्द्रित रहती है।

राष्ट्रपति भारत का प्रथम नागरिक होता है और उसके प्रति सम्मान व्यक्त करना प्रत्येक नागरिक और राजनेता का कर्त्तव्य है। अपने व्यक्तित्व और व्यवहार से राष्ट्रपति अपनी लोकप्रियता में वृद्धि कर सकता है। श्री के आर. नारायणन का व्यवहार बहुत ही अच्छा है। वे उदार और मिलनसार हैं। अपने इन गुणों के कारण वे राष्ट्रपति बनते ही पूरे देश की जनता मे लोकप्रिय हो गए। जनता अपने राष्ट्रपति पर गर्व करने लगी।

संवैधानिक दायित्वों का निर्वाह

श्री के० आर० नारायणन इस सत्य को अच्छी तरह जानते है कि जब-जब राष्ट्र के सामने कठिन परिस्थितियॉ आती हैं तब-तब राष्ट्रपति के दायित्वो का दायरा बढ़ जाता है।

सबसे पहला राजनीतिक सकट उनके सामने तब उपस्थित हुआ जब 1997 मे भाजपा, कांग्रेस तथा अन्य किसी भी दल के पास स्पष्ट बहुमत नही था। उस समय राष्ट्रपति को फैसला लेना था कि सरकार बनाने का न्यौता किस राजनीतिक दल को दिया जाए। सब अपने-अपने दावे पेश कर रहे थे। गैर भाजपा दल भाजपा को सत्ता से बाहर रखने के लिए किसी भी हद तक जाने को तैयार थे।

ऐसे समय राष्ट्रपति के. आर. नारायणन ने बडी सूझ-बूझ से काम लिया। वे चाहते थे कि कोई भी दल अन्य दलों के समर्थन से सरकार बना ले तो बेवक्त के चुनावो से बचा जा सकता है।

राजनीतिक खेमो मे कई दिन तक गहमा-गहमी रही। भाजपा पिछले लोकसभा चुनावो के बाद सरकार बना चुकी थी। समर्थन न मिल पाने के कारण भाजपा के प्रधानमत्री श्री अटलबिहारी वाजपयी को 13वें दिन ही इस्तीफा देना पडा था।

अब की बार भाजपा शांत थी। वह कांग्रेस तथा अन्य दलों मे हो रही रस्साकस्सी को देख रही थी और अगली राणनीति पर विचार कर रही थी। ऐसे नाजुक समय मे भारत के राष्ट्रपति श्री नारायणन सवैधानिक विशेषज्ञो और कानूनी सलाहकारो से मशवरा ले रहे थे। परन्तु उन्होने अभी तक अपना रुख स्पष्ट नहीं किया था। बड़े धैर्यपूर्वक वे राजनीतिक हलचलो का जायजा लेते रहे।

कांग्रेस अध्यक्ष श्रीमती सोनिया गाधी आगे बढ़ी, परन्तु समाजवादी पार्टी आदि का समर्थन न मिल पाने के कारण उनकी गिनती कम रह गई। उन्हे पीछे हटना पडा।

अब राष्ट्रपति के सामने भाजपा के ससदीय दल के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करने में कोई दिक्कत नही थी। उन्होंने श्री वाजपेयी को भेट के लिए आमंत्रित किया। आवश्यक विचार-विमर्श के बाद उन्होंने श्री वाजपेयी से समर्थकों की सूची माँगी। वे नही चाहते थे कि भाजपा बिना स्पष्ट सहयोग के

केवल उम्मीद पर सरकार बना ले और पिछली बार की तरह इस बार भी विश्वास मत से पहले ही उसे इस्तीफा देना पड़े। तमिलनाडु से श्रीमती जयललिता की सूची आने में काफी विलंब हुआ। लेकिन अंततः उनकी सहमति प्राप्त हो गई और राष्ट्रपति ने श्री वाजपेयी को सरकार बनाने का आदेश दे दिया।

श्री वाजपेयी ने अपने मंत्रीमंडल का गठन किया और राष्ट्रपति श्री के. आर नारायणन ने उन्हें प्रधानमंत्री पद की शपथ दिला दी। अन्य मंत्रियों को भी शपथ दिलाई गई।

राष्ट्रपति द्वारा दी गई अवधि के अन्दर भाजपा ने विश्वास मत प्राप्त कर लिया और श्री अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार ने केन्द्र में सत्ता संभाल ली।

कश्मीर में आतंकवाद

श्री नारायणन के राष्ट्रपति काल में कश्मीर में आतंकवाद चरम सीमा पर रहा। देश का सौभाग्य था कि वह उस समय दो अत्यधिक अनुभवी नेताओं के हाथों में था– राष्ट्रपति श्री के. आर. नारायणन तथा प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी। श्री वाजपेयी ऐसी नाजुक स्थिति में राष्ट्रपति से सलाह-मशवरा करते रहे। अनेक बार आतंकवादियों ने सामूहिक नरसंहार किए, सरकार ने पाकिस्तान से बदला लेने के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीति पर बल दिया। बहुत जल्दी ही संसार के मुख्य देशों को स्पष्ट होने लगा कि गलती पाकिस्तान की है। पाकिस्तान सीमा पार से भारत में आतंकवाद फैला रहा है।

उस समय पाकिस्तान में नवाज शरीफ की सरकार थी। नवाज शरीफ की सरकार अफगानिस्तान में तालिबानों को मदद करती रहती थी, जिससे अफगानिस्तान में पाक समर्थित आतंकवादी अपने ट्रेनिंग कैम्प चलाने लगे। पाक अधिकृत कश्मीर में भी आतंकवादियों के ट्रेनिंग कैम्प काम कर रहे थे। अमेरिका का झुकाव पाकिस्तान की ओर था, इसलिए पाकिस्तान हिन्दुस्तान के रुख की कोई परवाह नहीं करता था। उसका इरादा कश्मीर में आतंकवादी गतिविधियाँ तेज करके कश्मीर को पाकिस्तान में मिला लेने का था। कश्मीर में अनेक संगठन आतंकवादियों से मिल गए थे जो अपने आपको कश्मीर के स्वाधीनता सेनानी कहने लगे थे। भारत पर दबाव बढ़ रहा था कि पाकिस्तान से बातचीत करे और दोनों देशों के बीच कोई शांति समझौता हो जाए, जिससे तनाव कम किया जा सके।

प्रधानमंत्री की लाहौर बस यात्रा

इस कठिन दौर में प्रधानमंत्री श्री वाजपेयी ने राष्ट्रपति के. आर. नारायणन से मुलाकात की। दोनों नेता इस नतीजे पर पहुँचे कि शांतिवार्ता हो जाए तो अच्छी बात है। श्री वाजपेयी ने बस द्वारा लाहौर जाकर पाकिस्तान के

प्रधानमंत्री से बातचीत करने की योजना बनाई। श्री के आर. नारायणन ने कुछ सुझाव दिए और श्री वाजपेयी की लाहौर बस यात्रा पर अपनी सहमति व्यक्त कर दी।

प्रधानमंत्री बस द्वारा लाहौर पहुँचे। उन्होंने पाकिस्तान के प्रधानमंत्री श्री नवाजशरीफ से एक ऐतिहासिक समझौता किया, जिसे लाहौर समझौता नाम दिया गया।

राष्ट्रपति श्री के. आर. नारायणन खुश थे कि दोनों देशों के बीच अमन- चैन का रास्ता खुल गया है, परन्तु पाकिस्तान के मन में खोट था। यह बात वे नहीं समझ पाए।

कारगिल युद्ध की चुनौती

भारत यह मानकर खुश था कि पाकिस्तान के साथ सार्थक बातचीत शुरू हो गई है, अब दोनो पड़ोसी देश प्यार से रहेंगे। टकराव का दौर समाप्त हो जाएगा। दोनों देश तरक्की करेंगे।

परन्तु यह सब भ्रम साबित हुआ। सर्दियाँ आते ही पाकिस्तान की नीयत खराब हो गई। कारगिल की जिन पहाड़ियों से भारतीय सैनिक नीचे उतर आए थे, पाकिस्तान ने उन पर अपनी सेना की मदद से आतंकवादी जत्थे तैनात कर दिये। कारगिल क्षेत्र की भारतीय पहाड़ियों पर पाकिस्तान का कब्जा हो गया।

इधर देश के सामने एक और संकट आ खड़ा हुआ। श्रीमती जयललिता ने वाजपेयी सरकार से अपना समर्थन वापस ले लिया और विश्वास मत के समय सरकार गिर गई।

राष्ट्रपति श्री के. आर. नारायणन के सामने यह एक अग्नि परीक्षा की घड़ी थी। देश पर युद्ध के बादल मँडरा रहे थे और सरकार गिर गई। तुरन्त चुनाव नहीं कराए जा सकते थे। कोई और राजनीतिक विकल्प था नहीं, अतः श्री नारायणन ने श्री वाजपेयी को कार्यकारी प्रधानमंत्री के रूप मे कार्य करते रहने का आदेश दिया और आम चुनावों के लिए प्रक्रिया शुरू कर दी गई। भारत जैसे विशाल लोकतंत्र में चुनाव कराना आसान काम नहीं होता। देश जब युद्ध की स्थिति में हो तब तो हर काम और भी मुश्किल हो जाता है। परन्तु श्री के. आर. नारायणन ने बड़ी सूझ-बूझ से काम लिया।

एक ओर उन्होंने प्रधानमंत्री से मिलकर भारतीय सशस्त्र सेनाओं को कारगिल से पाकिस्तानी कब्जा हटाने के लिए 'आपरेशन विजय' शुरू करने का आदेश दिया और दूसरी ओर सरकार के साथ मिलकर देश के अंदरूनी हालात पर नजर रखे रहे।

बड़ी सावधानी से भारतीय सेनाओं ने हवाई हमलों से पहाड़ियों मे छिपे

शत्रुओं की स्थिति कमजोर की और फिर जमीनी लड़ाई के लिए सीधी चढ़ाई चढकर गोलीबारी का मुकाबला करते हुए ऊपर जा पहुँचे। कुछ ही दिनों की लडाई में भारतीय सेनाओ ने कारगिल की सभी पहाड़ियो से शत्रुओं को मार भगाया और उन पर फिर से कब्जा कर लिया।

इस युद्ध मे भारत के 400 से अधिक जवान शहीद हुए। दुख की इस घड़ी मे राष्ट्रपति श्री के. आर. नारायणन शहीदों के अंतिम संस्कार में शामिल हुए। वे उनके परिवारो से स्वयं मिले और उन्हें सांत्वना देकर सुरक्षा सेनाओ का मनोबल बढ़ाया। राष्ट्रीय खजाने से बडी से बडी मदद की घोषणा की गई। राष्ट्रपति के आगे बढ़ कर हिस्सा लेने के कारण भारतीय जनता में सहानुभूति की लहर और तेज हो गई। लोगो ने आगे बढकर शहीदो को अंतिम विदाई दी और उनके शौर्य की प्रशंसा की। हर दिन समाचार पत्र शहीदों के चित्रो और उनके बहादुरी के कारनामो से भरे रहते थे।

एक बार फिर संवैधानिक संकट से उबारा

1999 मे एन. डी. ए. के बैनर तले भाजपा ने चुनाव लडा। एन डी. ए. सबसे बड़े गठबंधन के रूप में उभरकर आया।

एक बार फिर हो-हल्ला मचा। वामपंथी, समाजवादी तथा कांग्रेसी सबकी एक ही आवाज थी—भाजपा सांप्रदायिक दल है। एन. डी. ए. का मुखौटा लगाकर भाजपा सत्ता मे आना चाहती है। राष्ट्रपति महोदय एन. डी. ए. को सरकार बनाने का निमंत्रण न दें। अनेक दलों के मुखियाओ ने समाचार पत्रों मे एन. डी. ए. के विरुद्ध वक्तव्य प्रकाशित कराए। अनेक नेता राष्ट्रपति जी से मिले और उन्होंने उन्हें एन. डी. ए. को सरकार बनाने के लिए न बुलाने की प्रार्थना की।

परन्तु श्री के. आर. नारायणन अपनी ऑखों से देखने मे विश्वास रखते थे। उन्होंने देखा कि एन डी. ए. सबसे आगे है तो उन्होंने संवैधानिक निर्देशों व परम्पराओं का आदर करते हुए एन. डी. ए. के नेता श्री अटल बिहारी वाजपेयी को ही सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। विद्वान राष्ट्रपति ने सारी अटकलबाजियों को समाप्त कर देश मे स्पष्ट बहुमत की सरकार बनवा दी। श्री वाजपेयी ने एक बार फिर देश की बागडोर संभाल ली।

परमाणु विस्फोट से लगे प्रतिबंधों की चुनौती

1998 में पोखरण में परमाणु शक्ति का विस्फोट कर भारत परमाणु महाशक्ति बन गया। परन्तु भारत का महाशक्ति बनना अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस आदि देशों को बहुत बुरा लगा। अमेरिका ने भारत पर अनेक प्रकार के आर्थिक प्रतिबंध लगा दिए, जिससे देश में आर्थिक संकट गहराने लगा।

ऐसे समय डॉ. के. आर. नारायणन ने पूरे देश से अपील की कि वे घबराए नहीं। जब हम कोई बड़ी उपलब्धि हासिल करते है तो कुछ कीमत तो चुकानी ही पड़ती है। देश का परमाणु शक्ति सम्पन्न होना एक बडी उपलब्धि है। हमें इस पर गर्व करना चाहिए। पश्चिमी देशों ने हम पर जो प्रतिबंध लगाए हैं, इससे हमारे सामने नई चुनौतियाँ आ खडी हुई है। हमें एकजुट होकर इन चुनौतियों का सामना करना है। भारत एक विशाल देश है। इसका आर्थिक ढाँचा बहुत मजबूत है। हम सावधानी से काम करें। ये प्रतिबन्ध हमारा कोई नुकसान नहीं कर पाएंगे।

राष्ट्रपति की अपील पर जनता ने पूरा ध्यान दिया। पूरा देश एकजुट होकर खडा हो गया। आर्थिक प्रतिबंधों से देश का अधिक नुकसान नहीं हो पाया। जनता की जागरुकता और नेतृत्व की कुशलता ने मिलकर इस संकट को हल कर लिया। ऐसे समय में देश का मनोबल ऊँचा रखने में श्री के. आर. नारायणन ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

अमेरिका को विश्वास में लिया

राष्ट्रपति श्री के. आर. नारायणन के कार्य-काल मे देश तथा दुनिया मे कई बडी घटनाएँ घटीं। अमेरिका के राष्ट्रपति क्लिंटन भारत आए। कारगिल युद्ध हुआ। आगरा शिखर वार्ता हुई। आतंकवाद बेकाबू हो गया और लादेन के अलकायदा गुट ने 11 सितम्बर, 2001 मे अमेरिका की 110 मंजिली दो ट्रेड टावर उड़ा दीं। पाँच हजार से अधिक लोगों की जानें गई।

इसके बाद अमेरिका ने अफगानिस्तान पर हवाई हमला कर तालिबान शासन को समाप्त कर दिया और संयुक्त राष्ट्र संघ की देख-रेख मे वहाँ लोकप्रिय सरकार गठित करवा दी।

भारत पर आतंकवादी मार और बढ़ गई। जम्मू-कश्मीर की विधान सभा पर आतंकवादी आत्मघाती जत्थे ने हमला कर दिया। दो दर्जन से अधिक लोगों की जानें गई।

13 दिसम्बर, 2001 को आतंकवादियों के आत्मघाती जत्थे ने भारत की संसद पर हमला कर दिया। इसमें पाँच आतंकवादी शामिल थे। संसद के सुरक्षा बल ने इन आतंकवादियों को मार गिराया। चार सुरक्षाकर्मी शहीद हुए।

इस घटना के बाद भारत ने पाकिस्तान को चुनौती दी। भारतीय सेनाएं सीमा पर तैनात कर दी गई। पाकिस्तान ने भी जवाब में अपनी सेनाएं तैनात कर दीं। युद्ध होने के पूरे आसार बन गए।

देश के सामने यह परीक्षा की घड़ी थी। सीमाओं पर सेनाएँ आमने-सामने खड़ी थीं। दोनों देश परमाणु हथियारों से लैस है। ऐसे में जंग होने का मतलब था भारी विनाश।

भारत के राष्ट्रपति श्री क आर नारायणन ने अपनी सरकार को सलाह दी कि वह सयम से काम ले और खून-खराबे का रोके। विदेशो से कूटनीतिक संबध बढ़ाए जाएं और अपनी बात स्पष्ट की जाए। श्री नारायणन अमेरिका के राजदूत रह चुके है। इस समय वे भारत के राष्ट्रपति थे। अमेरिकी प्रतिनिधिमंडलों पर श्री नारायणन का अच्छा प्रभाव पडा। अमेरिका के राष्ट्रपति, ब्रिटेन के प्रधानमत्री तथा यूरोपीय देशों के प्रतिनिधि मडलो ने भारत का समर्थन किया और पाकिस्तान को आतंकवाद के लिए दोषी ठहराया। यह भारत की कूटनीति की भारी विजय थी।

राष्ट्रपति पद से अवकाश

25 जुलाई, 2002 को श्री के. आर. नारायणन का राष्ट्रपति के रूप मे 5 वर्ष का कार्यकाल पूरा हो गया। नए राष्ट्रपति के लिए चुनाव हो चुके थे। श्री ए पी जे. अब्दुल कलाम नए राष्ट्रपति चुने जा चुके थे।

भारत के मुख्य न्यायाधीश श्री बी. एन. किरपाल ने श्री डॉ कलाम को राष्ट्रपति पद की शपथ दिलाई। श्री के आर. नारायणन ने अपनी सीट डॉ० कलाम को सौंप दी। अवकाश ग्रहण करने के बाद वे अपने परिवार के साथ पृथ्वीराज रोड पर अपने बंगले में रहने के लिए चले गए।

श्री के आर. नारायणन का परिवार

श्री नारायणन की पत्नी का नाम श्रीमती ऊषा नारायणन है। वे म्यामार की रहने वाली है। उनकी दो बेटियाँ हैं। बड़ी बेटी का नाम चिन्ता है। वह भारतीय विदेश सेवा में अधिकारी है। छोटी पुत्री का नाम अमृता है। वह अमेरिकन मीडिया मे काम करती है।

श्रीमती ऊषा नारायणन सामाजिक कार्यो मे विशेष रुचि रखती हैं। वे बच्चो तथा महिलाओ के कल्याण से सबंधित संस्थाओ से जुड़े हैं। वे 1985 से 1992 तक 'करुणा' नामक बच्चों व महिलाओं की सस्था की राष्ट्रीय अध्यक्ष रह चुकी है। वे कहानियाँ तथा लघु कथाएँ भी लिखती है।

डॉ० के. आर. नारायणन अपना शेष जीवन सामाजिक कार्यो और लेखन में लगाना चाहते हैं। उनके जीवन का उद्देश्य जाति व वर्ग रहित समाज का निर्माण करना है। उन्हें विश्वास है कि धीरे-धीरे समाज के हालात बदलते जाएँगे और एक दिन भारतीय समाज से जातिवाद बिल्कुल समाप्त हो जाएगा। समतामूलक समाज की रचना करने का जो स्वप्न बाबा साहब अम्बेडकर, महात्मा गांधी और बाबू जगजीवन राम ने देखा था, वह अवश्य पूरा होगा।

रामविलास पासवान

(5 जुलाई, 1946)

लोक जनशक्ति के नेता तथा दलित सेना के अध्यक्ष श्री रामविलास पासवान अनेक सरकारो में केन्द्रीय मंत्री रह चुकने के बाद भारत के राष्ट्रीय नेता के रूप मे उभर कर सामने आए हैं। बहुत कम आयु से ही राजनीति मे उतरे श्री पासवान का जीवन पूरी तरह राजनीतिमय हो गया है।

श्री पासवान दलित वर्ग से आए एक ऐसे भारतीय नेता है जिन्हे समाज के सभी वर्गो का सहयोग और समर्थन मिला है। उनकी राजनीति केवल दलितो तक ही सीमित नही है, अल्पसख्यक वर्ग तथा सवर्ण जाति के आर्थिक रूप से पिछड़े हुए लोग भी उन्हे बहुत चाहते हैं।

रामविलास जी का जन्म 5 जुलाई, 1946 को गांव शहरबन्नी, ब्लाक अलौली, जिला खगडिया, बिहार में हुआ था। उनके पिता का नाम जामुन पासवान था।

दलित वर्ग मे जन्मने के कारण उन्होंने बचपन मे उसी तरह उपेक्षा और अपमान झेले जिस प्रकार दलित वर्ग के अन्य बच्चों को झेलने पडे थे। सवर्ण जाति के बच्चो के साथ खेलने का तो प्रश्न ही नहीं था। समाज में छुआछूत और जातिवाद जोरो पर था। दलितों की बस्तियां सवर्ण जाति के लोगों की बस्तियो से अलग हुआ करती थीं। दलितों के बच्चे अलग खेलते थे और सवर्णो के बच्चे अलग।

दलितों को सवर्ण जातियों और ज़मींदारो की बेगार करनी पड़ती थी। वे गाँव वालों की गदगी उठाने, मरे हुए पशुओं को ठिकाने लगाने, उनकी चमडी उतारने तथा उस चमड़े से जूते आदि बनाने के काम करते थे। समाज मे उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता था।

बड़ी जाति वालों के यहाँ जब कोई उत्सव मनाया जाता था तब दलितो को उनके सारे काम संभालने पड़ते थे। दलित वर्ग के लोग सवर्णो की सेवा मे बिछे रहते थे। मुस्कान न आते हुए भी मुस्कराते थे, हँसी न आते हुए भी उनके साथ-साथ हँसते थे. फिर भी

सवर्ण उनके दिलो म छिपे दर्द को नही पढ पाते थे

जाति के आधार पर हुए सामाजिक विभाजन ने ऊँची जाति और नीची जाति के लोगो के बीच खाई इतनी चौडी कर दी थी कि वह पट ही नही पाती थी। उस खाई को पाटने का प्रयास करने के लिए धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक मंचों से अनेक लोग समाज के बीच आए। उन्होंने बड़ी कोशिशें कीं फिर भी खाई नहीं पट पाई।

ऐसी गर्हित समाज-व्यवस्था मे श्री पासवान का बचपन बीता। पासवान की बड़ी इच्छा रहती थी कि वे सबके साथ खुलकर खेले, खुलकर बाते करे, हाथों में हाथ डालकर कुछ कदम चले। उत्सवो और त्यौहारो को खुलकर मनाए। परन्तु ऐसा नहीं हो पाता था। अपने समुदाय के बच्चों तक ही उनकी दुनिया सीमित थी।

जब तक वे स्कूल नही गए तब तक अपनी माँ, अपने पिता तथा परिवार के अन्य सदस्यो की संगत का उन्होंने सुख लिया। उन्हीं से बाहर के समाज के बारे में थोड़ा-थोड़ा जाना और मन बनाया कि बाहर की दुनिया से घुलने-मिलने मे कुछ सावधानिया बरतनी पड़ेंगी। रामविलास बचपन से ही उत्साही और उत्सुक मानसिकता वाले थे। बाहर की दुनिया को और अधिक जानने और समझने की उनकी इच्छा प्राय. बहुत तेज रहा करती थी।

शिक्षा : रामविलास ने प्राइमरी शिक्षा खगरिया मे प्राप्त की। गाँव में कोई स्कूल नही था। खगरिया तक उन्हें दूसरे बच्चो के साथ पैदल ही स्कूल जाना पडता था। उनकी आगे की शिक्षा भी खगरिया मे ही हुई। खगरिया के कोशी कॉलेज से उन्होने एम. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की।

कानून की शिक्षा : रामविलास की पढ़ने में बड़ी रुचि थी। गाँव में पैदा होने के बावजूद उच्च शिक्षा प्राप्त करना उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। वे यह दिखाना चाहते थे कि छोटी जाति के होते हुए भी वे बडी जाति वालो की तरह ऊँची शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं और उनकी तरह जीवन में बड़े-बड़े काम कर सकते हैं।

उन दिनो गाँवो में मुकदमेबाजी बहुत हुआ करती थी। सवर्ण जातियों के सामतवादी लोग दलितों को उधार देकर उन्हे फँसा लेते थे। इसके बदले मे उन्हें या तो उनके घरों मे जाकर बँधुवा मजदूरी करनी पड़ती थी या फिर अपने छोटे-छोटे खेतो या जमीन से हाथ धोने पड़ते थे। सामत और जमींदार कानून अपनी जेब मे रखते थे और पुलिस अपनी बगल में। जो वे चाहते थे वही होता था। ऐसे में दलितो तथा पिछडों को न्याय मिल ही नही सकता था। रामविलास पासवान ने जब से होश सँभाला था वे यह अन्याय देख रहे थे। अपने माता-पिता, परिवारजनों तथा परिवेश के लोगो से उन्होने यह जाना था कि उनकी जाति के लोग सवर्णो के दबाव में जीते हैं। देश तो आजाद हो चुका है, परन्तु दलितो और पिछड़ों की आजादी सवर्णो के सामती चरित्र की गुलाम है। उन्हें तब तक मुक्ति नहीं मिल सकती जब तक उनके अदर का स्वाभिमान न जागे और वे एकजुट होकर अपने अधिकारो के लिए न लड़ें।

पीढी-दर-पीढी दबावों में जीते आ रहे पिछड़ो और दलितों के लिए यह बात इतनी

आसान न थी। इसके लिए आवश्यकता थी सशक्त नेतृत्व की जो उनमे नया आत्मविश्वास पैदा कर सके।

कांग्रेस नेता बाबू जगजीवन राम और भीमराव अम्बेडकर ने अपनी-अपनी शैली मे दलितो व पिछडो के अधिकारों के लिए लडाई लड़ी थी। भीमराव अम्बेडकर ने दलित समाज के विकास की ठोस योजना तैयार की थी। स्वाधीन भारत के संविधान में दलितो को विशेपाधिकार एव आरक्षण दिलवाकर अम्बेडकर ने उनमे अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा की थी तथा उनका मनोबल ऊँचा किया था। बाबू जगजीवन राम ने कांग्रेस जैसे विशाल राजनैतिक मच से दलितो को जोडा था और उनमे नया जोश पैदा किया था। दलितो को राष्ट्र की मुख्य धारा में लाने का श्रेय बाबू जगजीवन राम को है।

रामविलास जी ने जब स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की तब उनका मन नई उमंगा और इच्छाओं से भरा था। वे दलित जाति के लिए कुछ ऐसा करना चाहते थे जिससे उन्हे सामाजिक न्याय मिले और उनकी शक्तियों का विकास हो। रामविलास जी ने कानून की पढ़ाई कर वकील बनने का फैसला कर लिया। उन्होने पटना विश्वविद्यालय मे एल.एल.बी. पाठ्यक्रम में दाखिला ले लिया।

एल.एल.बी करने के साथ-साथ उनकी रुचि पत्रकारिता और राजनीति में भी पैदा हो गई। उन्होने विभिन्न समाचार पत्रों मे दलितो के अधिकारो तथा उनकी दयनीय दशा के बारे मे लेख लिखने आरंभ कर दिए। उनके विचारों के केन्द्र मे समाज के दबे-पिचे लोग ही रहते थे। युवा रामविलास को पिछड़े समाज के उद्धार की लगन लगी थी।

राजनीति में प्रवेश

रामविलास जी अपने छात्र जीवन में ही राजनीति से जुड़ गए थे। कॉलेज के चुनावो मे वे आगे बढ़कर हिस्सा लेते थे और छात्रों की समस्याओं के समाधान के लिए सघर्ष करते थे। नेतृत्व के गुण उनमे छात्र-जीवन मे ही आ गए थे।

कानून की पढ़ाई के साथ ही वे राजनीति में सक्रिय हो गए। वे समाजवादी विचारधारा से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने संयुक्त समाजवादी पार्टी की सदस्यता ग्रहण कर ली और सक्रिय राजनीति मे आ गए। जन-समूह को सम्बोधित करने तथा अपने राजनैतिक व सामाजिक विचारो को जनता के सामने रखने का गुण उनमें स्वतः ही उत्पन्न हो गया था। सामंतवादी विचारों के वे घोर विरोधी थे। जातिवाद और छुआ-छूत से उन्हें सख्त नफरत थी। युवा रामविलास जब मत्र पर खड़े होकर सामंतवादियो और पूंजीवादियों पर बरसते थे तो पिछड़े और शोषित लोगों में हर्ष की लहर दौड़ जाती थी। वे खड़े होकर नारे लगाने लगते थे—रामविलास जिन्दाबाद...रामविलास जिन्दाबाद।

रामविलास उन्हें सांत्वना देते हुए कहते—"सामंतवादी और पूंजीवादी हमारे घोर शत्रु है। इन लोगों ने गरीब और मेहनतकश जनता का खून चूसा है। ये अपने ऊँचे-ऊँचे महलों में बैठकर झोपड़ी वालों पर राज करते हैं, उनकी झोपड़ियों में आग लगवा कर अट्टहास

करते हैं। खेतिहर किसानों और मजदूरों की खून-पसीने की कमाई पर ऐश करते है। उनके तन पर कपडे न हो, उनके पेट में रोटी न हो, इन्हें इमसे कोई मतलब नहीं। ये उन्हे पूरा वेतन नहीं देते, ऊपर से बेगार लेते है। इस मुल्क में अब यह सब नहीं चलेगा। दलित और शोषित अब जाग उठे है। वे अपने हक के लिए लड़ना जानते है। वे आगे बढ़कर उनसे अपना हक छीनेंगे। अब इस देश मे कुछ लोगो की मनमानी नहीं चलेगी। मेहनतकश मजदूर को न्याय देना होगा। दलितो को उनके अधिकार देने होंगे। हमारा सविधान दलितो के अधिकारो की घोषणा कर चुका है, फिर उन्हे न्याय क्यो नहीं मिल पा रहा ? कौन है वे लोग जो उन्हें उनके अधिकार नहीं लेने देते ? कौन है वे लोग जो आजादी के उजाले को, विकास के लाभों को गरीब के घर मे पहुँचने से रोक रहे है ? हम यह सब नहीं होने देंगे। हम उन लोगो के चेहरे से नकाब खींचकर उन्हें समाज के सामने नंगा कर देंगे। गरीब अब भूखा नहीं सोएगा। हर घर मे दीपक जलेगा, हर घर मे उजाला होगा। हर मेहनतकश के साथ न्याय होगा। भाइयो और बहनों ! मै कहता हूँ उठो और अपने अधिकारों को लेने के लिए चट्टान की तरह अड़कर खडे हो जाओ।"

बिहार विधानसभा के सदस्य चुने गए

23 वर्ष की आयु तक आते-आते पासवान राजनीति मे इतने चर्चित हो गए थे कि पार्टी ने उन्हें बिहार विधानसभा के लिए अलौली चुनाव क्षेत्र से टिकट दे दिया। श्री पासवान ने चुनाव की राजनीति में पहला कदम रखने के साथ ही इतिहास बनाया। उन्होंने अपने क्षेत्र में चुनाव सभाएं आयोजित कीं और खुलकर अपने विचार रखे। बिहार सवर्ण जातियों के पिछड़ी जातियो पर अत्याचारों के लिए बदनाम क्षेत्र है। 1969 में तो स्थितियां बहुत ही भयावह थीं। सामंती ताकतें दलितों को दबाए रखने के लिए एकजुट थीं। बाबू जगजीवन राम बिहार के दलित नेताओं के सरगना थे। परन्तु वे कांग्रेस पार्टी मे थे और इन्दिरा जी की सरकार में वरिष्ठ केन्द्रीय मंत्री थे। अब वे राष्ट्रीय नेता थे और बिहार के लिए अधिक समय नहीं दे पाते थे। कांग्रेस 1947 से सत्ता मे थी। पिछले 22 वर्षों में कांग्रेस की दलित विकास की नीतियों से बिहार के दलित सतुष्ट नहीं थे। लोगों को बाबू जी से शिकायतें रहने लगी थीं। अति गरीब और अति पिछड़े दलितो की हालत बहुत खराब थी। उन्हें आजादी का कोई लाभ नही मिल पाया था।

रामविलास पासवान ने दलित जनता की इस स्थिति को समझ लिया और वे शोषण विरोधी संघर्षशील पार्टी में शामिल होकर चुनाव के मैदान में उतरे। उनकी चुनाव-सभाओं मे दलित युवाओ की भीड़ उमड़ पड़ती थी। महिलाए और बूढ़े भी बड़ी संख्या में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते थे। सबकी आँखों में नई चमक उभर आती थी। पासवान ने लोगों को विश्वास दिलाया कि वे भारत में नया सवेरा लाएंगे। गरीब और पिछड़े लोगो के तन पर कपडे होंगे, उन्हें खाने को दो वक्त की रोटी और रहने को मकान जरूर मिलेगा। उन्होंने अपनी एक सभा मे कहा—"मै बाबा साहब अम्बेडकर के आदर्शों पर चलने की शपथ

लेकर राजनीति में उतरा हू, जो काम अधूरे पड़े है उन्हे पूरा करूगा आजादी के 22 वर्ष बाद भी गरीबो की झोपडियो पर फूस नहीं है। खाने के लिए दो वक्त रोटी नहीं मिल पाती, दवा नही मिल पाती, अधनगे घूमते बुजुर्गो को देखकर मेरा सिर शर्म से झुक जाता हे। लानत है मुझे जो मैंने यह तस्वीर न उलटी। मै राजनीति मे इसलिए नहीं आया हूँ कि मेरी जय-जयकर हो, लोग फूल मालाएँ पहनाएं और मै खुश हो जाऊ। मै इसलिए आया हूँ कि बूढो और गरीबो की आँखो के आँसू पोछू। स्त्रियों के दुख-दर्दो को जानूँ और उन्हे दूर करने के लिए अपने आपको दांव पर लगा दूँ। आप लोग मुझे विधान सभा में भेजकर देखो, मै आपके सारे सपने पूरे करूंगा।''

पासवान की युवा वाणी में जादू था। दलित जनता उनके पीछे उमड़ पडी। बूढो ने अपना बेटा और पोता समझ कर वोट दिया, माताओ ने अपने बेटो की तरह पासवान पर ममता लुटाई और युवा वर्ग ने अपना असली नेता मानकर उन्हे वोट दिए।

परिणाम आए तो सब चकित रह गए। रामविलास पासवान भारी मतों से विजयी हुए थे।

संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के संयुक्त सचिव

बिहार विधान सभा मे पहुँचते ही पासवान राजनीति में छा गए। उनकी अपनी पार्टी मे उनका महत्त्व और बढ गया। पार्टी ने जितनी उनसे उम्मीदे लगाई थीं उससे कहीं ज्यादा उन्होने करके दिखाया। पार्टी नेतृत्व ने उन्हे गले से लगा लिया। कार्यकर्ताओ ने उन्हे हाथो हाथ उठा लिया। पासवान की लोकप्रियता और उनकी कार्यकुशलता व संगठन क्षमता को देखकर पार्टी ने उन्हे सयुक्त सचिव का दायित्व सौंप दिया।

अब पासवान के कंधों पर तीन जिम्मेदारियां आ गई—एक, अपने विधायक दायित्वो का ठीक से निर्वाह करना, दूसरा, पार्टी के प्रचार एवं विस्तार के लिए जनता के बीच जाकर सभाएं करना और पार्टी की नीतियों व विचारो से जनता को अवगत कराना तथा तीसरा, दलित व पिछड़ी जनता से उन्होंने जो वादा किया था उसे पूरा करने के लिए देश व प्रात की सरकारो पर दबाव डालना।

पासवान अपने मन्तव्य में सफल होते गए। उन्हें तीनों मोर्चो पर भारी सफलता मिली।

बिहार लोकदल के महामंत्री

1971 में पाकिस्तान के साथ युद्ध मे भारत को भारी सफलता दिलाकर तथा पाकिस्तान के दो टुकड़े कर बंगलादेश को जन्म देने के बाद श्रीमती इन्दिरा गांधी देश की जनता मे लोकप्रिय हो गई। उनकी लोकप्रियता कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओ को इतनी खली कि वे इन्दिरा जी के विरुद्ध एकजुट हो गए। कांग्रेस का विभाजन हुआ और इन्दिरा कांग्रेस बनी। विभाजन और विरोध की इस प्रक्रिया में चौधरी चरण सिह कांग्रेस छोड़कर बाहर निकल आए और उन्होंने 'लोकदल' नामक राष्ट्रीय राजनैतिक दल का गठन किया।

रामविलास पासवान लोकदल मे शामिल हो गए उनकी पार्टी का लाकदल मे विलय हो गया था। 1974 में बिहार लोकदल मे पासवान इतने उभरे हुए राजनयिक के रूप मे सामने आए कि उन्हे बिहार लोकदल का महामंत्री पद सौंप दिया गया। 1974 से 1977 तक रामविलास जी बिहार लोकदल के महासचिव रहे। तीन वर्ष की अवधि मे उन्होंने पूरे बिहार मे विभिन्न स्थानो पर सभाए करके, पद यात्रा और सपर्क अभियान चलाकर लोगो के दिलों को जीता और लोकदल का बिहार मे विस्तार किया। किसानो, मजदूरों और गरीबो का हित साधने का संकल्प लेकर उभरा लोकदल बिहार में तेजी से फैला और अपना आधार मजबूत करता चला गया।

1975 मे श्रीमती इन्दिरा गाधी ने आपातकाल की घोषणा कर देश मे राष्ट्रपति शासन लगा दिया और सारे विपक्षी नेताओ को गिरफ्तार कर जेलों में डाल दिया। रामविलास पासवान भी जेल में डाल दिए गए।

दो वर्ष तक आत्ममथन का दौर चला और इन्दिरा काग्रेस के विरुद्ध राजनैतिक ध्रुवीकरण की प्रक्रिया तेज हो गई।

1977 में नए चुनावो की घोषणा हुई। इन चुनावो मे भाग लेने के लिए सभी विपक्षी दल एक हो गए और उन्होने 'जनता पार्टी' नामक राष्ट्रीय दल मे अपना विलय कर दिया। लोकदल ने भी जनता पार्टी में अपना विलय कर दिया।

1977 के चुनावो मे श्री पासवान जनता दल के प्रत्याशी के रूप में चुनाव के मैदान मे उतरे।

सासद के चुनाव में विश्व रिकार्ड बनाया

1977 के चुनावों मे देश की राजनीति ने एक नया मोड़ लिया था। वामपंथी दलो को छोड़कर शेष सभी राजनीतिक दल इन्दिरा काग्रेस के खिलाफ एकजुट होकर जनता पार्टी के बैनर के नीचे चुनाव अभियान मे उतरे।

रामविलास पासवान ने अपने चुनाव क्षेत्र मे इतनी लोकप्रियता हासिल की कि क्षेत्र के लगभग सारे वोट उन्हीं की झोली में आ गिरे। श्री पासवान अपने विरोधी प्रत्याशी के मुकाबले 4 लाख 67 हजार मतो से विजयी हुए। उनकी यह जीत भारतीय लोक-तंत्र मे ही सबसे बडी जीत नहीं थी, अपितु विश्व के सभी देशों के उन्होंने रिकार्ड तोड डाले। 1977 में वे विश्व के सबसे अधिक मत प्राप्त करने वाले सांसद के रूप मे विख्यात हुए और गिनीज़ वर्ल्ड बुक में उनका नाम दर्ज हुआ।

पासवान की यह विजय दलित जनता का महासम्मान था। भारतीय लोकतंत्र में दलित व पिछड़ी जाति के प्रत्याशी को मिला यह आदर सचमुच बेजोड थी। इस उपलब्धि ने पासवान को राष्ट्रीय राजनीति के शीर्ष पर ला खडा किया। मात्र 31 वर्ष की आयु मे वे सबसे अधिक लोकप्रिय सासद के रूप मे देश में स्थापित हो गए।

अब तो पासवान का आत्मविश्वास बहुत बढ गया। उनकी वाणी में इतना जोश आ

गया कि उनकी सभाओं मे लाखो की भीड़ जुटने लगी। उनके विचार जानने के लिए गरीब और पिछडे वर्ग के लोग ही नहीं सभी जातियो और धर्मो के लोगो का जमघट लगने लगा।

जनता पार्टी के राष्ट्रीय महामंत्री

1977 में जनता पार्टी के वरिष्ठ नेता श्री मोरारजी देसाई भारत के प्रधानमंत्री बने। जनता पार्टी का आकार बहुत बड़ा था और उसमे बडी उम्र के नेताओ का बडा जमावडा था। ऐसे में रामविलास पासवान जैसे 31 वर्षीय युवा सासद का मत्रि-मंडल मे लिया जाना सभव नहीं था। यही कारण था कि पासवान को उस समय मत्रिमडल मे न लिया जा सका। परन्तु उनकी लोकप्रियता किसी से छिपी न थी।

पासवान इस तथ्य को जानते थे, उन्होंने मंत्री बनने की महत्त्वाकांक्षी पाली ही नही थी। पासवान की एक विशेषता यह भी है कि वे अपनी दलित विकास की जमीन को कभी नही छोडते। मत्री पद को वे इतना महत्त्वपूर्ण नहीं मानते जितना कि दलितों और पिछडो के प्रति अपने दायित्व को मानते है। किसी भी कीमत पर वे अपना यह दायित्व नहीं त्याग सकते।

1977 में भारी सफलता प्राप्त करने के बाद श्री पासवान दलितों और पिछड़ों के उत्थान कार्य मे लग गए। उनके कधों पर इस समय दो ही जिम्मेदारियां थी—एक, अपने चुनाव क्षेत्र तथा दलीय आधार को दुरस्त रखना; दूसरा, गरीबों को लाभ पहुँचाने वाली योजनाओ को लागू करवाना। श्री पासवान पूरे मनोयोग से इन कामो मे जुट गए।

1979 में चौधरी चरण सिंह अपने घटक के साथ जनता पार्टी से अलग हो गए और मोरारजी देसाई की सरकार अल्पमत में आ गई। पार्टी संसद मे विश्वास मत प्राप्त न कर सकी और मोरारजी भाई को प्रधानमत्री पद से अलग होना पड़ा। मोरारजी की सरकार गिरते ही चौधरी चरण सिह ने इन्दिरा कांग्रेस के समर्थन के सहारे सरकार बनाने का दावा राष्ट्रपति के सामने पेश कर दिया। राष्ट्रपति ने चरण सिह का दावा स्वीकार कर लिया और उन्हे प्रधानमंत्री पद की शपथ दिला दी।

परन्तु निश्चित अवधि के अन्दर चौधरी चरण सिह संसद मे अपना बहुमत साबित नहीं कर सके। इन्दिरा काग्रेस के सजय गुट ने चौधरी चरण सिह को समर्थन का वादा तो कर दिया था, परन्तु उसने यह वादा नहीं निभाया। यह तो मोरारजी भाई की सरकार गिराने और विपक्ष को छिन्न-भिन्न करने की एक सोची-समझी चाल दी। मोहरा ठीक पडा और चाल सफल हो गई।

विपक्ष छिन्न-भिन्न हो गया। चरण सिंह फिर से अपने लोकदल में सिमट कर रह गए और उन्हें बहुमत साबित करने के लिए समर्थन नहीं मिल पाया।

राष्ट्रपति ने चरण सिह को कार्यकारी प्रधानमंत्री बने रहने की सलाह देते हुए अगले चुनावों की घोषणा करवा दी।

1980 में फिर से चुनाव हुए। इस समय श्री पासवान लोकदल के साथ थे। राजनैतिक

ध्रुवीकरण बिखर चुका था परन्तु पासवान का जनाधार ज्यो का त्यो था पासवान की राजनैतिक जमीन मजबूत थी, उसे कोई ताकत उखाड़ नहीं सकती थी।

सातवीं लोकसभा के लिए 1980 मे वे फिर भारी मतो से जीतकर लोकसभा में पहुँचे। 1980 से 1984 तक वे लोकसभा के सदस्य रहे। इस अवधि मे उन्होने पिछडों और दलितो के लिए बहुत काम किए। इस अवधि में केन्द्र मे काग्रेस की सरकार थी। पासवान विपक्ष मे थे। परन्तु वे जनता के बीच बराबर सक्रिय थे और पिछड़ों के लिए नीतियो को प्रभावित करने और दलितो के हितो से जुड़े कानून बनवाने में सफलतापूर्वक जुटे रहे।

लोकदल के राष्ट्रीय महामंत्री

1985 मे श्री पासवान लोकदल के राष्ट्रीय महामत्री चुने गए। यह वह दौर था जब केन्द्र में काग्रेस का शासन था और श्रीमती इन्दिरा गाधी की हत्या हो चुकी थी। उनके बडे पुत्र श्री राजीव गाधी भारत के प्रधानमत्री थे।

देश में नेहरू-इन्दिरा परिवार के प्रति सहानुभूति की लहर थी। श्री राजीव गाधी देश के लोकप्रिय प्रधानमत्री का आदर पा रहे थे।

ऐसे समय श्री पासवान ने लोकदल को मजबूत करने के लिए महासचिव की कमान सभाली। यद्यपि चौधरी चरण सिह के मोरारजी विरोध के कारण लोकदल की साख गिर चुकी थी, परन्तु श्री पासवान जैसे सदाबहार नेता की साख अब भी जीवित थी और सदा जीवित रहती थी। इसी साख का लाभ उठाने के लिए पार्टी ने 39 वर्षीय युवा सासद श्री रामविलास पासवान को पार्टी का महासचिव बना दिया।

पासवान ने पार्टी को लाभ पहुँचाने का प्रयास किया। अपने मजबूत जनाधार के कारण उन्हे काफी हद तक सफलता मिली, परन्तु अब लोक दल के दिन लद चुके थे। वह राष्ट्रीय पार्टी के रूप में अधिक दिन तक नहीं चल सकता था। अत श्री पासवान को उतनी सफलता नहीं मिली जितनी किसी अन्य दल में होने पर मिलती।

जनता पार्टी के राष्ट्रीय महासचिव

1986 मे श्री रामविलास पासवान समझ गए कि वे गलत नाव में सवार हो गए है। अत. वे डूबने वाली नाव को छोडकर सत्ता की ओर मुँह करके तैरने वाली नाव मे आ गए। यह नाव थी 'जनता पार्टी।' 1987 मे श्री रामविलास पासवान जनता पार्टी के महासचिव बने। पूरे जोश के साथ उन्होंने जनता पार्टी के लिए काम करना शुरू कर दिया। 1987 से 1988 तक वे जनता पार्टी के राष्ट्रीय सचिव रहे।

परन्तु सच तो यह है कि इन दोनो मचो ने श्री रामविलास पासवान के वोट बैंक को महत्त्व दिया था। अधिक जनाधार वाले युवा नेता की उभरती ताकत के सहारे अपनी-अपनी किश्तियो को पार लगाने की जुगत भिड़ाई थी। श्री पासवान की आयु अब चालीस को पार कर चुकी थी। वे युवा नेता अवश्य थे, परन्तु अनेक संघर्षो को झेलते-झेलते भारतीय

राजनीति के घाघ नेताओं के दाव-पेचों मे उलझकर निकलते-निकलते बहुत कुछ सीख चुके थे।

वे जान गए थे कि भारतीय राजनेता अपनी-अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के लिए हाथ-पैर मार रहे है। एक दर्जन से अधिक बूढे नेता प्रधानमत्री पद का ख्वाब देख रहे हैं और लगभग इतने ही अधेड उम्र के नेताओं की प्रधानमंत्री की कुर्सी पर नजर है। ऐसे मे राजनैतिक ध्रुवीकरण हो ही नही सकता। यह वह दौर था जब सबको अपनी-अपनी बचाने की पडी थी। देश के सबसे कम उम्र के नेता श्री राजीव गाधी को प्रधानमंत्री के पद पर देखकर विपक्ष मे बैठे बडी उम्र के नेताओ को बड़ी परेशानी हो रही थी।

ऐसे मे श्री पासवान की राजनैतिक स्थिति भी डावाडोल हो गई थी। उन्हें समझ नही आ रहा था कि वे किस नाव में पैर रखे, किस मच के साथ जुड़े, किस संगठन पर विश्वास करें ?

इस सबके बावजूद उनके पास एक बडी ताकत थी और वह था उनका अटूट जनधार। श्री पासवान जिस समाज से आए थे, वह उनमें पूरा विश्वास रखता था। राजनैतिक विवशताओ के कारण यदि उन्हें पाला बदलना भी पड़े तब भी वह उनका साथ छोड़ने वाला नहीं था। श्री पासवान एक उभरते हुए सशक्त नेता थे। वे दलित समाज के लिए आशा की किरण थे। राजनैतिक स्वार्थो की आपा-धापी के युग में वे अपने नेता का हाथ कस कर पकड़े हुए थे।

राष्ट्रीय मोर्चा के सचिव

श्री पासवान जनता पार्टी के सगठन के लिए कार्य कर रहे थे और राजीव गाधी की सरकार मे वित्त मत्री के रूप में श्री विश्वनाथ प्रताप सिह भारतीय अर्थव्यवस्था की गहराइयो की टोह ले रहे थे। श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह इन्दिरा जी के इतने निकट रहे थे कि वे राजनीति के अनेक प्रभावी दाव-पेच सीख गए थे। अपनी वफादारी और मित्रता के बल पर वे राजीव गांधी के इतने निकट पहुँच गए कि उनसे कुछ भी छिपा न रहा।

यकायक उनके हाथ एक ऐसा यंत्र आ गया जिससे युवा प्रधानमंत्री श्री राजीव गाधी की सरकार को एक ही झटके मे उलटा जा सकता था। श्री सिह ने सरकार उलटने की पूरी तैयारी कर ली। उन्होने राजीव सरकार द्वारा किए गए बोफोर्स तोप सौदे में दलाली का मामला उछाल दिया। आरोप लगाया गया कि श्री राजीव गांधी के इटली स्थित रिश्तेदारों ने तोपों का सौदा करवाया और प्रधानमंत्री राजीव गांधी को विश्वास मे लेकर उन्होंने मोटी रकम खाई। राजीव गांधी को भी बोफोर्स रिश्वत काड मे घसीट लिया गया।

ससद में मामला इतना तूल पकड गया कि विपक्ष सरकार पर हावी हो गया। मौके का फायदा उठाकर श्री विश्वनाथ प्रताप सिह ने कांग्रेस सरकार पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाते हुए वित्त मत्री पद से इस्तीफा दे दिया। उन्होंने काग्रेस छोड़ दी और कांग्रेस ने उन्हे छोड़ दिया। श्री सिह ने जनता दल का गठन कर लिया।

अब श्री सिंह ने जनता पार्टी की शैली में विपक्ष के ध्रुवीकरण का एक बार फिर प्रयास किया। भ्रष्टाचार के मुद्दे पर उन्होंने सरकार छोड़ी थी। अत भारतीय जनता में वे एक ऊँचे आदर्श वाले नेता के रूप मे लोकप्रिय हो गए। उनकी लोकप्रियता का चढता ग्राफ सभी विपक्षी नेताओं की समझ मे आ गया। कांग्रेस से बदला लेने की इच्छा विपक्ष मे बलवती हो उठी।

श्री सिंह ने अपने चारों ओर विपक्ष का खुला समर्थन देखा तो उन्होंने 'राष्ट्रीय मोर्चा' नामक वैकल्पिक राजनैतिक मंच के लिए पहल करनी शुरू कर दी।

श्री रामविलास पासवान ने 5 दिसम्बर, 1989 को श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार मे केन्द्रीय श्रम एव कल्याण मंत्री के रूप में शपथ ग्रहण की।

श्रम मंत्री के रूप में पासवान की भूमिका

श्री रामविलास पासवान 43 वर्ष की आयु में पहली बार केन्द्रीय मन्त्रिमंडल के सदस्य बने और उन्हे श्रम मन्त्रालय जैसा संवेदनशील मन्त्रालय दिया गया। श्री पासवान के समाजवादी विचारों तथा गरीबों व मजदूरों के प्रति उनके रुझान को देखते हुए यह मन्त्रालय उन्हें सौंपा गया था।

श्री पासवान ने इस मन्त्रालय के साथ न्याय किया। यद्यपि वे केवल ग्यारह महीने तक इस मन्त्रालय मे रह पाए। विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार आपसी राजनैतिक मतभेदो के कारण अधिक दिन नहीं चल सकी, इसीलिए श्री पासवान की सेवाओं की अवधि छोटी रही, परन्तु इस बीच उन्होंने मजदूरों के प्रति अपने दायित्वों का जिस संजीदगी से निर्वाह किया वह आज भी याद किया जाता है। उन्होंने अपने मंत्रालय मे अथक प्रयत्नों से मजदूर-हितैषी नीतियाँ बनवाई और उन्हें लागू करवाया। न्यूनतम वेतनमान और काम के अधिकार को उनके मन्त्रालय ने विशेष महत्त्व दिया। राजनैतिक अस्थिरता को देखते हुए श्री पासवान पूरी तरह सावधान थे। उन्हें आभास था कि सरकार किसी भी समय गिर सकती है। भारतीय जनता पार्टी के राजनैतिक विचार श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह तथा उनके सहयोगी दलों के विचारों से मेल नहीं खाते थे। अतः अधिक दिन तक गठबंधन संभव नहीं था।

10 नवम्बर, 1990 को श्री वी पी. सिंह की सरकार गिर गई और श्री पासवान फिर विपक्ष की राजनीति में आ गए।

रेलमंत्री के रूप में लोकप्रिय

9 जून, 1996 को श्री रामविलास पासवान श्री देवगौड़ा सरकार मे केन्द्रीय रेलमंत्री बने। श्री सतपाल महाराज केन्द्रीय राज्य मंत्री बनाए गए थे। श्री पासवान ने लगभग दो वर्ष तक रेलमंत्री के रूप मे भारत सरकार को अपनी सेवाएं दी। श्री पासवान ने इस अवधि में गरीबों और पिछड़ों को रेलवे में रोजगार दिलाने मे विशेष भूमिका अदा की।

रेलवे कर्मचारियों को चिकित्सा-सुविधाएं दिलवाने तथा अन्य अनेक लाभ पहुँचाने में श्री पासवान सबसे आगे रहे। उन्होंने अनेक नई रेलवे लाइनें बिछवाई तथा देश भर मे रेलवे विभाग के नवीनीकरण पर जोर दिया। विदेशो से विशेष प्रकार की बोगिया खरीदने तथा अपने देश में विशेष प्रकार की बोगियों तथा इंजनो का निर्माण कराने के मामलो में श्री पासवान ने विशेष रुचि ली।

श्री पासवान एक उदार मत्री के रूप मे जाने जाते है। जब वे रेलमत्री थे तब उन्होने राष्ट्रीय स्तर की अनेक सामाजिक सस्थाओं के सम्मेलनो तथा समारोहों को विशेष रेल-सुविधाएं प्रदान कीं। श्री सतपाल महाराज की सस्था मानव उत्थान सेवा समिति द्वारा आयोजित 'राष्ट्रीय मानव धर्म सम्मेलन' का रामलीला मैदान दिल्ली मे प्रतिवर्ष नवम्बर मे वार्षिक सम्मेलन होता है। श्री पासवान जब केन्द्रीय रेल मंत्री थे तब उन्होने इस सम्मेलन मे भाग लेने के लिए देश भर से आने वाले यात्रियों के लिए रेल भाड़े में विशेष छूट की व्यवस्था की।

केन्द्रीय दूरसंचार एवं सम्पर्क मंत्रालय

सितम्बर 1999 मे श्री अटल बिहारी वाजपेयी 'नेशनल डैमोक्रेटिक फ्रट' के ससदीय दल के नेता चुने गए और उन्होने प्रधानमंत्री पद की शपथ ली। श्री वाजपेयी ने श्री पासवान को केन्द्रीय दूरसंचार एव सम्पर्क मत्रालय का कार्य भार सौपा।

श्री पासवान ने इस मत्रालय का दायित्व संभालते ही अनेक फैसले लिए जिससे मत्रालय के कामों में गति आ गई। दूरसचार विभाग लापरवाही के लिए मशहूर हो चुका था। समय पर काम न करके देना उसकी आदत बन गई थी। श्री पासवान ने मंत्रालय सभालते ही सबसे पहले विभाग के ऊपर से लेकर नीचे तक के सभी कर्मचारियों के लिए टेलीफोन सेवा निशुल्क कर दी। कर्मचारी बहुत दिनो से इस सुविधा की माग कर रहे थे। यह कदम उठाकर श्री पासवान ने विभागीय कर्मचारियों का दिल जीत लिया। कर्मचारियों का उत्साह बढ़ गया। उन्होने पूरे मन से काम करना शुरू कर दिया। भारतीय टेलीफोन विभाग के समानातर अनेक विदेशी तथा देशी कम्पनिया मोबाइल फोन सुविधा के बाजार पर छाई हुई थीं। श्री पासवान ने भारतीय टेलीफोन विभाग के अतर्गत कई ऐसी योजनाएं लागू की जिनसे भारतीय टेलीफोन विभाग का मोबाइल फोन बहुत सस्ता हो गया। कालों की दर बाजार की दरो से बहुत नीची थी। मजबूर होकर निजी कम्पनियों को भी अपनी दरें घटानी पड़ीं। नतीजा यह हुआ कि भारतीय उपभोक्ता की जेब पर पडने वाला आर्थिक बोझ आधा रह गया।

पूरे जन-सम्पर्क बाजार में इतना बड़ा परिवर्तन लाने और निजी कम्पनियों को अपनी दरों में 50 प्रतिशत तक कमी करने के लिए सख्त कदम उठाने जैसा काम श्री रामविलास पासवान जैसा उदार मंत्री ही कर सकता था। श्री पासवान अपने मत्रालय के माध्यम से जन-सेवा करने तथा जनता को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाने के लिए पूरे देश में जाने

जाते है

परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं लगाया जाना चाहिए कि वे मंत्रालय को घाटा पहुँचाते रहे है। सच्चाई तो यह है कि मंत्रालय जितना अधिक सक्रिय होता है, लोकप्रिय है और जनता के लिए सहयोगी होता है, जनता उतनी ही अधिक उससे जुड जाती है। भारत एक बड़ी आबादी वाला देश है। जनता के बीच लोकप्रियता हासिल करने वाला मंत्रालय कभी घाटे में रह ही नही सकता। यह तो मंत्री महोदय पर निर्भर करता है कि वे विभाग को जनता के लिए खोल पाते है या नही। श्री पासवान एक ऊर्जावान और उत्साही नेता है। अपनी उदारता के कारण चाहे उन्हें आलोचना ही क्यों न झेलनी पड़े, वे जनता को अपने विभाग से सीधा जोड़ देते है। फिर जनता विभाग से फायदा उठाती है और विभाग जनता से।

राजनीतिक संघर्ष और कष्ट

श्री रामविलास पासवान दलितो, पिछडों और गरीबो के हित की राजनीति में विश्वास रखते हैं। उनका रास्ता कष्टों से भरा रहा है। संघर्ष उनके लिए सदा अनिवार्य रहा है। अपने सामाजिक कार्यो तथा गरीबों को न्याय दिलाने के लिए किए गए संघर्षो के कारण उन्हें अनेक बार जेल जाना पड़ा।

श्री पासवान ने बिहार मे भूमि हड़पो आंदोलन चलाया था। 23 वर्षीय श्री पासवान छात्र राजनीति से ही सीधे राजनीति में आ गए थे। छात्र जीवन में ही उन्होने पिछड़ो व दलितो को गरीबी के चगुल से मुक्त कराने का बीड़ा उठा लिया था। भूमि हड़पो आदोलन बड़े जोरो से चला। श्री पासवान की अगुवाई मे बिहार मे पिछड़े समाज के युवकों ने आगे बढकर पुलिस की लाठियां खाई और आदोलन जारी रखा। यह आदोलन गरीबों को बलपूर्वक सताने वाले, उनका सब कुछ हड़प कर जाने वाले बडे-बड़े सामतों के खिलाफ था। इन लोगों ने सीमा से अधिक भूमि पर कब्जा कर रखा था जबकि करोडो लोगो के पास भूमि का एक टुकडा तक नहीं है। खेतिहर मजदूरों तथा शोषितो को जमीन दिलाने के उद्देश्य से यह आदोलन शुरू किया गया। श्री पासवान के नेतृत्व में ऐसी जमीन पर कब्जा किया गया। इसके लिए सामतो और सरकारी पुलिस दोनों की चोट श्री पासवान तथा उनके साथियों को सहनी पडी। परन्तु उन्होंने हार नही मानी। बड़ी-बड़ी चोटे खाने के बावजूद वे आगे बढते गए। इस आदोलन मे सक्रिय रूप से भाग लेने तथा इसका नेतृत्व करने के जुर्म में श्री पासवान को लगभग दो वर्ष की सजा हुई। वे 1969 से 1971 तक भागलपुर केन्द्रीय कारागार में बन्द रहे।

दूसरा बडा आदोलन 1974 में श्री जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व मे हुआ था। इसका केन्द्र भी बिहार था। श्री पासवान ने इस आदोलन मे आगे बढ कर हिस्सा लिया। श्रीमती इन्दिरा गांधी की तानाशाही तथा गलत नीतियों के विरुद्ध श्री पासवान खुलकर खड़े हो गए और उन्होंने सबसे आगे आकर आदोलन में श्री जयप्रकाश नारायण का साथ दिया।

जून 1975 मे श्रीमती गाधी ने आपातकाल की घोषणा कर सभी आदोलनकारी नेताओ को जेल मे डाल दिया था। श्री पासवान भी जे.पी. के साथ जेल गए और पूरे 15 महीने तक उन्होने 'मीसा' के तहत सजा काटी।

चालीस बार जेल गए : इसके अलावा समाज के कमजोर वर्ग के हितो की लडाई लडते हुए पासवान अनेक बार जेल गए। जिस प्रकार चुनाव जीतने, अधिकतम मत प्राप्त करने और उदार मंत्री होने का पासवान ने रिकार्ड बनाया है, उसी प्रकार जल जाने का भी उनका अपना अलग रिकार्ड है। कोई यह सोच भी नही सकता कि श्री पासवान अपनी आयु के 50 वर्ष पूरे करने तक पुलिस द्वारा 40 बार गिरफ्तार किए जा चुके है। सघर्ष करना उनकी आदत रही है। अन्याय और शोषण वे बर्दाश्त नहीं कर पाते और झट अड जाते हैं। फिर गिरफ्तार किए जाने के अलावा कोई चारा नहीं रह जाता।

दलित सेना का गठन

श्री पासवान दलितो के अग्रणी नेता है। अपना पूरा जीवन दलितो के नाम लिखकर उन्होंने यह साबित कर दिया कि अपने जीते जी वे दलितो का अहित नहीं होने देंगे।

दलित हित की लड़ाई पूरी तैयारी के साथ लडने के उद्देश्य से उन्होने 1983 में दलित सेना नामक सस्था का गठन किया। दलित सेना दलित युवकों का उत्साही सगठन है। ये युवक अपने अधिकारो की समझ रखते है और कोई दलितों के अधिकार छीन ले तो वे मरने-मारने पर उतारू हो जाते है। दलित सेना कोई लड़ाकू सेना नहीं है। उसका उद्देश्य युद्ध करना या लडाई लडना नहीं है। उसका उद्देश्य शोषण के विरुद्ध खुल कर संघर्ष करना है।

दलित सदियो से दबता आया है। उसका मनोबल बुरी तरह गिरा दिया गया था। अधि िकार छीन लिए गए थे। अब देश की आजादी के बाद भारतीय सविधान ने दलितो और पिछडों को उनके अधिकार तो दे दिए है परन्तु सवर्णो के दबाव, सामंतों के अत्याचार या सरकारी मशीनरी के दुरोपयोग के कारण कई बार उनके अधिकारो का हनन हो जाता है। दलित सेना को यह दायित्व सौंपा गया है कि वह इस प्रकार के अधिकार हनन के खिलाफ खुला सघर्ष छेड दे।

अल्पसंख्यकों के हित-साधक

श्री रामविलास पासवान की आयु 55 वर्ष से अधिक हो चुकी है। अब उन्हे युवा नेता नहीं कहा जा सकता। अब वे एक परिपक्व बुद्धिवाले, गंभीर नेता है। वे देश की आबादी के ढांचे को तथा साझा संस्कृति के ताने-बाने को अच्छी तरह समझते हैं। वे जानते है कि भारत में मुस्लिम सम्प्रदाय के लोग अल्पसख्यक हैं और बहुसंख्यको की तुलना मे उन्हे थोडा दबना पड़ता है। श्री पासवान की सोच यह है कि देश की नजरों मे सब समान हे। सभी एक देश के नागरिक है। सबको सविधान में समान अधिकार प्राप्त है। ऐसे मे

अल्पसख्यको का अहित नही होना चाहिए अत जिस प्रकार वे दालतो और पिछडो के हितो की लडाई लडते आए हैं उसी प्रकार अल्पसंख्यकों के हितों की लड़ाई लडना भी अपना कर्त्तव्य मानते हैं।

दूसरी बात यह है कि दलितों और अल्पसख्यको के मतो पर सभी की नजर रहती है। अल्पसख्यको की आबादी भी दलितो की भाति एक बडी ताकत है। दलित वोट बैंक की तरह ही मुस्लिम वोट-बैंक भी चुनावो मे निर्णायिक भूमिका अदा करता आया है। इसी तथ्य को ध्यान मे रखते हुए श्री पासवान मुस्लिम वोट बैक को अपने राजनैतिक कद को ओर बडा करने के लिए इस्तेमाल करना चाहते हैं तो इसमें आश्चर्य की बात क्या है ?

इस देश मे राजनीति का अब यही चलन बन गया है कि अधिक से अधिक वोट प्राप्त करो और सत्ता में आने का प्रयास करते रहो। सत्ता मे आने के लिए मतो की ताकत जरूरी है। अत. जहॉ भी मत मिले, जिस शर्त पर भी मिले, उसे ले लो। नेताओ की इस सोच के कारण देश का बहुत बडा नुकसान हो रहा है। अब तो यह स्पष्ट दिखने लगा है कि नेताओ का केन्द्र देश है ही नहीं, केवल वोट बैंक और सत्ता अब उनकी सोच के केन्द्र मे है।

श्री पासवान राजनेता हैं। वे प्रतियोगिता मे पिछडना नहीं चाहते। वे सदा जीतते रहे है। उन्हे जीतने की आदत पड़ गई है। अत. देश के राजनैतिक समीकरणो को अपने पक्ष में बिठाने का अवसर वे कैसे गवा सकते हैं। अब भारत मे ऐसे नेता कहा है जो अपने हितों की राजनीति करना छोड़ दें और केवल देश हित की राजनीति करें।

आरक्षण वृद्धि के समर्थक

भारतीय सविधान मे आरक्षण की नीति ने पिछडो और दलितो को बहुत लाभ पहुँचाया। करोडो दबे-पिचे लोग यातना भरी जिन्दगी से बाहर निकले और उन्होने राजनैतिक आजादी के साथ-साथ आर्थिक आजादी का थोडा-सा सुख पाया। आरक्षण की नीति को तथा उसे लागू करवाने वाले पासवान सरीखे नेताओं के तीव्र प्रयासों के बल पर यह संभव हो सका।

यही कारण है कि श्री पासवान आरक्षण को न केवल जारी रखने के पक्ष मे हैं, बल्कि वे इसे और बढ़ाना चाहते है। देश भर मे अनुसूचित जातियों एवं जन जातियो के लिए आरक्षण 50 प्रतिशत या उससे ऊपर है। तमिलनाडु मे आरक्षण 65-69 प्रतिशत तक पहुँच गया है। श्री पासवान का कहना है कि सभी राज्यों में आरक्षण की दर तमिलनाडु की तरह ही बढ़ाई जाए।

बिहार के मामले मे उनकी बडी शिकायत है कि राबड़ी देवी सरकार नई आरक्षण नीति लागू नही करती। श्री पासवान ने राबड़ी सरकार को चेतावनी देते हुए कहा है कि जनसख्या के नए आंकड़ो के अनुसार राज्य मे अनुसूचित जाति तथा जन जाति की आबादी 15 40 % से बढ़कर 20 % हो गई है। अत सरकार नई आरक्षण नीति लागू करे ओर तमिलनाडु की तरह 65 से लेकर 69 % तक आरक्षण दिया जाए।

पिछड़े सवर्णों को लाभ

श्री रामविलास पासवान दलितों की राजनीति से ऊपर उठे है। आज भी वे दलितो के हितो को प्राथमिकता देते है। सच तो यह है कि उनकी राजनीति के केन्द्र मे दलित ही हैं। परन्तु वे जानते है कि अब उनकी आयु एक जिम्मेदार राजनेता की हो चुकी है और वे पूरे देश के नेता के रूप मे तब तक उभर कर नही आ सकते जब तक कि वे सबके हितों को समान रूप से महत्त्व न दे।

विभिन्न धर्मो, सम्प्रदायो, जातियो और उपजातियो मे बंटे इस देश मे राजनीति करना सभी के लिए बहुत मुश्किल होता जा रहा है। श्री अटल बिहारी बाजपेयी जैसे सर्व स्वीकृत नेता के नेतृत्व और सोच पर भी कुछ लोग प्रश्नचिह्न लगाने लगे है। स्वय श्री पासवान को वाजपेयी सरकार की गुजरात साप्रदायिक काड से सबधित नीतियो से शिकायत हो गई और उन्होंने वाजपेयी मंत्रिमडल से इस्तीफा दे दिया। श्रीमती सोनिया गांधी कांग्रेस की एकछत्र नेता हैं, पूरे देश की एकछत्र नेता बनने का उनका स्वप्न भी है और इरादा भी परन्तु देश नही मान पाता। कुछ लोग, अब भी इस देश मे ऐसे हैं जो उनके नेतृत्व को स्वीकार नहीं करना चाहते। श्री मुलायम सिह यादव, श्री लालकृष्ण आडवानी, श्री देवगौडा, पूर्व प्रधानमंत्री श्री चद्रशेखर तथा वामपथी दलों के अनेक नेता सर्व स्वीकृति पाने का स्वप्न देखते है, परन्तु विविधताओं वाले इस देश में सर्व स्वीकृति तो दूर की बात है, ससद और विधान सभाओ में किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत तक जुटाना कठिन हो गया है। ससद और विधान सभाएं प्रायः त्रिशंकु हो जाती है और दुनिया के सब से बडे लोकतत्र की कार्य प्रणाली पर प्रश्नचिह्न लगाती है।

ऐसे मे श्री पासवान का सवर्ण जाति के गरीबो को लाभ पहुँचाने की बात सोचना स्वाभाविक ही है। श्री पासवान अब सवर्णो को भी अपनी राजनीति की धारा मे शामिल करने की बात सोचने लगे हैं। परन्तु ऐसा लगता है कि इस मामले में वे खुलकर नही आ पा रहे हैं। इस देश मे खुलकर आना भी खतरे से खाली नहीं है। एक को राजी करो तो दूसरा रूठ जाता है। श्री पासवान दलित वोट बैंक पर खड़े हैं और मुस्लिम वोट बैंक से जुड़ने का पूरा प्रयास कर रहे है। उनका गणित कहता है कि दलित और मुस्लिम वोट देश मे बहुमत लेने के लिए काफी है, परन्तु एक सकट है और वह है राष्ट्रीय स्तर पर सर्व स्वीकार्य होने का।

सर्व स्वीकार्य होने के लिए तो सवर्णो को भी लाभ पहुँचाना होगा। परन्तु एक तर्क यह है कि सवर्णो के विरोध की राजनीति करने से तो दलितो का वोट प्राप्त होना है। यदि सवर्णो के हितों की राजनीति की तो कहीं दलित न बिदक जाए। यदि ऐसा हुआ तो राजनैतिक दल-दल में फस जाएगे।

परन्तु जैसा कि स्पष्ट है श्री पासवान उन नेताओं मे से हैं जो सदा जीतते आए है। जिनके पास मजबूत जनाधार है। हमें दृढ विश्वास है कि वे अपने राजनैतिक कद को ध्यान में रखते हुए ऐसा रास्ता जरूर खोज निकालेगे जिस पर चलते हुए कोई भी नाराज

न हो वह रास्ता है खुला पड़ा है वह रास्ता श्री पासवान जी भी समझते है कि रास्ता है परन्तु उस तक जाने के लिए देश के राजनैतिक जगत को आत्म निरीक्षण करना होगा और छोटे छोटे स्वार्थो से ऊपर उठकर समूचे देश को राजनीति के केन्द्र म रखना होगा। जब पूरा देश राजनीति के केन्द्र मे आ जाएगा तो निश्चय ही पूरे समाज के दबे-पिचे गरीब और शोषित लोगो का हित केन्द्र में होगा।

तब यह नहीं देखा जाएगा कि जीतने के लिए कि जाति या सम्प्रदाय को रिझाया जाए। तब तो यही देखा जाएगा कि पूरे समाज को आवश्यकतानुसार लाभ हो। जो अमीर हैं या सपन्न हो चुके है वे चाहे सवर्णो में हो या पिछड़ी जातियो में, चाहे हिन्दुओ मे या मुसलमानों मे, सिखों मे हो या पारसी, ईसाइयों, बौद्धो व जैनों मे उनसे सहयोग लेकर गरीबों को सहयोग पहुँचाने का मार्ग तलाशना होगा।

वह किस तरह हो सकता है, देश के तमाम वरिष्ठ नेता जानते हैं। श्री पासवान भी वरिष्ठ नेता हैं। वे पूरे देश के नेता है, एक सम्मानित सासद हैं, महत्त्वपूर्ण मत्रालयों में सफल मंत्री रह चुके है।

हमें उम्मीद ही नही पूरा विश्वास है कि वे देश को राजनैतिक दल-दल से निकाल कर एक साफ-सुथरी जमीन पर खड़ा करने का मार्ग अवश्य तलाश लेंगे। तब राजनीति के केन्द्र मे केवल देश होगा और राजनीतिज्ञों के केन्द्र मे शुद्ध सामाजिक न्याय। शुद्ध सामाजिक न्याय से मेरा अभिप्राय देश के हर उस नागरिक से है जो इस न्याय के लिए रात-दिन तड़प रहा है परन्तु उसे कोई न्याय नहीं दे पाता।

पिछड़ों, अल्पसंख्यकों और गरीबों की आशा

मायावती

(15 फरवरी, 1956)

भारतीय समाज मे शोषण और शोषित लम्बे समय से एक साथ जीते आ रहे है। सम्पन्नता और विपन्नता का नाता बहुत पुराना है। सम्पन्नता अपने पैर पसारती रही है और विपन्नता डर कर अपने आप में सिकुडती रही है। सम्पन्न डराता रहा है और विपन्न डरता रहा है। सम्पन्न लूटता रहा है और विपन्न लुटता रहा है।

समाज के इस अभिशाप को समाप्त कर सामाजिक विघटन की प्रक्रिया को रोकने के लिए अनेक सचेतन और संवेदनशील व्यक्ति आगे आए और उन्होने अपने सबल हाथो से कमजोरो और शोपितों पर अत्याचार के लिए उठने वाले हाथों को थामा और निर्बलों को बल प्रदान किया।

ऐसा ही एक नाम है मायावती। 15 जनवरी, 1956 को उत्तर प्रदेश के बादलपुर गाँव, जिला गाजियाबाद में जन्मी मायावती ने होश सभालते ही सामजिक सत्य के आर-पार देखना आरंभ किया। उनके पिता श्री प्रभुदयाल जी डाक-तार विभाग, दिल्ली मे सुपरवाइजर थे।

बादलपुर गॉव जी.टी. रोड दादरी और गाजियाबाद के बीच स्थित है। सदा राजनीतिक हलचलो का केन्द्र रहने वाली दिल्ली मायावती जी की जन्म-स्थली से इतनी निकट है कि शीघ्र ही दिल्ली ने उनका ध्यान अपनी ओर खींच लिया।

सामाजिक दायित्व का बोध

आठ भाई-बहनों वाले बड़े परिवार मे जन्मी मायावती ने निम्न-मध्यम वर्ग की कठिनाइयों को बचपन से ही देखा और झेला। दलित वर्ग में जन्म लेने, पलने-बढ़ने और पढ़ने की पीडा भी उन्होंने अम्बेडकर की तरह सही। यद्यपि छुआछूत और

जातीय घृणा स्वाधीन भारत में काफी कम हो चुकी थी और भारतीय संविधान ने पिछड़ों और दलितो को विशेष सुविधाएँ दिलवाकर उन्हे ऊपर उठाने मे बहुत मदद की थी फिर भी कष्टो का निराकरण पूरी तरह नहीं हो पाया था। संघर्ष अभी शेष था। अत अपने छात्र-जीवन में ही मायावती ने अपने सामाजिक दायित्व को महसूस किया और शिक्षिका बनकर पिछडो और दलितो में शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए अपना पूरा जीवन लगाने का फैसला कर लिया।

दिल्ली विश्वविद्यालय के कालिंदी कॉलेज मे जब वे बी. ए. की छात्रा थीं, तभी उन्हे छोटी जाति और निम्न आय वर्ग की पीडा का अहसास हो गया था। उनको ऐसा लगा था कि छोटी जाति के प्रति बडी जाति के लोगो के दिलों मे जो घृणा का भाव है, उसका आधार शिक्षा एव संसाधनों की कमी है। दलित और पीडित समाज को ऊपर उठना है तो उसे एक बार हिम्मत जुटानी होगी और कड़ी मेहनत करनी होगी। उन्हे अपने बच्चों को शिक्षा की प्रतियोगिता मे उतारना होगा। पढ-लिख कर वे अपने अधिकारो को पहचानेगे और उन्हे हासिल करने की ताकत भी पा जाएँगे।

गरीबो और पिछडों को सामाजिक न्याय दिलाने का सकल्प उनके मन में तब आ गया था, जब वे नवीं कक्षा मे पढती थीं। बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर के जीवन-संघर्ष को पढ़कर उन्होने फैसला किया कि पढ़-लिख कर वे अपने समाज के लोगो को ऊपर उठाने के काम में अपना जीवन लगा देगी। कानून को सामाजिक न्याय का हथियार मानते हुए उन्होने बी. ए. के बाद एल. एल. बी. करने का निश्चय किया। उन्हें लगा था कि कानून सामाजिक न्याय दिलाने मे सबसे अधिक सहयोगी होता है। देश और समाज के उत्थान के लिए संघर्ष करने वालों के उदाहरण उसके सामने थे—महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, भीमराव अम्बेडकर आदि सभी नेताओ ने कानून की डिग्री प्राप्त की थी।

कानून की पढ़ाई के दौरान उनके सामने अनेक ऐसे उदाहरण आए, जिससे उन्हे लगा कि शिक्षा की कमी दलितों के पिछडेपन का मूल कारण है। कानून की मदद से कुछ लोगो को न्याय तो दिलाया जा सकता है, परन्तु समाज के उत्थान की नींव तो शिक्षा पर ही रखी जाती है। देश को ऐसे लोगो की आवश्यकता है जो पिछड़े वर्गो को शिक्षा से जोडें। पीढी-दर-पीढ़ी पिछडी जातियों के लोग शिक्षा के उजाले से दूर अज्ञान के अंधेरे मे भटकते रहे हैं। ब्राह्मणो ने शूद्रों और स्त्रियो को शिक्षा से दूर रखने की कुटिल चाल चली ताकि दोनों वर्गो को अपना गुलाम बना कर रखा जा सके। उसका नतीजा हुआ देश और समाज का पतन। शिक्षा के अभाव मे स्त्री-समाज इतना पिछड़ गया कि उसका आत्मविश्वास ही जाता रहा। जन्म देने वाली माँ को अज्ञान के अंधेरे में रख कर इन लोगो ने घोर मानवीय

अपराध किया है। पिछड़ी जातियों से शिक्षा का अधिकार छीन लेना भी ऐसा ही अपराध है।

परन्तु अब परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। देश आजाद है। देश मे लोकतत्र प्रणाली है और देश का अपना सविधान है, जिसमें शिक्षा के अधिकार पर विशष जोर दिया गया है। पिछड़ी जातियों को आरक्षण तथा छात्रवृत्ति आदि की सुविधा देकर ऊपर उठाने का सकल्प साफ दिखाई देता है। ऐसे मे जरूरत इस बात की है कि पिछड़ी जातियो के बच्चों को पढ़ाया जाए। अभी तक इन जातियों के लोग बच्चों को स्कूलो से दूर रखकर उनसे काम करवाते आए है। उनमे आगे बढ़कर अपने अधिकार लेने की आदत नही है। यह आदत डालनी होगी। इसके लिए सबसे पहली जरूरत शिक्षा है। पिछडी जातियों के बच्चो तक शिक्षा का उजाला अनिवार्य रूप से पहुँचाने के उद्देश्य से मायावती जी ने बी एड मे दाखिला ले लिया। दिल्ली विश्वविद्यालय से उन्होने बी. एड. किया और उसके बाद दिल्ली नगर निगम के प्राइमरी स्कूल मे अध्यापिका की नौकरी ले ली।

अध्यापन के सात वर्ष

21 वर्ष की आयु में जब कु० मायावती ने दिल्ली के प्राइमरी स्कूल में अध्यापन कार्य शुरू किया, तब उनकी ऑखों में समाज उत्थान के हजारों स्वप्न थे।

निम्न मध्यम वर्गीय परिवार को आर्थिक सहयोग देने के साथ-साथ पिछडे वर्ग के बच्चों में शिक्षा का प्रसार करना उनका मुख्य उद्देश्य था।

मॉ ने विवाह की बात चलाई तो मायावती ने साफ कह दिया, "मैं नौकरी इसलिए नहीं कर रही हूँ कि शादी करके घर बसा लूँ और अपनी खुशियो में खो जाऊँ। दलित परिवार मे जन्म लेकर मैंने जो पीड़ा झेली है, मै नहीं चाहती कि पिछड़ी जातियों के लोग हमेशा ऐसी पीड़ा झेलते रहें। मै अपने समाज मे शिक्षा की चेतना जगाऊँगी। जैसे पढ़-लिखकर मैने नौकरी ले ली, ऐसे ही यदि सब पढ़े-लिखें और किसी काम में जुट जाएँ तो वे समाज के अत्याचारों को चीरकर नई दुनिया का निर्माण करेंगे। फिर कोई दलित और पीड़ित नहीं रहेगा। सामाजिक न्याय का जो स्वप्न महात्मा गाधी ने, बाबा साहब अम्बेडकर ने देखा था; बाबू जगजीवन राम जिस स्वप्न को साकार करने के लिए पूरा प्रयास कर रहे हैं, वही स्वप्न मेरी आँखों में भी है। मैं शादी नहीं करूँगी। अपना पूरा जीवन समाज की सेवा में लगा दूँगी।"

माता-पिता मायावती के स्वभाव से परिचित थे। देखने मे साधारण कद-काठी की लगने वाली यह लड़की असाधारण प्रतिभा और अदम्य इच्छाशक्ति से भरी थी। हमेशा उत्साहित और आशावान मायावती के चेहरे पर सकल्प का उजाला सदा

दिखाइ पड़ता था

समय पर स्कूल पहुँचना मन लगाकर पढ़ाना और स्कूल से निबटकर अपने मिशन में जुट जाना मायावती की दिनचर्या थी।

राजधानी दिल्ली, जहाँ संपन्नता की सज-धज से लदी है, वहीं विपन्नता का विशाल सागर भी यहाँ सदा लहराता रहता है। स्थान-स्थान पर काम की तलाश मे पूरे-पूरे दिन बैठे मजदूरो के झुड, झुग्गी-झोंपड़ियों मे अभावो के बीच जीते परिवार, सड़को के किनारे पड़े बेघरबार, बेसहारा लोग, भीख माँगते गरीब और अनाथ बच्चे हर संवेदनशील व्यक्ति का ध्यान आकर्षित करते है।

मायावती तो बहुत संवेदनशील युवती थी। अपनी कक्षा के ही फटेहाल बच्चो को देखकर उनकी आँखें नम हो जाती थीं। वे उनसे उनके परिवार, आमदनी के साधन और रहन-सहन के बारे मे पूछती तो उनका दिल भर आता था। आधे से ज्यादा बच्चे ऐसे परिवारो से आते थे, जिनके पास न खाने का कोई ठिकाना था, न रहने का, फिर बच्चो के लिए साफ-सुथरी स्कूल-यूनीफार्म और नई किताबें वे कैसे जुटा पाते।

उन्होंने गरीब परिवारो की सूचियाँ बनाकर सरकार के पास भेजीं और उनके बच्चों के लिए सहायता की माँग की। बहुत से बच्चों को उनके प्रयास से लाभ हुआ। सरकारी नीतियों में परिवर्तन हुए। किताबें, स्कूल बैग तथा यूनीफार्म तक मिलनी शुरू हो गई।

इस समय देश में मोरारजी देसाई की सरकार थी। श्रीमती इन्दिरा गांधी के खिलाफ मुकदमा चलाया जा रहा था। 1975 में आपातकालीन स्थिति लागू करके इन्दिरा जी ने लोकतंत्र को अपनी मुट्ठी मे कैद कर लिया था। उसके विरोध में लगभग सभी गैर काग्रेसी दल एकजुट हो गए थे और 1977 मे उन्होंने इन्दिरा जी को चुनाव कराने पर विवश कर दिया था। इस चुनाव में वे हारी और जनता पार्टी सरकार के क्रोध का पात्र बनी। इन्दिरा जी की गरीबों तथा पिछड़े वर्गों के प्रति उदार नीतियों और प्रशासनिक सख्ती को मायावती बहुत पसद करती थीं। वे इन्दिरा जी का आदर करती थी और उनसे प्रेरणा लेती थीं, परन्तु उनके लोकतत्र विरोधी कदम को मायावती ने पसद नहीं किया।

बाबू जगजीवन के प्रति मायावती के मन में बहुत आदर था। वे उनके लिए प्रेरणा के स्रोत थे। 42 वर्ष तक कांग्रेस की सेवा करने के बाद जब उन्होंने आपातकाल के विरोध में इन्दिरा जी के मंत्रीमंडल और कांग्रेस की सदस्यता से त्यागपत्र दिया, तब मायावती को बहुत अच्छा लगा था। लोकतंत्र विरोधी इन्दिरा जी का साथ छोड़कर उन्होने मायावती के मन में अपने प्रति आदर और बढ़ा लिया था।

इन परिस्थितियो मे दिल्ली के सरकारी स्कूल मे पढाती 21 22 वष की लडकी मायावती अपने विचार और इरादो को मजबूत बना रही थी। देश के हालात उसे पूरी तरह साफ नजर आ रहे थे। राजनीति की उठा-पटक उसे कुछ-कुछ समझ आ रही थी। सबसे अधिक साफ एक बात दिखाई दे रही थी कि गरीब और पिछडे वर्गो को न्याय देने के नाम पर राजनीति तो बहुत हो रही है, परन्तु वास्तव मे इन्हे पूरा न्याय मिल नहीं पा रहा है। तन्त्र उन्हें अव भी छल रहा है, भुलावे में रख रहा है।

मायावती जी अध्यापिका थीं, लेकिन उनके चारों ओर जो हो रहा था, उसे वे ऑखें खोलकर देख रही थी और कान खोलकर सुन रही थी। अध्यापन काल मे उन्होने जहॉ गरीब तथा असहाय बच्चों के लिए सरकारी सुविधाऍ जुटाई, वहॉ साक्षरता आंदोलन में भी बडा योगदान दिया। साक्षरता के लिए इन्दिरा जी ने बड़ी-बड़ी योजनाऍ बनाई थीं और अशिक्षितो को शिक्षित बनाने के लिए सामाजिक व शैक्षणिक सस्थाओ को भारी आर्थिक सहायोग देना आरंभ किया था। जनसख्या वृद्धि की समस्या भी अशिक्षा से जुड़ी थी। अत. यह नीति तेयार की गई थी कि साक्षरता अभियान चलाया जाए। गॉव-गॉव में चौपालो पर, स्कूलों में साक्षरता कार्यक्रम आयोजित किए जाते थे।

मोरारजी सरकार ने भी इस नीति पर जोर दिया। साक्षरता अभियान चल रहा था। सामाजिक व शैक्षणिक सस्थाएँ सरकार से धन ले रही थीं। कागजों पर सब कुछ ठीक-ठाक हो रहा था। खूब ऑकड़े जुटाए जाते थे और प्रकाशित किए जाते थे, परन्तु परिणाम सकारात्मक नहीं आ रहा था।

मायावती जी ने शिक्षा के क्षेत्र को इसीलिए चुना था कि वे अपने प्रयासों से पिछडे वर्गो के बच्चो को प्रेरित कर शिक्षा से जोडेगी और सरकार के सामने उनकी समस्याएँ रखकर सरकार से उन्हें सहयोग दिलवाएँगी। जिन पढ़े-लिखे पिछड़ो को रोजगार नहीं मिल पाता है, उनको रोजगार दिलवाने की पहल करेंगी। उन्होने बहुत प्रयास किए। साक्षरता अभियान में बढ-चढकर हिस्सा लिया। समाज के बीच जाकर स्त्रियों को समझाया कि वे अपने बच्चों को स्कूल अवश्य भेजे, परन्तु जो परिणाम आ रहा था, उससे उन्हे संतुष्टि नहीं हुई।

1977 से लेकर 1980 तक तीन वर्ष का समय बीत गया। आम चुनाव हुए, इन्दिरा जी फिर सत्ता में आ गई। देश में एक बार फिर सत्ता-परिवर्तन हो गया। जो सत्ता में थे, वे विपक्ष मे जा बैठे और जो विपक्षी खेमे में धूल फॉक रहे थे, वे सत्ता की ऊँची कुर्सियों पर जा बैठे, परन्तु बेचारे गरीब, दलित, शोषित और पीडित वही के वहीं रहे। पिछडी जातियों को संविधान के अनुसार सहयोग देने के वादे काग्रेस तथा गैर काग्रेस सरकारों ने केन्द्र व राज्यों मे बार-बार किए। उन्हें कुछ

लाभ हुआ भी सरकारी पैसा और सरकारी सुविधाए उन तक पहुचीं जरूर पर वे नाकाफी थी

भूखे को एक बार आप पेट भर कर भोजन करा दे या मॉगने वाले की झोली मे कुछ डाल दें, इससे समस्या का समाधान नही हो जाता। समस्या की जडे तो बहुत गहरी है। समस्या का समग्र अध्ययन किए बिना, उसके सारे पहलुओं पर विचार किए बिना, उसे हल करने के लिए उठाए गए कदम प्रायः फलदायी नहीं होते।

मायावती ने देखा कि सब सरकारे दलित वोटों को अपने पक्ष मे करके सत्ता हथियाने और सत्ता मे बने रहने की राजनीति कर रही हैं। आजादी के 43 वर्ष बाद भी दलितों में आत्मसम्मान नहीं आया, मनोबल में वृद्धि नही हुई। निराशा, विषाद और अवसाद के घेरो को तोड़कर दलित बाहर नही निकल पाया। वह अब भी सवर्णो और सत्ताधीशो से डरता है। यहॉ तक कि अपनी मर्जी से खुलकर मतदान भी नहीं कर पाता। बडी जातियों के लोग या समाज और धर्म के तथाकथित ठेकेदार उसे डरा-धमकाकर अपनी मर्जी उस पर लादने मे सफल हो जाते हैं। शिक्षा मे उसकी रुचि पूरी तरह नही जागी, राजनीतिक जिम्मेदारियॉ उठाने को वह जोखिम भरा मानता है। उसके मन मे सदियो से यह विचार बैठा दिया गया है कि वह सुरक्षा विभाग की जिम्मेदारियॉ नहीं निभा सकता। वह शासन नहीं कर सकता, वह व्याख्यान नही दे सकता, वह दूसरो को अपने अनुसार नहीं मोड सकता, वह आज भी ज्यो-का-त्यों है। आर्थिक स्थिति में भी कोई खास बदलाव दिखाई नहीं देता।

सरकारी नौकरियो में उच्च पदों की जिम्मेदारियॉ प्राय: उन्हे नहीं दी जा रहीं। आरक्षित पद खाली पडे रहते है परन्तु उन्हें आरक्षण के कोटे से भरा नहीं जाता। इस सबसे मायावती का यह भ्रम दूर हो गया कि कांग्रेस या गैर कांग्रेस सरकारे दलितों का उत्थान कर पाएँगी।

उन्हे दो बाते समझ आई—एक यह कि दलितो व पिछडों का मनोबल बढ़ाने तथा उन्हे उनके अधिकारो के प्रति जागरूक करने के लिए सामाजिक आदोलन की जरूरत है। दूसरा यह कि दलित आगे बढकर अपना अलग राजनीतिक दल बनाऍ और दलित वोट-बैंक को दूसरी पार्टियों से छीनकर स्वयं सत्ता के गलियारों तक पहुँचें।

बामसेफ व दलित शोषित समाज संघर्ष समिति से सम्पर्क

1981 में मायावती ने अपने मिशन पर काम करना शुरू कर दिया। उन्होने स्कूल की नौकरी जारी रखी और दलित उत्थान हेतु सामाजिक आदोलन मे सक्रिय

भागीदारी शुरू कर दी

25 वर्ष की आयु मे मायावती ने अपने मिशन की ओर पहला कदम उठा दिया और दूसरे कदम की प्रतीक्षा करने लगी। बामसेफ की सदस्यता लेते ही उन्होने सगठन में आगे बढ़कर जिम्मेदारियाँ निभानी शुरू कर दी। दलित उत्थान के लिए सकल्पित यह सगठन देश भर मे दलितो ओर पिछडो मे नई चेतना भरने, उन्हे उनके अधिकारों के प्रति जागरूक बनाने तथा सगठित करने के लिए सक्रिय था। मायावती का विश्वास भी यही था कि दलितों मे नया आत्मविश्वास पैदा किया जाना चाहिए। उन्हें किसी से दबने या डरने-झिझकने की जरूरत नहीं है। वे नीच जाति के नही है। नीची जाति और ऊँची जाति का भेद-भाव धर्म के जिन ठेकेदारो ने पैदा किया है, उनके दकियानूसी विचारों के खिलाफ एकजुट होकर लड़ाई लडनी है। हमारा धर्म बहुत उदार और विशाल है, उसमे भेद-भाव और ऊँच-नीच जैसा कुछ भी नहीं है। धार्मिक स्थानो में जाने, पूजा करने, सार्वजनिक स्थलो पर एकत्रित होने और राष्ट्रीय संसाधनों का उपयोग करने का अधिकार हमारे सविधान ने सबको समान रूप से दिया है। पुरानी सड़ी-गली परपराओं की दुहाई देकर समाज बाँटने वाले तत्त्व दलितो के साथ जो सौतेला व्यवहार करते है, उसे सहन नही किया जाएगा। आगे बढ़कर हर अधिकार हासिल किया जाएगा।

मायावती संगठनो के लिए नई अवश्य थी, परन्तु उनके मस्तिष्क मे सामाजिक परिवर्तन की जो रूपरेखा अंकित थी, वह नई नही थी।

650 ईसा पूर्व में जन्मे महान् तपस्वी और विचारक गौतमबुद्ध कह चुके थे कि मनुष्य-मनुष्य मे कोई भेद नहीं होता। मनुष्य की केवल एक ही जाति है और एक ही धर्म। मनुष्यों को जाति और धर्म के नाम पर बॉटने के परिणाम पूरी मनुष्य जाति को भुगतने होंगे। अहिसा, करुणा, सहानुभूति और प्रेम मनुष्य समाज को बांधते हैं और ठीक रास्ते पर चलाते हैं। वैसे भी यह ससार असख्य कष्टो से भरा है, जीवन में दुख कम नहीं हैं, भेद-भाव पर आधारित समाज बनाकर हम अपने दुख और बढ़ाऍगी ही।

कबीर साहब, सत रविदास, गुरु नानक जैसे महान संत बहुत पहले यह चेतावनी दे चुके थे कि धर्म व जाति मे समाज को बटने नहीं देना है। मनुष्य द्वारा मनुष्य के प्रति घृणा सबसे बड़ा अपराध है।

दक्षिण में ई. वी रामास्वामी नायकर, नारायणा गुरु, महाराष्ट्र मे महात्मा ज्योतिबा फूले, बिहार (झारखण्ड क्षेत्र) में बिरसामुडा, उ० प्र० मे स्वामी अछूतानंद आदि सामाजिक क्रांतिदर्शी सामाजिक परिवर्तन का बिगुल बजा चुके थे। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी और बाबा साहब अम्बेडकर तो हरिजनों और दलितो के उत्थान के लिए सामाजिक क्रांति के साथ-साथ विशेष अधिकार प्रदान करने वाला सविधान

बनाकर दलित उत्थान का पथ प्रशस्त कर गए थे।

मायावती ने इन सभी प्रयासो के सूत्रो को समेटकर इनसे एक नई व्यवस्था का ताना-बाना बुनने का सिलसिला शुरू किया था। बाबा साहब अम्बेडकर तो दलित समाज के सबसे बडे मसीहा थे। दलित उत्थान मे उन्होंने अपने जीवन का एक-एक पल लगाया और देश भर मे ऐसे अनेक सगठन खडे कर दिए जो दलितों और पिछडी जातियो का उद्धार करने के लिए काफी थे। जरूरत केवल इस बात की थी कि इन संगठनों में नई जान फूॅकी जाए और बिखरी हुई दलित ऊर्जा को बटोर एक शक्तिशाली और सपन्न समाज का निर्माण किया जाए। मायावती ने अपने आपको इस भूमिका के लिए समर्पित कर दिया। वे पूरी तरह समाज सेवा मे जुट गई।

दिल्ली मे और दिल्ली से बाहर भी वे सभाओं और कार्यक्रमों में भाग लेने लगीं। दिल्ली और उत्तर-प्रदेश को उन्होने आगे बढकर प्राथमिकता दी। उत्तर-प्रदेश मे जन्मी मायावती के मन में उत्तर-प्रदेश के दलितो के उत्थान की सबसे ज्यादा चिन्ता थी। अतः वे उत्तर-प्रदेश में बहुत सक्रिय होती गई।

कासीराम जी से भेंट

1982 मे मायावती जी की भेंट दलित सेवा के लिए समर्पित, पिछडे वर्गो के उत्थान कार्यो मे रत महान सगठनकर्त्ता श्री कासीराम जी से हुई। कासीराम जी उपेक्षित समझी जाने वाली जातियो का मनोबल बढाने मे बहुत सफल रहे थे। उन्होने पूरे देश का भ्रमण किया था। देश भर के पिछडे लोगो को एकता का सदेश देने वाले श्री कासीराम दलित समाज मे आदर की दृष्टि से देखे जाते थे।

कांसीराम जी ने पहली ही नजर में मायावती जी के अन्दर छिपी राजनीतिक ओर प्रशासनिक क्षमता को पहचान लिया। कांसीराम जी का पहले से ही यह विश्वास रहा है कि तरक्की करना चाहते हो तो सत्ता मे आओ। शासक बन कर जियो, शापित बनकर नहीं। अधिकारो के मामले मे उनका सिद्धात बिल्कुल दो टूक रहा है—अधिकार दिए नही जाते, आगे बढकर हासिल किए जाते हैं।

उन्होंने अपने एक भाषण मे कहा—"बाबा साहब अम्बेडकर एक ऐसा सविधान बना गए, जिसने पिछड़ी जातियों को विशेष अधिकार दिए है, परन्तु फिर भी इस मुगालते मे बैठे रहना एक बडी भूल होगी कि सरकारें हमें ये अधिकार देने आएगी। अधिकार लेने हैं तो आगे बढो, सगठन मे रहने की आदत डालो, अपनी ताकत को समझो और उसे इस्तेमाल कर सत्ता की ओर बढ़ो, सम्मान और सपन्नता दोनों तुम्हारे कदम चूमेंगे।"

बिल्कुल ये ही विचार मायावती जी के हैं। विचारों का तालमेल संगठन की कुजी है। कांसीराम जी ने मायावती की क्षमता के साथ-साथ उनके विचारो को भी

परखा तो पाया कि जो स्वप्न उनकी आँखो में है, उसे पूरा करने वाला व्यक्तित्व मिल गया है। मायावती ही वह व्यक्तित्व है। अब निश्चय ही वह स्वप्न पूरा होगा।

कांसीराम जी ने मायावती से बात की। दोनो इस बात पर एक मत थे कि एक राजनीतिक संगठन को जन्म दिया जाए, जिससे पूरे देश के दलित और पिछड़े लोग सीधे जुड़ जाएँ।

बहुजन समाज पार्टी का गठन

14 अप्रेल, 1984 बाबा साहब अम्बेडकर के 95वे जन्म-दिवस पर श्री कांसीराम और मायावती जी ने मिलकर बहुजन समाजवादी पार्टी का गठन किया। श्री कांसीराम जी पार्टी के संस्थापक अध्यक्ष चुने गए तथा मायावती पार्टी की महामंत्री। इस अवसर पर बहुत बडी संख्या मे पार्टी के कार्यकर्त्ता तथा अन्य अधिकारी मौजूद थे।

पार्टी का पूरा विधान बनाया गया था। पार्टी के उद्देश्यो की व्याख्या की गई थी। दो उद्देश्य मुख्य थे—दलित व पिछड़े वर्गो को एकजुट करना, उनके हितो को प्राथमिकता देना तथा चुनावों के माध्यम से चुनकर सत्ता के गलियारों तक पहुँचना। यदि बसपा अकेली स्पष्ट बहुमत नहीं जुटा पाती तो दूसरे राजनीतिक दलों के साथ मिलकर सरकार बनाए, यह विकल्प खुला छोडा गया।

पार्टी का मुख्य कार्य-क्षेत्र उत्तर-प्रदेश रखा गया। मायावती जी की बडी इच्छा थी कि वे उत्तर प्रदेश के पिछड़े लोगों में राजनीतिक चेतना जगाएँ और उत्तर प्रदेश से चुनाव जीत कर संसद मे जाएँ। श्री कांसीराम जी का स्वप्न सभी पिछडी जातियों को एकजुट कर अल्पसंख्यकों के सहयोग से पूरे देश की सत्ता संभालने तक विस्तृत था और आज भी है। वे यह मानते हैं कि जब तक दलित देश पर शासन करने का अवसर नही पा जाते, तब तक उनकी दशा में सुधार होने वाला नहीं है। इसीलिए वे पूरे देश का नेतृत्व करने का इरादा रखते हैं।

मायावती जी का स्वप्न दलित व पिछड़े वर्गो के शैक्षिक व आर्थिक स्तर को ऊँचा उठाना तथा उनमे नया आत्मविश्वास भरना था। उन्होंने पूरे देश को नेतृत्व देने का स्वप्न कभी नहीं देखा। हाँ, देश में दलितो का प्रतिनिधित्व करना उनके जीवन का उद्देश्य कल भी था, आज भी है और सदा रहेगा। एक और बात, मायावती जी ने उत्तर प्रदेश को सदा अपनी राजनीति के केन्द्र मे रखा है। उत्तर प्रदेश के दलितों व अल्पसंख्यको की समस्याओं का सही समाधान खोजना तथा उनके जीवन स्तर को ऊँचा उठाना वे अपने जीवन का पहला मिशन मानती है, परन्तु वे अपने आपको केवल एक अंचल का नेता मानने से संतुष्ट नहीं है। उनका मानना है कि वे देश की धर्मनिरपेक्ष जनता की नेता हैं। दलितो का उद्धार करना

उनके जीवन का उद्देश्य अवश्य रहा है, वह भी इसलिए कि वे पिछड़े और सहमे हुए है, उन्हे ऊपर उठाने के लिए विशेष प्रयास करने आवश्यक हैं, परन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वे केवल पिछड़ो व दलितो का ही प्रतिनिधित्व करती हैं। वे साम्प्रदायिक ताकतो से परहेज करना चाहती है और धर्मनिरपेक्ष ताकतो को साथ लेकर चलना चाहती हैं। वे समाज के हर वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। जाति, धर्म, वर्ग, वर्ण उनकी राजनीति के दायरे में शामिल नहीं हैं।

चुनावी राजनीति आगे और आगे

1984 मे मायावती जी ने राजनीति मे प्रवेश किया और उसी वर्ष पहला चुनाव उन्होंने मुजफ्फर नगर के कैराना नामक चुनाव क्षेत्र से लडा। इस चुनाव मे उन्हे मतदाताओ ने स्वीकार तो किया, परन्तु वे सीट जीत नहीं पाई।

दूसरा चुनाव उन्होने 1985 मे बिजनौर से लड़ा। उसमें भी वे सीट नहीं जीत पाई।

तीसरा चुनाव उन्होने 1987 मे हरिद्वार चुनाव क्षेत्र से लडा। इस लोक सभा क्षेत्र पर वे कब्जा तो नहीं कर पायीं, परन्तु विजेता उम्मीदवार से कुछ ही कम मत प्राप्त कर वे दूसरे स्थान पर रहीं।

दो वर्ष बाद 1989 मे उन्होंने फिर बिजनौर लोकसभा सीट से चुनाव लड़ा। इस बार वे भारी मतों से विजयी घोषित की गई। अपने राजनीति में प्रवेश के 5 वर्ष बाद मायावती जी लोकसभा मे पहुँचीं।

समाजवादी पार्टी के साथ उ० प्र० में साझा सरकार

लोकसभा में पहुँचने के बाद भी मायावती जी की राजनीति के केन्द्र में उ० प्र० ही रहा। उ० प्र० से सचमुच उन्हें बहुत प्यार है। वे अपने चुनाव क्षेत्र बिजनौर के साथ-साथ पूरे उ० प्र० के हितों की चिंता करती।

1993 के विधान सभा चुनावो में बसपा ने मुलायम सिंह के समाजवादी दल के साथ चुनावी तालमेल किया। चुनाव अभियान में मायावती ने प्रमुख भूमिका निभाई तथा पूरे उ० प्र० मे उन्होंने चुनाव सभाओं में भाषण दिए और लोगों को विश्वास में लिया। उनका कहना था कि सपा और बसपा दोनो समानांतर राजनीतिक दल हैं और दोनों का मुख्य उद्देश्य पिछड़ों, दलितो तथा अल्पसंख्यको के हितो को प्राथमिकता देना है। इस गठबंधन को स्पष्ट बहुमत मिल गया और दोनों दलों की मिली-जुली सरकार ने उत्तर प्रदेश में शासन की बागडोर संभाल ली।

परन्तु दुर्भाग्यवश यह सरकार 2 जून, 1995 को आपसी मतभेद के कारण गिर गई।

3 जून, 1995 को बसपा ने भारतीय जनता पार्टी के समर्थन से उ० प्र० मे सरकार बना ली और मायावती जी पहली बार प्रदेश की मुख्यमंत्री चुनी गई।

मायावती जी के हौसले बुलंद थे। उन्होंने शपथ ग्रहण करते ही राज्य की नीतियो में भारी फेर-बदल की और पूरे प्रशासन तंत्र को देखते ही देखते गरीबो और पिछडों के हितो से सीधा जोड़ दिया। दीन-दुखी और दबे हुए लोगो की आवाज सुनने वाला अब तक प्रदेश मे कोई नहीं था। मायावती जी ने शासन की बागडोर संभालते ही इन लोगो का मनोबल ऊँचा करने में पूरी ताकत लगा दी। जो लोग दबाव में जी रहे थे, वे अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए उठ खड़े हुए। मनमानी करने वाले अधिकारियो के तबादले कर दिए गए। जिसके खिलाफ शिकायत मिली उसे ही लाद दिया गया।

मायावती जी को 27 अक्तूबर, 1995 तक सत्ता मे रहने का मौका मिला। इस अवधि में राज्य मे बड़ी तेजी से सामाजिक परिवर्तन हुआ। दबे और पिछड़े लोगो के लिए वे मसीहा बनकर आई थीं। लोगो ने अपने दुख-दर्द खुलकर कहे और उनसे निजात भी पाई। पॉच माह से भी कम की अवधि मे मायावती पूरे प्रदेश मे छा गई। उनका आत्मविश्वास और नियन्त्रण करने का ढग बेमिसाल था।

छः महीने के लिए फिर मुख्यमंत्री

1996 में विधानसभा चुनाव हुए। राज्य में फिर किसी पार्टी को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। 15 अक्टूबर, 1996 से 20 मार्च, 1997 तक कोई दल सरकार नहीं बना पाया। कोई तालमेल न बैठने के कारण फिर से चुनाव कराने की स्थिति दिखाई पडने लगी। मायावती जी ने विवेक से काम लिया। उन्होने भाजपा के साथ 1995 मे पैदा हुई कड़ुवाहट को भुला दिया और राज्य को चुनावो से बचाने के लिए तथा पिछड़ों व गरीवों की सेवा का एक और मौका पाने के लिए भाजपा के साथ फिर सत्ता-गठबधन किया। पहले छः महीने तक मायावती को प्रदेश की मुख्यमत्री बनाने का निश्चय किया गया। 21 मार्च, 1997 को मायावती जी ने दूसरी बार राज्य की मुख्यमत्री के रूप मे शपथ ली। 1996 के चुनावों मे उन्होंने बिल्सी (जि० बदायूं) और हरौड़ा (जि० सहारनपुर) से चुनाव लड़े थे और वे दोनों जगहों से चुनी गई थीं। उन्होने बिल्सी की सीट छोड़ी दी।

सितम्बर, 1997 मे उन्होने समझौते के अनुसार मुख्यमत्री पद छोड़ दिया। मुख्यमत्री पद छोड़ने के बाद उनकी पार्टी ने भाजपा को सरकार चलाने में समर्थन दिया। मायावती पिछडों के प्रति अपने मिशन में जुट गई।

1999 मे मायावती जी ने फिर अकबरपुर क्षेत्र से ही लोक-सभा का चुनाव लड़ा और वे अपने साथ 13 अन्य बसपा सांसद को संसद तक पहुँचाने मे कामयाब रही।

तीसरी बार फिर उ० प्र० की मुख्यमंत्री

2002 में उ० प्र० विधान सभा के चुनाव हुए तो उन्होंने अपनी लोकसभा सीट का मोह छोड़ दिया और विधान सभा चुनावों में पार्टी का नेतृत्व संभाला। इस बार उन्होंने अल्पसंख्यकों का विश्वास जीता और 403 विधान सभा सीटों पर अकेले ही चुनाव लड़ने का फैसला किया। उन्होंने 100 अल्पसंख्यक उम्मीदवार मैदान में उतारे। मायावती जी ने रात-दिन दौड़ भाग करके उ० प्र० में भारी जीत हासिल की; परन्तु विधान सभा फिर त्रिशंकु हो गई। बसपा 98 सीटें जीतकर दूसरे स्थान पर रही।

कई महीने तक प्रदेश में कोई दल सरकार नहीं बना पाया फिर वही स्थिति घूम कर आ गई। प्रदेश में मध्यावधि चुनावों के अलावा और कोई रास्ता नहीं बचा।

अब फिर मायावती जी ने अपने अहं का शमन किया और भारतीय जनता पार्टी के साथ मिलकर सरकार बनाने पर राजी हो गईं। राज्य को एक बार फिर उन्होंने बेवक्त चुनावों का खर्च उठाने से बचा लिया।

3 मई, 2002 को उन्होंने तीसरी बार उ० प्र० की मुख्यमंत्री के रूप में शपथ ग्रहण की। वे राज्य की 28वीं मुख्यमंत्री हैं।

तीन महीने के अन्दर उन्होंने राज्य के सारे बिखरावों को समेटने तथा राज्य की तमाम समस्याओं से निबटने में सफलता प्राप्त की। भाजपा पर तीसरी बार फिर विश्वास करने के लिए विरोधियों ने उन पर काफी छींटाकशी की परन्तु उन्होंने किसी की कोई परवाह नहीं की। भाजपा के साथ सत्ता का तालमेल बिठाने के लिए कांग्रेस और समाजवादी दलों ने उनकी बहुत खिंचाई की। उनके अल्पसंख्यक विधायकों को भड़काने के प्रयास भी किए गए, परन्तु मायावती जी अपने निश्चय से डिगी नहीं। वे अपने वचन की पक्की हैं और प्रदेश का हित उनके लिए सबसे ऊपर है।

नौकरशाही पर भारी

मायावती जी जहाँ पिछड़ों और गरीबों की हमदर्द हैं, वहीं वे नौकरशाही पर बहुत भारी पड़ती हैं। वे ऐसे अधिकारियों और कर्मचारियों को तनिक भी सहन नहीं करतीं, जिनके खिलाफ उन्हें शिकायतें मिलती हैं या जो प्रशासन की गति को अवरुद्ध करते हैं। इस मामले में उनकी दृष्टि बहुत पैनी है। उनके सत्ता संभालते ही नौकरशाहों में खलबली मच जाती है। सब सतर्क होकर अपने-अपने कामों को अंजाम देने लगते हैं। जो ऐसा नहीं करते, वे मायावती जी की दृष्टि से अपने आपको बचा नहीं पाते। उन पर गाज गिरती है। उनको या तो दूसरे स्थान पर भेज

दिया जाता है या फिर (अपराध सगीन होने पर) नौकरी से हाथ धोना पड़ता है पुलिस चौकन्नी हो जाती है। पिछडों या सताए हुओ के खिलाफ कोई शिकायत मिलने ही पुलिस हरकत मे आ जाती है।

जौनपुर के चितौड़ी गॉव का तिवारी फागूराम बहुत परेशान था। दो साल से वह बराबर पुलिस मे शिकायत कर रहा था परन्तु पुलिस कोई कदम नहीं उठाती थी। मायावती जी ने जब तीसरी बार मुख्यमन्त्री पद सभाला तो फागू को थोडी आस बंधी। उसने झट पुलिस में अर्जी दे दी। पुलिस तुरन्त उसके घर जा पहुंची और पड़ौसी के साथ उसका झगड़ा तुरन्त सुलझा दिया। पड़ोसी को पुलिस ने सख्त हिदायतें देकर छोड़ा।

लखनऊ से 25 किलोमीटर दूर बंथरा नामक गाँव में पुलिस को खबर मिली कि एक पासी का घर फूंक दिया गया है तो उसने तुरंत कार्रवाई की। यद्यपि वह खबर झूठी निकली, परन्तु पुलिस दल तुरन्त हरकत मे आ गया था।

प्रशासन पर अपनी पकड़ बनाने और अधिकारियों को अपने दायित्व का बोध कराने के मामले में मायावती बेजोड़ मानी जाती है। वे मौके पर पहुँचने मे भी नहीं हिचकतीं। अनेक ऐसे अवसर आए हैं, जब उन्होने सरकारी कर्मचारियो अथवा अधिकारियों को गलतियॉ करते रंगे हाथो पकडा है और नौकरी से निकाल दिया है।

अपराध व भ्रष्टाचार पर कड़ी पकड़

मायावती जी का पूरा जीवन जनता की सेवा के लिए समर्पित है। उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है। वे साफ-सुथरे प्रशासन मे विश्वास रखती है। अपराधियों को वे अपने दल में कोई स्थान नहीं देतीं। शासन में आते ही उनकी तीखी दृष्टि अपराधियों को खोजने लगती है। पुलिस प्रशासन इस बात को अच्छी तरह जानता है। अतः कहने का मौका आने से पहले ही अपराधियो पर कड़ी नजर रखने लगता है। अपराधी सहम जाते है। वे या तो सुधर जाते है या फिर प्रदेश से पलायन करने पर विवश होते हैं। मायावती जी के शासन काल मे खुले नही घूम सकते।

भ्रष्टाचारियो के खिलाफ उनकी नीति बहुत स्पष्ट है। सब अधिकारी जानते हे कि मायावती जी को भ्रष्टाचरियों से नफरत है। वे उन्हे नही सह सकती। भ्रष्टाचारियों के खिलाफ उन्होने सदा कडे कदम उठाए हैं। उनके शासन काल मे भ्रष्टाचार पूरी तरह समाप्त हो गया हो, यह तो नही कहा जा सकता। देश की काया में भ्रष्टाचार का रोग ऐसा रच-बस गया है कि यह कभी जाता ही नहीं, परन्तु इतना अवश्य है कि भ्रष्टचारी सहम जाते है। प्रशासन उन्हें खुलकर खेलने की इजाजत नही दे सकता।

की मसीहा

मायावती जी ने दलितो के साथ-साथ अल्पसख्यकों का भी विश्वास जीता है। वे राज्य मे साम्प्रदायिक सद्‌भाव बनाए रखने पर सदा जोर देती रही हैं। 14वीं विधान सभा चुनाव मे उन्होंने 403 में से 100 उम्मीदवार अल्पसंख्यक वर्ग मे मैदान में उतारे थे। वे वडी सख्या मे जीतकर आए मायावती जी के नेतृत्व मे अल्पसख्यकों को पूरा विश्वास है। मायावती जी इस तथ्य को स्वीकार करती है कि प्रदेश मे अल्पसख्यको की आर्थिक स्थिति उतनी अच्छी नही है, जितनी होनी चाहिए। दलितों और पिछडो की तरह वे भी शिक्षा और सपन्नता मे पीछे रह गए है, अत वे अल्पसंख्यकों के हितों का पूरा ध्यान रखकर चलती हैं। धर्म और जाति की राजनीति करना उन्हे पसंद नही है। अल्पसंख्यकों को शिक्षा तथा रोजगार के क्षेत्र मे आगे लाने तथा उनमे नया आत्मविश्वास पैदा करने का वे पूरा प्रयास करती रही है। अपनी सरकार में उन्होने अल्पसख्यकों को पूरा प्रतिनिधित्व प्रदान किया है। सरकारी नौकरियो मे उनका पूरा ध्यान रखा जाता रहा है। वे जानती है कि प्रदेश की जनसख्या में दलित और अल्पसख्यक वडे अनुपात मे हैं; अत. उन्हे उनके अधिकार अवश्य मिले, इस बात का पूरा ध्यान रखती हैं। राजनीतिक लाभ ओर जनहित दोनों दृष्टियो से अल्पसख्यको की समस्याओं पर ध्यान देना अनिवार्य हे।

समतामूलक समाज का सकल्प

मायावती जी का यह सकल्प है कि वे एक ऐसे समाज की रचना करें, जिसमे जाति, धर्म, वर्ग, वर्ण और आर्थिक आदि कारणो से भेद-भाव और वैमनस्य न हो।

उपनिषद काल से ही भारत की यह कल्पना रही है कि वह एक आदर्श मानव समाज की रचना करे। आदर्श मानव समाज वह है, जहाँ लोग आपस मे कोई भेद-भाव नही रखते। सब मिलकर रहते हैं और एक-दूसरे का सहयोग करते है। भारत ऐसे समाज की, ऐसी जीवन-शैली की रचना करने मे सफल रहा है, परन्तु विदेशी सस्कृतियो के प्रभाव मे आने तथा विदेशी दवावो मे आने के कारण उसकी सामाजिक रचना गडवड़ा गई और जाति, वर्ग, वर्ण आदि मे समाज बॅट गया। यहॉ अनेक धर्मो के लोग आए और बस गए। उन्होने अपने धर्मो का प्रचार किया, धर्म परिवर्तन का दौर चला और पूरा समाज अनेक प्रकार के भेद-भावों से भर गया।

समतामूलक समाज की रचना करना भारत के हर महान विचारक के मन मे रहा है। कवि और साहित्यकार भी इसकी कल्पना करते रहे हैं, परन्तु इस विचार को एक आंदोलन के रूप मे समाज मे उतार लाने मे सफलता प्राय कम मिली है। बाबा साहब अम्बेडकर, बाबू जगजीवन राम और राममनोहर लोहिया आदि का

चिन्तन समतामूलक समाज की संरचना पर केन्द्रित रहा; समाज पर उनके विचारो का प्रभाव पडा और बदलाव आया।

1984 मे बसपा का गठन करने के साथ ही मायावती जी ने यह संकल्प लिया था कि वे दलितों और पिछडो को एक राजनीतिक महाशक्ति बनाकर उन्हे सामाजिक न्याय दिलाएगी और फिर एक ऐसे समाज की रचना करेंगी जिसमे श्रम सस्कृति का सम्मान होगा, श्रमजीवियों को महत्त्व दिया जाएगा और धर्म व जाति आदि आधारो पर मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण नहीं होने दिया जाएगा। जातीय घृणा पूरी तरह समाप्त हो जाएगी। बेगार जैसी घिनौनी परपरा जड़ से मिटा दी जाएगी। धार्मिक वैमनस्य नही रहने दिया जाएगा। सर्व धर्म समभाव की स्थिति रहेगी और लोग मिल-जुलकर तरक्की करेंगे।

मायावती जी का मानना है कि राजनीतिक शक्ति से ही समाज मे परिवर्तन संभव है। समतामूलक समाज की संरचना वे मतदाताओ की ताकत से ही करना चाहती हैं। देश मे संपन्नता है, परन्तु बड़ी संख्या उन लोगों की है जो जातीय घृणा सहते आए है। अब इन सबसे ऊपर उठकर, सबको सामाजिक न्याय दिलाते हुए समतामूलक समाज की संरचना लक्ष्य है।

वे कहती है ''समतामूलक समाज से मेरा मतलब है सामाजिक, आर्थिक और साम्प्रदायिक आधार पर एक भेद भाव रहित समाज। बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर के पदचिह्नो पर चलकर मैं पूरे भारत मे एक समरस समाज देखना चाहती हूँ जिसका आधार आपसी प्रेम और भाईचारा हो। जिसमे कोई ऊँच-नीच न हो, कोई छुआछूत न हो, कोई वैर-भाव न हो। इसके लिए हमे उनसे शुरुआत करनी है जो वास्तव में वंचित और दलित हैं।''

परन्तु एक बात ध्यान रहे, सामाजिक समरसता, सामाजिक न्याय, समतामूलक समाज जैसे शब्द सुनने मे बहुत अच्छे लगते हैं, सही अर्थो मे हमारे आदर्श लक्ष्य भी है, परन्तु राजनीतिक सतुलन बिठाने की धुन में और राजनीति को सामाजिक परिवर्तन का हथियार बनाने के जुनून मे यदि हमने जनसख्या नियंत्रण पर ध्यान नही दिया और तुष्टिकरण व दबावों का विकल्प नहीं तलाशा तो यह सामाजिक सरचना स्थायी नहीं रह पाएगी। फिर सतुलन गडबड़ाएगे, फिर बवंडर उठेगे, फिर समाज में घृणा जन्मेगी और फिर समाज टूटेगा। भारतीय सविधान मे आरक्षण की जो सुविधा है, उसका इस्तेमाल करते समय योग्यता और क्षमता के साथ समझोता नही किया जाना चाहिए, धर्म निरपेक्षता की जो व्यवस्था है, उसकी आड मे जनसख्या बढाओ अभियान नही चलाया जाना चाहिए।

विचार और इरादे

मायावती जी के विचार और इरादे बिल्कुल स्पष्ट हैं। सामाजिक न्याय की

स्थापना करना और अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाना समाज के हर वर्ग के हितों का ध्यान रखते हुए विकास की प्रक्रिया को हर क्षेत्र मे आगे बढाना उनका लक्ष्य है। कानून-व्यवस्था और अर्थव्यवस्था को वे अपने लिए चुनौती मानती हैं। वे समाज से वर्ग-भेद को उखाड़ फैंकने के लिए सकल्पवद्ध है। वे मानती हैं कि पीड़ित और दलित हर वर्ग मे हैं। आजादी के बाद आरक्षण तथा अन्य सुविधाओं के कारण जाति आधारित सामाजिक संरचना में भारी परिवर्तन आया है। छोटी जातियो और पिछड़े वर्गों मे गिने जाने वाले लोग शिक्षा व रोजगार से जुड़े है, उनमे आत्मविश्वास लौटा है। अब समस्या केवल उन्हीं को उठाते रहने की नहीं है, हमें पूरा समाज देखना है। समाज के हर वर्ग में शोषित और उपेक्षित लोग मौजूद हैं। मायावती उन्हीं की लडाई लड़ रही है। वे कहती है–"हर वर्ग के पीड़ित और दलित का संघर्ष मेरा मिशन है।"

मायावती इस सत्य से अपरिचित नहीं हैं कि जिस समता- मूलक समाज की वे बात कर रही है, वह किसी एक वर्ग पर ध्यान केन्द्रित करके नहीं लाया जा सकता। पूरे भारतीय समाज को समग्र दृष्टि से देखना होगा। दलितों और पीड़ितो की कोई जाति नहीं होती। पिछड़ी जातियो में भी सपन्न लोग गरीबो और कमजोरो को सताते हैं, उनसे बेगार लेते है और उनका अपमान करते हैं। यह सोचना ठीक नही है कि छोटी जाति के लोगों को बड़ी जाति के लोग ही सताते है। बड़ी जाति के हों या छोटी जाति के, जिनके पास दौलत और दबदबा है वे अपना सामती चरित्र दिखाने में नहीं चूकते। उनके सामंती तेवर गरीब और असहायो पर जुल्म ढहाते ही है। ऐसे अनगिनत उदाहरण मौजूद है जब सपन्न सवर्णो ने कमजोर सवर्णो को खूब सताया है। उन्होंने उनका हर प्रकार से शोषण किया है और उन्हें पनपने नहीं दिया है।

सच तो यह है कि हम सामती मूल्यों से उबर नहीं पाए हैं। जातिवाद, धर्म, वर्ण, वर्ग और आर्थिक विषमताओं की आड मे सामतवाद हमारे समाज के मानस में सदा छिपा रहता है और ठीक मौका पाते ही सॉप की तरह डस लेता है। यदि मायावती जी समतामूलक समाज की स्थाई स्थापना चाहती है तो उन्हें सबसे पहले इस विष-धर के दॉत तोड़ने होगे। इसके दॉत तोडने के दो हथियार साफ नजर आ रहे है एक वैचारिक, दूसरा व्यावहारिक।

लगता है वैचारिक हथियार मायावती जी के पास है। वह है यह मानकर चलना कि दलित और पीड़ित समाज के लोग हर वर्ग में है। हर वर्ग के दलितों और पीड़ितो के हितों की रक्षा के लिए उनके समुचित विकास के लिए वैचारिक क्रांति का अभियान।

व्यावहारिक हथियार है सत्ताधीशों और प्रशासनिक अधिकारियों के दिमागों मे

सामतवादी कीड़ों का न घुसने देना। वर्तमान मे देश इससे बुरी तरह पीड़ित है। सत्ताधीशों और प्रशासनिक अधिकारियो में ऐसे लोगों की सख्या बहुत कम है जो इस महाव्याधि से मुक्त हैं। अधिक सख्या ऐसे ही सत्ताधीशो तथा अधिकारियों की है जो अपने पद पर आसीन होते ही सामंती जहर उगलने लगते है।

यदि सचमुच मायावती जी अपनी इस सोच के प्रति गभीर है तो मैं दावे के साथ कहना चाहूँगा कि उनसे अच्छा नेता हिन्दुस्तान को अब तक मिला ही नहीं है। तब तो वे उत्तर प्रदेश की ही नहीं, समूचे भारत की आदर्श नेता है।

हर वर्ग के दलित व पीड़ित को बराबर न्याय दिलाने के मिशन को यदि उन्होने निरपेक्षता के साथ आगे बढ़ाया तो इस देश की सारी समस्याओं का समाधान निकल आएगा और जैसा कि भारत के राष्ट्रपति डॉ० अब्दुल कलाम 2020 तक भारत को एक विकसित राष्ट्र बनाना चाहते है, उनका सकल्प भी अवश्य पूरा हो जाएगा।

एक और बहुत बडी सच्चाई यह है कि ऐसे नेता की अब इस देश के बहुसंख्यक समाज को तलाश है जो विकास की प्रक्रिया का लाभ सीधे-सीधे उन तक पहुँचाने की व्यवस्था करे, जिन्हें इसकी तुरन्त आवश्यकता है। जाति, धर्म, वर्ण, वर्ग, भाषा, प्रात और क्षेत्रों के खेल खेलते-खेलते पूरा समाज खोखला हो चुका है। ये खेल राष्ट्रीयता के नाम पर कलंक है घाघ राजनेता देश की जनता को कई टुकड़ो में बॉट कर नागरिकों को एक दूसरे के आमने-सामने खड़ा कर उनकी शक्ति, समय और साधनो की बर्बादी कराते रहे हैं। राष्ट्रीय उन्नति मे सबसे बडी बाधा यही प्रवृत्ति रही है।

मायावती के ये विचार जानकर आशा की एक किरण फूटी है। समाज को संकीर्ण दायरों से बाहर ले जाने के लिए चिंतित सभी बुद्धिजीवी मायावती जी के बड़े आभारी होंगे यदि उन्होंने इस वैचारिक क्राति को आगे बढ़ाया और सामंती ताकतों के कदों को छांटने की व्यवस्था की।

सामंती प्रवृत्ति बहुत खतरनाक है। इससे सत्ता और शक्ति का दुरुपयोग होता है; अन्याय और भ्रष्टाचार पनपता है।

हमे उस दिन का बडी बेसब्री से इन्तजार है जब मायावती जी के ये दोनो स्वप्न पूरे होगे।

बाहर से जुझारू और अंदर से संजीदा

मायावती जी के स्वप्नो और संकल्पों के बाद अब एक नजर उनके व्यक्तित्व पर।

मायावती जी बाहर से संघर्षशील हैं। जब वे अपने मिशन पर होती हैं तो उनके चेहरे पर एक सख्ती साफ देखी जा सकती है। यह सख्ती उनके सहयोगियों

और प्रशासनिक अधिकारियो के लिए एक सदेश है कि वे अपने कर्त्तव्यो का ठीक से पालन करे। वे यह न भूलें कि मायावती जनता की चुनी हुई प्रतिनिधि हैं और वे जनता के सेवक हैं। जिन पदों पर वे बैठे हैं, उनका वेतन उन्हें जनता की गाढी कमाई से ही मिलता है। जनता के साथ वे विनम्रता और सज्जनता का व्यवहार करे तथा उसकी समस्याओ के सही समाधान तलाशें। यही उनका कार्य है। यही उनका लक्ष्य। इससे विचलित हुए तो सरकार उनके साथ सख्ती से पेश आएगी।

सिद्धांतों और नीतियों को लागू करने, कानून और व्यवस्था की स्थिति को मजबूत रखने के मामले में भी मायावती कठोर हैं। वे ऐसे अधिकारियों को कभी माफ नहीं करतीं जो कानून और नीतियों को लागू करने में ढील बरतते हैं और बचने के वहाने तलाशते रहते है। उनकी इसी सख्ती ने सरकारी मशीनरी को गति प्रदान की है। मायावती के नाम से ही प्रशासन-तंत्र चौकन्ना हो जाता है। कानून और नीतियो का आदर यद्यपि अभी देश मे पूरे मन से नहीं किया जा रहा है, परन्तु फिर भी मायावती जैसे समझौता न करने वाले नेताओं की नौकरशाही पर अच्छी पकड़ है। नौकरशाही जब यह देख लेती है कि बीच का रास्ता बद कर दिया गया है तो उसे सक्रिय होना पडता है।

उनके जुझारू व्यक्तित्व का असर उनके राजनीतिक व सामाजिक संगठनो तथा कार्यकर्त्ताओं पर भी पड़ा है। वे समझ गए है कि मायावती सिद्धातो के साथ समझौते नही करतीं। नीतियों को लागू करना उनके जीवन का लक्ष्य है। कथनी और करनी मे अन्तर रखकर उनके साथ काम नहीं किया जा सकता।

मायावती कोई कामचलाऊ या कमाऊ नेता नहीं है। उनके सामाजिक क्षेत्र में उतरने और राजनीति मे आने के पीछे एक मिशन है। वे अपने मिशन के साथ कोई समझौता नहीं कर सकतीं। अपने मिशन के लिए वे इतनी समर्पित हैं कि अपने परिवार वालो और मित्रों को भी विशेष सुविधाएँ प्रदान नहीं करतीं। वे चाहती हैं कि सब मिशन में लगे। धन और सुविधाओं का अम्बार लगाना उनके जीवन का उद्देश्य नहीं है। देश की सम्पन्नता, देश की तरक्की और सामाजिक न्याय की स्थापना उनके जीवन का लक्ष्य है। इसीलिए उनके तेवर सदा जुझारू रहते हैं।

परन्तु जब मायावती जनता के बीच जाती है, उनकी छोटी और बड़ी फरियादों को सुनती है तो उनका दिल मोम से भी ज्यादा कोमल हो जाता है। वे अत्यधिक संवेदनशील हैं। दुख-दर्दों की उन्हे गहरी परख है। वे किसी को दुखी नहीं देख सकतीं। उनकी नजर हमेशा दीन-दुखियो पर रहती है। गरीबो और पीड़ितो की मदद करना, उन्हे संकट के दलदल से उबारना वे अपने जीवन का पहला उद्देश्य मानती हैं। जब से उन्होंने सामाजिक कार्यो तथा राजनीतिक दायित्वों की दुनिया



मे प्रवेश किया है, वे दीन-हीनों के प्रति सदा सजीदा देखी गई है। जनता की समस्याओ को सुनना, उन्हें समझना और उनके समाधान तलाशना उन्हे बहुत अच्छा लगता है। जनता के बीच और अपने सहयोगियों के बीच उन्हे जो लोकप्रियता मिली है, इसका प्रमुख कारण उनकी सजीदगी हे। जन-सेवा के कार्यो मे उनका मन इतना रम जाता है कि वे खाना और सोना तक भूल जाती हैं। सामाजिक और राष्ट्रीय सतुलन का सकल्प उनके मन मे सदा मौजूद रहता है। जब वे लोगो से मिलती हैं तो उनके चेहरे पर सम्पूर्ण आत्मविश्वास और आँखो में आशा की किरण साफ दिखाई पडती है।

अपने इन्ही गुणो के बल पर उन्होने प्रशासन पर अपनी पकड़ मजबूत की है और जनता के दिलो में प्यार पैदा किया है। उनके शासन में गरीब और सताए हुए लोग अपनी बात कहने मे तनिक भी नही झिझकते। उन्हे पूरा विश्वास है कि मायावती के रहते उनकी बात अवश्य सुनी जाएगी और उन्हें न्याय अवश्य मिलेगा।

एक लोकप्रिय नेता के रूप में मायावती की यह एक बहुत बडी उपलब्धि है। नेता के गुणो में ये दोनो गुण सबसे अधिक उपयोगी हैं। नौकरशाही के दबाव में आ जाने वाले नेताओं के हाथो जनता का हित होने वाला नहीं। नौकरशाही को अपने इशारे पर चलाना और दौड़ाना सफल नेतृत्व की पहली शर्त है। सुविधाभोगी होना मनुष्य की स्वाभाविक कमजोरी है। इस कमजोरी से प्रशासन-तंत्र को बचाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि नेतृत्त्व उस पर कड़ी नजर रखे। जनता के दुख-दर्द कम करने के लिए संवेदनशील होना जरूरी है। मायावती में दोनों गुण उन्नत अवस्था में है। यही उनकी सफलता और लोकप्रियता का राज है।

❑❑❑

